

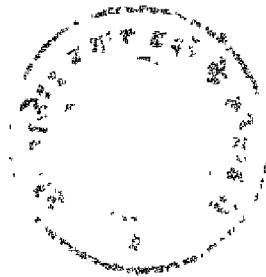
पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

विश्वनाथ शुक्ल

१९२१

व/पु

परम भागवत
गोलोकवासी पूज्य पितृचरण
पंडित यादवनाथजी शुक्ल
की
पुण्य स्मृति में



भूमिका

भारतीय साहित्य में श्रीमद्भागवत महापुराण एक अत्यन्त महत्त्ववाली ग्रन्थ रत्न है। ज्ञान-सौन्दर्य और भक्ति की विशेषी रूप इस ग्रन्थ में केवल भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। 'भागवत' शब्द हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही एक अहिंसान्तक, नमस्त्वयात्मक, उदार धर्म-मत एवं अनुयायी भक्त के अधिष्ठान में व्यवहृत होता आया है। श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण प्राचीन ग्रन्थसमिष्ट सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञान एवं साधना का एक अद्भुत नमस्त्वयात्मक एवं परिपूर्ण रूप प्रस्तुत करता है। एक सर्वमान्य, निर्विनिष्ट भक्ति-धर्म की सहिता के रूप में ही उसका स्थान महत्त्वपूर्ण है जो, कृष्ण-भक्ति के सर्वोच्च प्रतिपादक के रूप में सम्पूर्ण सम्पूर्ण-साहित्य विवृतता सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में उसका स्थान सर्वोपरि है। मध्ययुगीन सम्पूर्ण भारतीय भक्ति-साहित्य श्रीमद्भागवत में प्रभावित हुआ है किन्तु विशेष कर कृष्ण-भक्ति-साहित्य का अन्तरण और बहिरण तो श्रीमद्भागवत के अस्तमन्त्र एवं वाह्य वस्तुत्व में पूर्णतया अनुसृत है। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं, और अंग्रेजी में, फारसी आदि अनेक अभागीय भाषाओं में इस पुराण के अनुवाद इसकी लोकप्रियता एवं व्यापक प्रभाव के प्रमाण हैं। प्रमुख भारतीय भाषाओं—बंगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, हिन्दी, उर्दू, सिन्धी और कश्मीरी में इसके अनुवाद बहुत पहले से होने आ रहे हैं। हिन्दी में इसके समस्त एवं आत्मिक सदाशक्तियों की संख्या अत्यधिक है। मध्ययुग में आज तक भक्ति-क्षेत्र में श्रीमद्भागवत का प्रभाव अक्षुण्ण है। विक्रम की पन्द्रहवीं सोलहवीं शती तक यह ग्रन्थ अपनी स्थिति एवं लोकप्रियता की वरम सीमा पर पहुँच चुका था। भक्ति और भागवत परभावकी शब्द ही रूप थे और 'बहिर गुणित भगवति भागवत कहकर उसकी महत्त्विति की घोषणा की जाती थी।

अपने शैक्षिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की बात मध्य-छोड़कर पहले राष्ट्र-भाषा हिन्दी के ही मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को लीजिए। इस साहित्य की प्राणभूता भावना के स्वरूप का विचार करने पर ही ही अनुभव हो जाता है कि इस साहित्य का अस्तमन्त्र श्रीमद्भागवत निर्देश ही हो सकता। हिन्दी के दो महान् कवियों—मूर और तुलसी की उत्पत्ति नमस्त्वय के लिए श्रीमद्भागवत का ज्ञान कितना आवश्यक है, यह मुद्गीत्रों की अविहित नहीं है। कृष्ण-साहित्य के निम्बार्क—सम्प्रदायःनुयायी कवि,

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के प्रेरणास्त्रोत और मार्ग दर्शक हुए। विशेष कर श्रीवल्लभाचार्य एवं महाप्रभु चैतन्यदेव के सम्प्रदाय में प्रकीर्ण भागवत-साहित्य के परिचय के बिना हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य का अध्ययन निश्चय ही असम्भूत रहता है। इसीलिए प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रमुख वैदिक-सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की मर्यादा और उसके अनेक भागवत-साहित्य का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

त्रिपय का निरूपण करने पर हम इसके स्वरूप तथा क्षेत्र ज्ञान कर सकते हैं। एक भाग श्रीमद्भागवत के अध्ययन में सम्बद्ध होगा और दूसरा श्रीमद्भागवत में प्रभावित हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य में। श्रीमद्भागवत का अध्ययन स्वयं अपने आप में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। यह ग्रन्थ भक्ति शास्त्र की सर्वोच्च संहिता होने के साथ ही साधु अनिमय गुरु दार्शनिक ज्ञान और मनोहानिर्गमी काव्य-भारिमा का भी साक्षर है। मैं अपने कैशोर्य में ही पिता जी से 'विद्या भागवत-वधिः', 'विद्यावतं भागवते परीक्षाः' इसी उक्तिओं के साथ ही 'भक्त्या भागवतं साक्षात् तर्फी परस्पर विरोधी सी प्रतीत होने वाली उक्तियाँ भी सुना करता था। श्रीमद्भागवत का ज्ञान केवल वैद्यकरण होने मात्र में नहीं होता, उसके लिए भागवतभक्ति का वर्तमान अन्वित्य है। अपने पिताजी के जीवन-क्रम में मुझे इस मन्त्र का साक्षात्कार हुआ : वे अत्यन्त कृष्णभक्त थे। श्रीमद्भागवत का पाठ उनके वैदिक-मन्त्रिण स्वाध्याय का अन्वित्य अनुष्ठान था। वे श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ व्याख्याता थे। उनकी भागवत-कथा आज भी कानोरी को समस्त है। कृष्ण जन्माष्टमी को पिता जी भागवत के कृष्ण-जन्म-प्रसंग का गद्गद भाव में पाठ करते और नरद-पूजिता को राम-वचन-ध्यायी का। 'गोरी-गीत' उन्हें अनिश्चय प्रिय था। और उसे हम बालकों को उल्टेने कटस्थ करा दिया था। इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रति कैशोर्य का वह श्रद्धामय आतंक आने चल कर जिज्ञासा में और थोड़ा सा अर्थानुसंधान होने पर उसके प्रति अनुराग में परिणत हो गया। अन्ततः १९६१ ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में 'मध्ययुगीन हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव' शीर्षक में शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने पर मुझे पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। शोध के प्रारम्भिक दो तीन वर्षों तक तो मैं श्रीमद्भागवतमार्ग में निराधार रहना उत्तरना रहा। श्रीमद्भागवत की अनेक संस्कृत हिन्दी टीकाएँ देखी, किन्तु संग्रह त्याग का विवेक न हुआ। तब श्रीमद्भागवत के अनेक मर्मज्ञ विद्वानों एवं भक्तों में प्रस्यक्त विचार विमर्श किया। अपने विवेच्य त्रिपय के लिए मुझे जिन निविकल्प दृष्टि और स्पष्ट दिग्दर्शन की आवश्यकता हुई थी वह मुझे बृन्दावन में पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द जी मरस्वती और बम्बई में दानकृष्ण मन्दिर (म्हाटा मन्दिर) बुद्धाईत पीठ के आचार्य श्रेष्ठ गोस्वामि श्री दीक्षित जी महाराज में प्राप्त हुए। इन दोनों महानुभावों के प्रकारण पाण्डित्य ने जहाँ मुझे ज्ञान का आत्मीय प्रदान किया, वहाँ अपने अगाध वात्सल्य में मेरे हृदय को स्निग्ध कर दिया। अपने अपने विद्यालय पुस्तकालयों में अनेक दुर्लभ ही नहीं, अलभ्य ग्रन्थ मुझे दिए। इन महानुभावों के उपकार को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः इनके प्रति मौन प्रणति परस्पर श्रद्धा व्यक्त करता हूँ : ब्रज भूमि में परम कृष्ण भक्त श्री द्वारकादास जी परीख (अव स्वर्गीय) से मैंने श्रीमद्भागवत की परम प्रेम भक्ति के श्रीवल्लभ सम्प्रदायानुमोदित

मध्यम को उप-विविध समझने का प्रयास किया। श्रीमद्भागवत विषयक विवेचन के द्वारा यहाँ इस विषय पर यह कहा गया है, कि पुराण-साहित्य में यह महापुराण सर्वोच्च है और इसके विषय में हमको यह भक्ति-व्यवस्था ही है -

विष्णुसाम्यं तस्यै श्रीमद्भागवतस्युक्तं ।

श्रीमद्भागवतस्यै तस्यै पुराणसाहित्यस्यै ॥

जहाँ श्रीमद्भागवत में वर्णित-वर्णित पद्यों का अर्थ ही श्रीमद्भागवत में वर्णित विभिन्न धार्मिक विषयों द्वारा-धार्मिक-साहित्य का प्रमाणित रूप में है, वहाँ उसका धार्मिक मूल और व्यावहारिक भाव-मार्ग ही है। यहाँ श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त तत्त्व-ज्ञान एवं भक्ति-वर्णन को हृदयगत करना अनिवार्य है। कृष्टि-युक्त भक्ति-योग दोनों में वेद और प्रागुक्त वास्तव वस्तु का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत के अर्थानुसार ही जानकर ही भक्ति-साहित्य की सत-श्रेयता का साक्षात्कार में सम्भव है। श्रीमद्भागवत के अनुमान-साक्षात्कार में भक्ति-योग ही सत्य का रूप ही है।

एतत्तत्त्वमिदं विद्मन् भुवनात्पुनः स्मृतम् ।

भक्तियोगोऽसत्त्विति तत्त्वमसत्त्वमादिभिः ॥

यह भक्ति-तत्त्व ही है जो कि पुराण-साहित्य में वर्णित है और मात्र-वेद में अनेक-व्यक्त हो जाती है। यह अर्थ-व्यक्त का अर्थ-व्यक्त विषय है। भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन के लिए श्रीमद्भागवत को भक्ति-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही मानना ही है। हिन्दी-भक्ति-साहित्य में केवल साक्षात्कार-साहित्य ही वर्णित है जो कि सत्य-व्यक्त-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही है। इसी-लिए श्रीमद्भागवत ही वैज्ञानिक-तत्त्व-ज्ञान एवं भक्ति-साहित्य का अर्थ-व्यक्त विवेचन इस ग्रन्थ में एक ही अर्थ-व्यक्त ही है।

हिन्दी-भक्ति-साहित्य ही है जो कि पुराण-साहित्य में वर्णित है और मात्र-वेद में अनेक-व्यक्त हो जाती है। यह अर्थ-व्यक्त का अर्थ-व्यक्त विषय है। भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन के लिए श्रीमद्भागवत को भक्ति-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही मानना ही है। हिन्दी-भक्ति-साहित्य में केवल साक्षात्कार-साहित्य ही वर्णित है जो कि सत्य-व्यक्त-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही है। इसी-लिए श्रीमद्भागवत ही वैज्ञानिक-तत्त्व-ज्ञान एवं भक्ति-साहित्य का अर्थ-व्यक्त विवेचन इस ग्रन्थ में एक ही अर्थ-व्यक्त ही है।

१ - सामान्य और - सामान्य । सामान्य तत्त्वों में भक्ति को ही मूल और सर्वोच्च मानना ही है। यह अर्थ-व्यक्त-साहित्य ही है, अर्थ-व्यक्त ही साहित्य ही है—यथा, भगवत्स्मृति, भगवत्काम, भक्ति-साहित्य, भक्ति-साहित्य, भक्ति-साहित्य । उदाहरण के लिए यहाँ मूल, तुलसी साहित्य, भक्ति-साहित्य के नाम ही साहित्य ही है। भक्ति-साहित्य ही साहित्य ही है। यहाँ यहाँ ही साहित्य ही है। इस प्रकार सामान्य-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही सामान्य भक्ति-साहित्य ही है, जो कि सामान्य मध्ययुगीन हिन्दी-भक्ति-साहित्य का ही अर्थ-व्यक्त ही सामान्य मध्ययुगीन भारतीय-भक्ति-साहित्य का एक प्रमुख अर्थ-व्यक्त ही है। श्रीमद्भागवत ही सामान्य-साहित्य का अर्थ-व्यक्त ही है। यहाँ यहाँ ही सामान्य-साहित्य ही है।

अन्य आद्वैतिक भारतीय भावधर्मों के भक्ति-साहित्य में केवल श्रीमद्भागवत में ही प्राप्त है, अतः वास्तव में यह है कि श्रीमद्भागवत मध्यकाल का सबसे समर्थ भक्ति-साहित्य होने के कारण सामान्य भक्ति-रत्नों के लिए भी बहुत बतियों का प्रधान उपरीचय रहा है।

प्रभुपनया कृष्ण-भक्ति-काव्य को ही प्रभावित करने वाले भागवतीय तत्वों को द्वितीय तत्वों की श्रेणी में रखा गया है। इन तत्वों को हम बड़े बड़े शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

१. श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ
२. श्रीकृष्ण की रूप माधुरी
३. श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और
४. श्रीकृष्ण के प्रति शीर्षकों का प्रेम

इन चार मुख्य शीर्षकों में विभक्त रत्नों में भी अनेक अवास्तव उपनयन समन्वित हैं—यथा, विविध कृष्ण लीलाओं के अन्तर्गत ही वृन्दावन, यमुना, गोकुल, गोवर्धन, गौरी, गोपबालक, नन्द, रमाँडा आदि रत्नों का अन्तर्भाव है क्योंकि ब्रह्मणः के सब कृष्ण की लीला के विवाद्यक उपनयन हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पूर्वोक्त चार प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत भागवतीय विषयों में ही समस्त भारतीय-कृष्ण-भक्ति-साहित्य का समावेश हो जाता है। अतः ग्रन्थ में इन विषयों का वैज्ञानिक और साम्प्रदायिक दृष्टि में विवेचन किया गया है और उनके आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक स्वभावों के स्पष्टीकरण का भी प्रयत्न किया गया है। भागवतीय तत्वों के इस प्रकार वर्गीकरण एवं अनुसन्धान का हिन्दी में कदाचित् यह प्रथम प्रयत्न है। इसमें मेरा उद्देश्य यह रहा है कि हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य के अन्वेषण के समक्ष श्रीमद्भागवत के प्रभावक तत्वों का एक स्पष्ट मानचित्र उपस्थित हो जाय, जिसके आधार पर वह अपने अध्ययन क्षेत्र का सर्वेक्षण निर्धारित रूप में कर सके।

श्रीमद्भागवत कृष्ण-लीला का सबसे बृहत् और लोक-विश्रुत आकर ग्रन्थ है। गण-साहित्य, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि ग्रन्थ निश्चय ही परवर्ती हैं। महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु-पुराण आदि पूर्ववर्ती समस्त ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की जो लीलाएँ प्रसिद्ध हैं, उनका पूर्ण विकसित, उपवृद्धि, ललित एवं उदात्त रूप केवल श्रीमद्भागवत में ही दृश्य हुआ है। अतएव भागवतीय कृष्णलीलाओं का—जिनका मान हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों का प्राणस्पन्दन ही है, सूक्ष्म अध्ययन परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतः ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत की समस्त कृष्णलीला का—विशेषकर दशमस्कन्धीय कृष्ण लीला का संक्षेप में एक घराणल पर सर्वेक्षण किया गया है, जिससे कि हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों द्वारा गीत कृष्णलीला का भागवतीय लीला-भावना के साथ तुलनात्मक अध्ययन हो सके। बीज रूप में सन्निहित छोटी से छोटी कृष्णलीला का भी अनुसंधान किया गया है, क्योंकि जो लीला देखने में एक छोटी सी बालचेष्टा मालूम होती है, उसमें एक अद्भुत, सावैभौम, मानवीय जीवन-रस सरा रहता है, जिसका उद्घाटन भारतीय भक्त-कवियों ने अपनी दिव्य

उत्पन्न है। उदाहरण के लिए हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य में महाकवि मरदास मरदास और रामानन्ददास के नाम प्रस्तुत किए जा सकते हैं। श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण को छन्दोमय रूप में वर्णित, श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व और श्रीकृष्ण के प्रति गोपिय के स्वरूप को प्रतीक प्रेम के अन्वय में भी यही मान करी जा सकती है।

श्रीमद्भागीय भक्ति-काव्य को प्रभावित करते वाले भारतीय नव्यों का अनुसंधान यह स्वभाव-भोजन ही प्रस्तुत प्रस्तुत प्रस्तुत का लक्ष्य है, उसीमें ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत का प्रभाव उदाहरण दिया गया है। शास्त्रीय-समीक्षा का एक सुविवारित सिद्धान्त सामने आ जाये तो फिर केवल हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य ही कर, जिसे भी भारतीय-भाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य पर उसी प्रयोग का प्रश्न रह जाता है, जो केवल कुछ चुने हुए उदाहरणों के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है। मुझे आशा है कि इस शोध के द्वारा सम्पूर्ण भारतीय भक्ति-साहित्य के अध्ययन का योग्य प्रथम श्रेणी।

हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य के विद्यालय भण्डार में इनके सम्प्रदायानुयायी, और सम्प्रदायमुक्त कवियों द्वारा रचित सामग्री मिलती है और उनकी रचनाओं पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इनके लक्ष्य और विविध रूपों में माना जाता है कि कवियों की वही से वही संख्या के आधार पर भी इसका निरूपण करना एक दुर्गर कार्य है। ऐसी स्थिति में प्रचलित-सम्पन्न-निवर्तन-संसार में प्रसूत, प्रस्ताव और प्रतिनिधि कवियों का चयन ही मुझे समीचीन लगा और श्रीमद्भागवत के साथ उसी की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग निर्देश मैंने यथा-सक्ति किया है। वही तक ही सका है 'सामूहिक विस्तृत किञ्चिन्न-नपेक्षितमुच्यते' के सिद्धान्तानुसार ग्रन्थ को लघुतम आकार देने की चेष्टा की गई है। इसके प्रतिरिक्त यौनिकता, निर्दोषता एवं समस्यता का दावा करना 'सर्वेषु सर्वे तहि वेद कश्चित्' जैय शारद्वन-सत्य की अक्षर्यता होगी। सत्य में अस्मात्परम नैतिक है। है उसका अन्वय नहीं है।

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का भक्ति-साहित्य — विशेषकर कृष्ण-भक्ति काव्य, श्रीमद्भागवत का जिनका अन्वय है, उसमें इनके और-साहित्य में जिनसे मूल विषयक और आनन्दमिम्बन्दि नव्यों का अनुसंधान हुआ है, उन विज्ञानों को लेकर जिनके साथ साहित्य-विद्ये का यह कर्म-प्रयास कुछ महत्त्व बन सकेगा, उसके पथ को कुछ और प्रस्तुत कर सकेगा, उसमें अन्वय के प्रति कुछ और साहित्यक इष्टता जगा सकेगा, इसी आनन्दमिम्बन्दि आशा और विश्वास में यह कवि भारतीय-भक्ति-काव्य को अर्पित करता है।

आज से एक शतक और। आज जिस भाव-भक्त 'रक्त' की आवश्यकता का अनुभव फिर से हमारे राष्ट्र की जनता में जागृत है, उसकी पूर्ति श्रीमद्भागवत महापुराण और इसमें प्रस्तावित सम्पूर्ण भारतीय-भक्ति-साहित्य असाध्यो पहल ले करना आ रहा है। और और बहुत असाध्यो ज्ञान से सीखते हैं वे काल के कर्तव्य प्रवर्ध और कभी मंथर पदाकार न मुझों से ही गए हैं उनकी अपने आत्म-भिज्ञान के मुद्राविचल से पुनर्जीव काया है, सभी भारतीयों का आत्म-स्वकीर्ण-उद्योग होगी। यह प्रयास इस महात्त्व उद्देश्य को पूर्ण से कुछ मात्र रूप में ही लेना विवक्षित है।

यह ग्रन्थ मेरे जोध प्रबन्ध का अन्तःसंचिकृत रूप है जो अष्टमेश गुप्तवर डा० हरबलाल शर्मा के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया था। मेरे प्रति यह उनके महत्-स्नेह का फल है। उनके प्रति प्रगति-निवेदन करने मेरा पुराना कर्तव्य है। भक्ति-साहित्य के समस्त विद्वान् श्री डा० श्रीनन्दलाल जी गुप्त एवं श्री डा० सुशीराम श्री शर्मा 'मोम' का आजीवार्थ मेरी इस साहित्य-सहायता का मन्त्र रहता है। मैं उनके प्रति वित्त-कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अनेक सामाजिक प्रवृत्तियों और प्रवृत्तियों के कारण — जिनका यहाँ उल्लेख करना न आवश्यक है, न उदाहरण, इस ग्रन्थ का प्रकाशन ४-६ वर्ष बाद हो सका है। प्रसिद्ध साहित्यकार (अब स्वर्गीय) अष्टमेश श्री उदयचकर भट्ट ने, जिनका मुझे अभाव और निमित्तित्त स्नेह-साहाय्य प्राप्त था, बहुत पहले ही इस ग्रन्थ के दिल्ली में प्रकाशन की भारी व्यवस्था कर दी थी, किन्तु मेरी ही सुदनापूर्वक स्वयं इसका विचार से प्रकाशन होने का कारण बन गई। अम्बू।

इस प्रयास की पूर्ण करने में मुझे सर्वाधिक साहित्य-साहित्य-साहित्य साहाय्य अपने पुत्र अग्रज दादाजी (श्री चिरजीवबाल जी शर्मा) से प्राप्त हुआ है, जिनका स्नेहमय अंकुश मुझ जैसे अज्ञानी और प्रमादी व्यक्ति को यदी एक वैठक छिटा हो सकता, वे सिरमा प्रणम्य है। मेरे विद्यार्थी महयोगी बन्धुवर डा० प्रेमसम्भर गुप्त न केवल समय-समय पर मेरी वीर्य और हार्दिक सहायता करने अर्थात् इस ग्रन्थ की टंकित प्रति प्रस्तुत करने में उनका कोमल चरित्त ही निरानन्द होकर सुलग ही जाता था। उनको मैं अपने प्रेम का ही प्रतीक मानता हूँ। हे भोके प्रेमस्वभावी। अन्तः उनके साहित्यिक प्रणवद न हुआ। भाई साहब प० मधुसूतनाथ जी सुक्ल ने अपने सूर्यप्रद-संग्रह में अनेक उदाहरण और गिता जी के पुस्तकालय में अनेक सहायक एवं मुझे प्रदान किए। उन्होंने ग्रन्थ की टंकित प्रति के शुद्धीकरण में भी पूर्ण सहयोग दिया। हमें मैं उनका वात्सल्यमय प्रणवद मानता हूँ। भाई साहब डा० गोवर्धनसाथ जी सुक्ल का स्नेह भी मेरा मन्त्र रहा। अपने महयोगी बन्धु डा० कलाचक्र भाटिया की वन्दना में मैं निरन्तर उन्मत्त एवं प्रेरणा प्राप्त करता रहा। और मन्दर्भ रंथों की उपलब्धि में उनकी सहायता में मेरा कार्य निर्वहण चलता रहा। इन्दोस्थ अपने प्रिय बन्धु श्री कृष्णकिमान जी द्विवेदी के पुस्तकालय में मुझे शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय की दुर्लभ सामर्थ्य समय-समय पर प्राप्त होती रही। इन सभी बन्धुओं के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अष्टमेशीय बन्धुवर डा० रामभूषण जी शिवाजी के विलक्षण वैदुष्य और दुर्लभ पुस्तक संग्रह में भी मैं बहुत लाभान्वित हुआ हूँ। अन्तः उनके प्रति सादर आभार व्यक्त करता हूँ। उन सभी ज्ञान-अज्ञान केवर्कों और विद्वानों का जो मैं हृदय में कृतज्ञ हूँ, जिनकी रचनाओं में मैंने सहायता की है।

मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशक पं० उद्रीप्रसाद शर्मा और मुद्रक पं० कर्मानिह शर्मा भी अत्यन्त के पात्र है जिनके सक्रिय सहयोग के फलस्वरूप यह पुस्तक आपके हाथों में है। तीव्र के स्वर सहस्र, प्रेम के वे कर्माजीठ और प्रफरीडर भी बघाई के पात्र है जो अपने पर्याप्त परिश्रम में मुद्राक्षमन्व की उदाधि से आशिक मुक्ति पा गए हैं, किन्तु जितकी मुष्टि में मुद्रण की वृष्टियों का अत्यन्तभाव कभी नहीं होता।

आज के हम अग्रज, अविद्याम तक अग्रजों के
 दृष्टि में प्रबल अर्थी और अग्रजों की बात को ही विशेष
 महत्त्व देना है। मुझे किसी अविद्याम अर्थी के अग्रजों
 के अग्रजित्त करना है। मेरी अग्रजों का कहनी है कि
 अविद्याम अर्थी की ही अग्रजों की अग्रजों को ही कि
 अविद्याम अर्थी अग्रजों की अग्रजों को ही अग्रजों को ही

५
 ५
 ५

अविद्याम
 अविद्याम अर्थी अग्रजों
 अविद्याम अर्थी
 २००० वि०
 २२५५ इ०

विषयानुक्रमिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

| | |
|--|------|
| श साहित्य एवं श्रीमद्भागवत | १-३२ |
| भागीय वाङ्मय और उसका इतिहास | १ |
| पुराण साहित्य | ४ |
| पुराण मंत्र का अर्थ | ४ |
| पुराणों का रचनाकाल | ६ |
| पुराणों का मुख्य स्रोत | ८ |
| भागीय पुराणों की संख्या | ८ |
| पुराणों का वर्गीकरण | ९ |
| पुराणों का प्रतिपाद्य विषय | १० |
| सर्वाधिक व्यापक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय पुराण श्रीमद्भागवत | १२ |
| श्रीमद्भागवत और देवीभागवत | १२ |
| श्रीमद्भागवत के रचयिता | १७ |
| श्रीमद्भागवत का आकार प्रकार एवं वर्ण्य विषय | २१ |
| श्रीमद्भागवत का स्कन्धानुसार वर्ण्य विषय | २३ |
| श्रीमद्भागवत की प्रमुख टीकाएँ | २६ |
| भागवत नाम से अभिहित अन्य ग्रन्थ | ३० |

द्वितीय अध्याय

| | |
|--|-------|
| भागवत का प्रतिपाद्य (तन्त्रज्ञान एवं भक्तिदर्शन) | ३२-७६ |
| दृष्टिकोण | ३३ |
| श्रीमद्भागवत का अनुबन्ध वाक्य | ३३ |
| आत्मा और परमात्मा का स्वरूप | ३६ |
| ईश्वर | ३७ |
| जीव | ३७ |
| जगत् | ३८ |
| श्रीमद्भागवत के दश लक्षण और प्रतिपाद्य आश्रयतत्त्व | ३९ |
| आश्रयतत्त्व के प्रतिपाद्यक अन्य नौ तत्त्व | ४३ |
| श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य भक्ति सिद्धान्त | ५० |

श्रीमद्भागवत का उद्देश्य मूल विस्तृत
 श्रीमद्भागवत एवं विष्णु-सम्प्रदाय
 इतिहासका
 श्रीमद्भागवत में अन्तर्गत विवेचन
 का उद्देश्य मूल विस्तृत
 भक्ति का श्रीमद्भागवत का मातृका रूप
 श्रीमद्भागवत में श्रीमद्भागवत का स्वभाव
 भक्ति का मातृका रूप
 भागवत-दर्शन
 भक्ति के सिद्ध
 भक्ति के मातृका रूप
 भक्त-लक्षण
 भक्त-महिमा

तृतीय अध्याय

भारतवर्ष के अनुग्रह वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत

दृष्टिकोण

श्रीमद्भागवतवाच्य का विविधदृष्टिकोणी सम्प्रदाय और
 श्रीनिम्बार्कवाच्य का दृष्टिकोणी मत एवं श्रीमद्भागवत
 श्रीमद्भागवतवाच्य का दृष्टिकोणी सम्प्रदाय एवं श्रीमद्भागवत
 श्रीवल्लभाचार्य का दृष्टिकोणी सम्प्रदाय एवं श्रीमद्
 श्रीचैतन्य महाप्रभु का अतिरिक्त श्रीनिम्बार्कवाच्य सम्प्रदाय

चतुर्थ अध्याय

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य की प्रभावित करने वाले

के सामान्यतत्त्व

दृष्टिकोण

भक्ति का वर्ण-विशेष

स्मृति

श्रीमद्भागवतवाच्य स्मृतियों का मातृका

नाम-महिमा

मूल-महिमा

मन्त्र

कीर्तन

निर्वाह

पंचम अध्याय

| | |
|---|---------|
| गीत कृष्णभक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोंक विशिष्टतन्त्र | १७६-१६० |
| दृष्टिकोण | १७६ |
| श्रीकृष्ण को विदित की रात | १७७ |
| वसन्तकाल दुर्गा (शुक्लकाल) | १७७-१७८ |
| वसन्तकाल उत्तरार्ध (द्वारकाकीला) | १७८-१७९ |
| कीला के उत्तरार्ध — यज्ञ मधुना, वृत्रासन अथवा वन्दारय, यमुना, गिरिराज गोंधर्वन गौरी, लन्द आदि गोंधरसु एवं गोंध बालक (कृष्ण मवा) यमोका, पदच्छु | १७९-१८३ |
| श्रीकृष्ण को अर्लीकिक लामःशुरी — वेदमूला, वर्तन अंगविन्यास एवं मुद्राएँ | १८३-१८७ |
| श्रीकृष्ण का नरब्रह्मण-मेष्वरान्त | १८९-१९२ |
| श्रीकृष्ण के प्रति गोविन्दो का अनन्य और अर्लीकिक प्रेम | १९३-१९७ |
| गोविन्दों का पूर्व स्वरूप, कृष्णकीला में भए | १९४ |
| गोविन्दों का वास्तव्य भाव | १९४ |
| गोविन्दों का मधुरभाव | १९६ |
| वेगु अथवा मुग्धी | १९७ |
| वेगु माधुगी और उसका प्रभाव | १९८ |
| रामकीला | १९९ |
| राधा | १९९ |
| अमरगौर | १९९ |
| निष्कर्ष | १९७ |

षष्ठ अध्याय

| | |
|---|---------|
| भारवत एवं वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवि | १९९-२०८ |
| लाल गान की परम्परा — विद्यापति | १९९ |
| अष्टछाप | १९९ |
| कृष्णदास | १९९ |
| भूरदास | २०० |
| परमानन्ददास | २०० |
| कृष्णदास | २०० |
| गोविन्दस्वामी | २०० |
| छीतस्वामी | २०० |
| चतुर्भुजदास | २०० |

सम्प्रदाय
विराज्यं

सप्तम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं पुराणसारेतर वैष्णव सम्प्रदाय
हिन्दू कवि

सम्प्रदाय सम्प्रदाय के कवि —

श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —
श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —

श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —
श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —

श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —
श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —

श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —
श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —

श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —
श्रीमद्भागवतसम्प्रदाय के कवि —

अष्टम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं सम्प्रदाय-सुक्त कृष्णभक्त हिन्दू
मीमांसक

साम्प्रदाय

साम्प्रदाय

साम्प्रदाय (पूर्वसार)

साम्प्रदाय

साम्प्रदाय

वपसंहार

सहायक ग्रंथों की मूली

प्रथम अध्याय

पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

भारतीय वाङ्मय और उसका इतिहास

मान्य है। प्राचीन सभ्यता की प्रगति का प्रथम इतने विद्वत् पुरातन संस्कृत-वाङ्मय ने किया है। उस प्राचीन वाङ्मय की एक विशेषता यह है कि यह विश्व-मानव की एकमात्र एक प्राचीन सभ्यता की कल्पना होती है, जब अपने विश्व-भौतिक प्रयत्नों में उत्तम भाव का प्रकटन मात्र ही-क्या करी-अपनी ही-ने अपनी आध्यात्मिक क्षमता की निष्पत्ति के लिए वह विश्व के पुरातन वाङ्मय की ओर उन्मुख होता है। वह भी सर्वप्रथम इसका प्रकट निष्कर्ष रूप में पुरातन भारतीय-वाङ्मय की ओर ही केन्द्रित होता है। क्योंकि मानव-वर्ष की यह शक्ति है जब सर्वप्रथम अमूर्त सूक्ष्म ज्ञान में वेद-सहित-के-कार-के-अज्ञान-सम्बन्ध-होकर-अज्ञान-अज्ञान-अज्ञान-और-विश्व-ने-अपना-आलोच-अभेदा-किया-। प्रायः यह आलोच-किया जाता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य केवल आध्यात्मिक है। उसने इतराधिक-जीवन-को-सकामनापूर्वक-याप्त-काने-के-लिए-कोई-तिथि-नहीं-। यह-सही-है, किन्तु-यह-आलोच-समीचीन-नहीं-। बहुत-पहले-ही-भारतीय-सर्वांग-के-अतीन्द्रिय-निर्देश-मिथि-सर्व-सर्व-अपनी-साधन-समी-की-बोधना-कर-है-। भारतीय ऋषियों के मानने जीवन का एक निश्चित उद्देश्य था जिसे वे अपने ही-उद्देश्य-से-करी-ओ-अपनी-ही-ही-के-के-। यह-उद्देश्य-था-पुरुषार्थ-चतुष्टय-का-साधन-। जो-जीवन-को-सुख-रूप-में-बिना-कर-सर्व-और-निर्भय-दुःख-दुःख-नक-पुरुषार्थ-साधन-में-अवस्था-करना-जीव-का-जन्म-वक्ष्य-है-। इस-उद्देश्य-को-निरन्तर-मानने-सककर-निमित्त-समान-उच्चकोटि-का-भारतीय-वाङ्मय-प्रगल्भ-अध्ययन-प्रवृत्त-है-। अतः-पुराण-और-निर्देश-का-सम्बन्ध-सम्बन्ध-करना-दुःख-रूप-वाङ्मय-अवि-न-भाव-से-हिन्दी-प्रती-मन्त्र-की-प्रति-इति-कर-रहा-है-।

‘तदेव विदित्वाऽपि मृत्युर्नाति तस्य’ परमादिष्टतेऽपत्यम् ।’

अर्थात् ‘जहाँ परम-पुरुष-को-ज्ञान-कर-समुप्य-मृत्यु-को-नर-सकता-है-। बन्धन-का-अन्य-कोई-मार्ग-नहीं-है-।’

वैदिक साहित्य में केवल पौराणिक साहित्य तक इसी विद्वत्पुरुष का अस्तित्व विस्तृत किन्तु सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

१. अतश्चेत प्रकृत्या सकामादसकामकः

सर्वं सर्वं चरित्रं मित्रेणैव इतिहासं सर्वमानवाः । मनुस्मृति—अ० २, श्लो० २०

२. उक्तं बभूवैदः पुरुष शक्त २. १०

भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान के ज्ञान के लिए ब्राह्मण ग्रंथों का अध्ययन अनिवार्य है। ब्राह्मणों के यत्नसे आर्यजन ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। वातप्रस्थ शास्त्र में आर्य-वर्षी आर्य यज्ञों के गृह्यो एक गृह दार्शनिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आर्यवर्षी का अध्ययन करने के। इसी आर्यवर्षी में आगे चलकर उपनिषदों का विकास हुआ जो भारतीय अध्यात्मत्व को प्रकाशित करने वाले तेजस्वी गहन-भाषावादी हैं। उपनिषदों में मानव जीवन का ज्ञान के अतिरिक्त प्रकृति पर विचार किया गया है, और समाधान प्रस्तुत किया गया है। उपनिषदों का प्रमुख उद्देश्य ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है। इसमें वेद का निर्यात या अन्त होने के कारण उनके वेदान्त भी कहा जाता है। ब्रह्म, जीव और ज्ञान को व्याख्या करना परमपरम सत्य और ब्रह्म जीवैक्य प्रतिपादन में भारतीय ऋषियों की कृतसमता प्रजा का ज्ञान उपनिषदों में हमें पुनीभूत रूप में मिलता है। वेदों की उपनिषदों की सत्यता को वेदों में ज्ञान है किन्तु मुख्य उपनिषद ग्यारह हैं। (१) ईश, (२) कैल, (३) कठ, (४) प्रश्न, (५) मुण्डक, (६) माण्डूक्य, (७) तैत्तिरीय, (८) ऐतरेय, (९) छान्दोग्य, (१०) बृहदारण्यक और (११) श्वेताश्वतथ। प्राचीनता विद्यालता एवं वर्ष विषयों की गुणों के कारण आन्ध्र और बृहदारण्यक उपनिषद् बहुत प्रसिद्ध हैं।

वैदिक साहित्य की विद्यालय शक्ति एवं उसमें दक्षिण कर्मकाण्ड को मक्षीय में हृदयगम करने के लिए भारतीय मनीषियों ने सूत्र-साहित्य का सूत्रपात किया। परिमित म परिमित शब्दों में अर्थमिन्न अर्थ का बोध करने वाले वाक्यों और वाक्यांशों का मर्जन हुआ। इसी लिए इनके 'सूत्र' कहा गया। सूत्र साहित्य चार भागों में विभक्त हुआ। (१) श्रौतसूत्र, (२) गृह्यसूत्र, (३) धर्मसूत्र तथा (४) शुक्लसूत्र, श्रौतसूत्रों में वैदिक कर्मकाण्ड का विवेचन है। गृह्यसूत्रों में गृह्य व्यक्ति के निम्ने कर्मन्वय कर्मों का विधान है। धर्मसूत्रों में सामाजिक कर्मन्वयों का निरूपण है और शुक्लसूत्रों में यज्ञवेदियों की निर्माण-क्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

वैदिक साहित्य कालान्तर में दुर्लभ में दुर्लभ होना तथा और भारतीय मनीषी भी इसके अर्थ का स्पष्टीकरण करने के लिए अन्वयगत प्रयत्नशील रहे। वेद के विविध विषयों एक श्रेणी का मुख्यवाचक अध्ययन करने के लिए वेदवाह्यो का आविष्करण हुआ। वे है - (१) शिक्षा, (२) कर्म, (३) व्याकरण, (४) छन्द, (५) ज्योतिष और (६) निरुक्त। इन छे विषयों का सम्मेलन जाना ही पंडित वेदाध्यायी कहलाता था। व्याकरण वेद का मुख्य प्रयत्निक तथा निरुक्त शोध, अन्त हृदय, शिक्षा नासिका तथा छन्द वेदों के कारण कहलाये। वेदी का मुख्य उद्देश्य को शिक्षा देने के लिए 'शिक्षा' का निर्माण हुआ। भाग के उद्देश्य का वैज्ञानिक-विवेचन प्रस्तुत करने वाले ये प्रथम ग्रन्थ हैं। इनके प्रातिशास्त्र भी कहा जाता है। पृथक्-पृथक् वैदिक साहित्यों के पृथक्-पृथक् प्रातिशास्त्र हैं। कर्मकाण्ड का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कल्पसूत्रों का प्रणयन हुआ। पूर्वोक्त श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र ही कल्पसूत्र कहलाते हैं। व्याकरण का उद्देश्य शब्द-रूपों और धातु रूपों का मुख्य ज्ञान प्राप्त करना है। पाणिनि का सप्ताध्यायी व्याकरण विश्वविभूत है किन्तु पाणिनि से भी पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में ही व्याकरण-विचार

होने लगा था। पाणिनि के पूर्ववर्ती शाकटायन, स्कौटायन, गार्ग्य, इन्द्र आदि वैशाकरणों के ग्रन्थ दुर्भाग्य से अब उपलब्ध नहीं रहे। खूब मात्रा से छन्दोबद्ध बौद्धिक मन्त्रों के विविध छन्दों का ज्ञान होता था। ऋक् प्राणिशास्त्र में इस शास्त्र का वर्णन है। दिगलक्षार्य के छन्दः सूत्र में वैदिक के अतिरिक्त लौकिक छन्दों का वर्णन भी है। ज्योतिष के द्वारा यज्ञों के शुभ-मूहनों का ज्ञान होता है। ज्योतिष का प्राचीनतम ग्रन्थ लगन मुनि का 'वेदांग ज्योतिष' है। निरुक्त ग्रन्थों में वेदिक मन्त्रों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित की गई है। याम्यक का 'नित्य' उस विषय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

वैदिकों का साहित्य वैदिक साहित्य में बड़ा महत्त्व, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि की उत्पत्ति होती है। बड़ा वैदिकोत्तर साहित्य में रामायण आदि महाकाव्य, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थ तथा श्रीमद्भागवत आदि पुराण ग्रन्थों का परिचय होता है। किन्तु यह सम्पूर्ण साहित्य अपनी अतिमकन्दुर्गता एवं ब्राह्मण अन्वय-सन्ध्या के लिए पूर्णतया वैदिक साहित्य पर ही अवलम्बित है। सर्वश्री निखिल भारतीय वाङ्मय वेदोक्त सिद्धान्तों के भाष्य रूप में ही प्रकाशित हुआ। इन सर्वश्री साहित्य ने जनजाचारण को वेदोक्त वृक्ष ज्ञान एवं गहन अध्ययन-रत्नों को हृदयगत करने का कठिन और महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतीय सन्कृति, सभ्यता और साहित्य को अत्यन्त गहराई में प्रभावित करने वाले विश्वविशुद्ध ग्रन्थ रामायण और महाभारत का परिचय देना अतावश्यक है। एक तीसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पुराण है जिसने सभ्यकालीन भारतीय समाज की चिन्ता-धारा को बहुत प्रभावित किया।

वास्तव में यदि हम स्थूल विम्लेषण ही करें तो हमें यह स्पष्ट होते विमल न मिलेगा कि वैदिकोत्तर भारतीय-जीवन को अत्यन्त गहराई और व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले तीन महान् लेखनीय ग्रन्थ हैं—(१) आदि कवि वाल्मीकि का रामायण, (२) महर्षि व्यास का महाभारत और (३) श्रीमद्भागवत पुराण। ये तीनों ग्रन्थ ही वे अक्षय कोष और प्रबलियुक्त वाग्धारण हैं जिनसे ईश को प्रथम दर्जा से श्राव्य तक के अधिकार भारतीय साहित्य का बहिरंग और अन्तरंग अनुप्राणित है। वह अधिकारजन, अपने देह के सर्जन और आस्था के अभिज्ञान के लिए उपर्युक्त संयमयी का ही मुखपिण्ड है। इसकी आचार शिला पर ही हमारे साहित्य का विचार प्रसाद खड़ा है और यह प्रथमयी ही हमारे साहित्य के एक विशाल भाग की एकमात्र उपजीव्य है। महाभारत तो साथ ही अधिक भारतीय साहित्य को धाम किद् हू है।

प्रत्येक देव काल में कुछ ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनकी प्रखर-प्रतिभा ने निखिल जगत् आलोकित हो उठता है, जिनकी दिव्य भारती विश्व सस्कृति को सुग-सुगों तक प्रभावित करती रहती हैं। वे मनीषी अथवा दिव्य लेखनी में जिन चिरन्तन साहित्य का सर्जन करते हैं उसे उपरजित अथवा अभिभूत करने की शक्ति किसी मातृ-प्राणी से नहीं होती।

आदि कवि वाल्मीकि के रामायण को विश्व का आदि काव्य होने का गौरव प्राप्त है। महर्षि वेदव्यास का महाभारत विश्व का सबसे बृहद् ग्रन्थ तथा विद्वकोष होने की

पुराण नाम से अभिहित किया गया है।^१ पुराणा या प्राचीन होने से इस साहित्य को पुराण कहने से यह भी अभिहित करने में मन्त्र है किन्तु पुराण और भी कारणों से पुराण कहलाता है। यामक ने कहा है कि 'इसमें पुरानी वस्तु भी लकी हो जाती है उसे पुराण कहते हैं'। अमर कोशकारण में कहा गया है कि वहने हुआ अथवा, वहने होकर भी लकीत या पहने की बात भविष्यत् अर्थों का कथन करने वाला मात्र पुराण कहलाता है।^२ इस पुराण में भी लकी अर्थ लकीत किया गया है।^३ एक बात हीना है कि पुराण मात्र का अर्थ केवल पुराणा ली है अतः पुराणों को तथा अज्ञान भवने वाला तथा अज्ञान (भविष्यत्) का कथन करने वाला साहित्य पुराण है। भविष्य पुराण का प्रसिद्ध शब्द भागी है।

विद्वानों का विचार है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पुराण असंगत विधि है और भारतीय इतिहास साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्त्व है।^४ भारत के प्राचीन साहित्य में इतिहास और पुराण एक एक साथ बहुत मिलते हैं,^५ किन्तु पुराणों में जिन प्रकार की जलन्ध्र और अतिरिक्त अवलोकों का उल्लेख है उनमें उन्हें ऐतिहासिक मानता आज के बुद्धिवादी युग में सम्भव ली है। यदि ही पढ़ भी मन्त्रण रखना चाहिये कि पुराणों की लकी अतिरिक्त जलन्ध्र, आलकायिक और साकायिक है, उनके मूल में जाकर ही हम ऐतिहासिक लकी तक पहुँच सकते हैं, अनेक विद्वानों ने पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व जिया है। रामकृष्णदास जी की स्थापना है कि पुराण-साहित्य एक समय सर्वत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और पुराण तथा इतिहास शब्द समानार्थक थे।^६ वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों का अन्त को इतिहास बतला तथा महाभारत का स्वयं को पुराण बनाता यह मिथ कहता है कि इतिहास और पुराण शब्द प्राचीनकाल में समानार्थक थे। पुराणों में असम्भव और अविश्वसनीय पद्यताओं का प्रवेश उनमें साक्षरतायिकता आ जाने से हुआ है। ब्रह्मवैवर्त तथा विष्णु पुराण में आई हुई पुराणों की परिभाषा में सर्ग (महाभूतों की सृष्टि का वर्णन) प्रतिमर्ग (प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि) वश (वंशावलियों का वर्णन), मन्वन्तर (कलदासों तथा मन्वन्तरो का वर्णन) तथा अज्ञानुचित (वंशों के प्रधान महापुरुषों के चरित्र का वर्णन) ये पाँचो लक्षण पुराणों की ऐतिहासिकता का ही बीज कारण हैं।

१. पुराणसाहित्य का नाम अतिरिक्त विधिः।
 वेदाः न्यासातिरिक्तानां अन्वयः न कर्तव्यः सातवत्कथं सृष्टि १-३।
 २. पुराणं ब्रह्माण्ड पुराणक मन्त्रि (मिथक ३ : ३३ : २०)
 ३. पुराणार्थे यज्ञ पुनः अतिरिक्तं ब्रह्म पुनः अतिरिक्तं लकी अर्थो अस्ति (अमरकोश बही संस्क०)
 ४. पुराण मन्त्रार्थं वक्तुं पुराणं तत्र है सन्तु मन्त्रमपुराण १ : २ : ५३।
 ५. सा० हरकृष्णदास शर्मा : सा और उत्तर साहित्य, पृ० १३३ अध्याय सन्तरण
 ६. इतिहास पुराणार्थं वैवं सन्तु मन्त्रमपुराण। महाभारत आदि पूर्व अ० ५
 तथा—इतिहास पुराणार्थं वैवं वेदात्तां वैवं आन्देय उन्निषद् ७-१-१
 ७. सर्गप्रतिमर्ग वंशमन्वन्तराणि च।
 वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥ विष्णुपुराण—७-४-२४
 ८. 'पुराण-इतिहास'—राधकृष्णदास श्री वेङ्कटेश्वर समारचार बम्बई २२-१०-५४ का अंक।

प्रक्रिया में मजबूत है। इसी प्रकार ज्ञान वैराज भक्ति की त्रिवेणी के संगम रूप श्रीमद्-
भागवत पुराण में भी विरहसाहित्य में एक प्रत्यक्ष साक्षात्कार-वाली स्थान प्राप्त कर
लिया है।

प्रथम शोध प्रबन्ध में हमो तटीय रूप श्रीमद्भागवत को केन्द्र मानकर हिन्दी के
पुराण साहित्य की व्याख्यात्मक साहित्य पर उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया
गया है। श्रीमद्भागवत का संपन्न भक्ति साहित्य पर ही स्पष्ट प्रभाव पड़ा है और यह
हमारा अधिकतम ध्यान है। हमें खुशी है कि जो ज्ञान कर्मों की आवश्यकता होती है। हम
विषय का संपूर्ण अर्थ प्रदान करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हम सत्यमेव जयते की मूल्य
को मंचने।

श्रीमद्भागवत साहित्य-साहित्य के एक अद्विष्ट साहित्य-कोटि का ग्रंथ है जिसे
हम पुराणसाहित्य का एक विशेष रूप मानते हैं। भागवत के साहित्य में पुराणों का ज्ञान
सम्बन्ध है और श्रीमद्भागवत का कला रूप है। यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। हम
यहाँ पहले पुराण साहित्य के विषय में सविस्तर विवेक प्रस्तुत किया गया है।

पुराण साहित्य पुराणों का ज्ञानान्तर्गत निर्माण ज्ञान, विषय, उनकी
संख्या आदि आज भी विद्वानों के विषय विवेक विषय बने हुए हैं। पुराण साहित्य पर जिन
विद्वानों ने कृपा लिखा है उनमें भी परम्परा मतभेद है। अतः यह विषय क्षेत्र भी पृथक् रूप
में खोज करके एक संशोधन की आवश्यकता है। वास्तव में पुराण साहित्य भवन
के अतीत गौरव की प्रेरणादायक प्रेरणा विधि है। हमने हमारी संस्कृत और संस्कृति
के विपरीत अर्थों का संशोधन प्रस्तुत है। पुराणसाहित्य को संस्कृतपुराण
के वेदों में भी शामिल कर दिया गया है। यद्यपि यह सत्य अनुभूति है, तब भी हमने पुराण
साहित्य का महत्व अवश्य प्रकट किया है।

पुराण शब्द का अर्थ—पुराण शब्द का सामान्य अर्थ जो पुराण ही है
संस्कृत के होषकारों ने इसका एक अर्थ रचना भी किया है। इसके अतिरिक्त एक विशेष
अर्थों को भी पुराण कहा जाता है। साहित्य में एक विशेष कोटि के साहित्य को

- १. श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन
सहित्य में पुराण शब्द के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३
- २. पुराण का अर्थ और अर्थों का अध्ययन
श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३, १४
- ३. पुराण का अर्थ और अर्थों का अध्ययन
श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३
- ४. पुराण का अर्थ और अर्थों का अध्ययन
श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३
- ५. पुराण का अर्थ और अर्थों का अध्ययन
श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३
- ६. पुराण का अर्थ और अर्थों का अध्ययन
श्रीमद्भागवत पुराण के अर्थों का अध्ययन : श्रीमद्भागवत पुराण का अर्थ, श्लोक १३

पुराण नाम से अभिहित किया गया है।^१ पुराणा या प्राचीन होने से इस साहित्य को पुराण कहने में यह भी आधिक्य रूप में सत्य है किन्तु पुराण और भी कागलों से पुराण कहलाता है। यास्क ने कहा है कि 'जिनमें पुरानी बस्तु भी नवीन हो जाती है उसे पुराण कहते हैं'। अमर कोश कायदा में कहा गया है कि उनके हुआ अथवा, भूते हींकर भी नवीन या पुरे हो भूत भविष्यत् प्रथो ता कथन कर्म वाका माल् पुराण कहलाता है।^२ यह पुराण में भी नवी अर्थ स्वीकार किया गया है।^३ अतः ज्ञात होता है कि पुराण शब्द का अर्थ केवल 'पुराणा' नहीं है यास्क पुराणे को तथा अतएव कहने वाला तथा अतएव (भविष्यत्) का कथन करने वाला साहित्य पुराण है। भविष्य पुराण का अन्तिमक इसका अर्थ है।

किन्तु तो सा विद्वान् है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पुराण प्रामाण्य निधि है और भारतीय इतिहास सम्बन्ध और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्त्व है।^४ भारत के प्राचीन साहित्य में इतिहास और पुराण शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त मिलते हैं।^५ किन्तु पुराणों से जिस प्रकार की प्रामाण्य और अनिश्चित घटनाओं का उल्लेख है उनमें उन्हें ऐतिहासिक मानना आज के इतिहासी युग में सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पुराणों को शैली अनिश्चित पूर्ण, प्रात्यक्षिक और साक्षात्कार है, उनके मूल में जाकर ही हम ऐतिहासिक सत्यों तक पहुँच सकते हैं। अनेक विद्वानों ने पुराणों का ऐतिहासिक मूल्यमान किया है। राजकृष्णदास जी का मतान्त है कि पुराण-साहित्य एक समय सर्वत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और पुराण तथा इतिहास शब्द समानार्थक थे।^६ वायु और ब्रह्मण्ड पुराणों का शब्द को इतिहास बनाने तथा महाभारत का शब्द को पुराण बनाना यह मिथ्या कल्पना है कि इतिहास और पुराण शब्द अर्थात्साधन से समानार्थक थे। पुराणों में प्रामाण्य और अविश्वसनीय घटनाओं का प्रवेश उनमें साक्ष्यकारिता आ जाने से हुआ है। ब्रह्मवैवर्त तथा विष्णु पुराण में आई हुई पुराणों की परिभाषा में सर्व (महाभूतों की सृष्टि का वर्णन) प्रतिमर्ग (प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि) वन (वनावलियों का वर्णन) मन्वन्तर (कल्पान्तों तथा मन्वन्तरों का वर्णन) तथा वनातुचरित (वनों के प्रधान महःपुरुषों के चरित का वर्णन) ये चारों लक्षण पुराणों का ऐतिहासिकता का ही बोध कराने हैं।

१ पुराणसाधनसिद्धांत-संस्कृत-संस्थानः।
 वेदाः स्यान्साहित्यिकानां जनेभ्यः च कर्तव्येण। यादवत्कथं कृति १-३।
 २ पुराणं कल्पान्तं पुराणवत् भवति (निरुक्त ३: १६। २४)
 ३ पुराणवत् यदा पुराणं कथितं तदा पुराणं कथितं तदा अर्थो अस्ति (अमरकोश बही संस्क०)
 ४ पुराणं मानसां पक्ति पुराणं केन वै मन्वन्तं पदमपुराण १: ०, ५३।
 ५ डॉ० कृष्णदास शर्मा: दूर और उत्तम साहित्य, पृ० १३६ प्रथम संस्करण
 ६ इतिहास पुराणानां वेदं समुपसृज्यते। महाभारत काण्डि पृ० ५०-५
 तथा—इतिहास पुराणं पचनं वेदानां वेदान्। द्वान्द्वोरप्य उच्यते ७-१-१
 ७ सर्वोद्य प्रतिमर्गेषु वेदांसम्बन्धगाणि च।
 वनातुचरितं चैव पुराणं पंचजज्ञसम् ॥ विष्णुपुराण—३-४-२६
 ८ 'पुराण-संविदात्'—रायकृष्णदास श्री वेङ्कटेश्वर समाचार वन्दे २२-१०-५४ का अंक।

पुरातन विश्व सभ्यता के आन्दोलन की समस्त घटनाओं इनक्याओं और परम्पराओं का अध्ययन मानते हैं। काश्मिरी इतिहास के लेखक हैं कि यद्यपि समस्त विश्व के आर्यिक मानव वर्ग में इस प्रकार की पुराण जगत् और विश्वस्य जात जाते हैं, तथापि ऐसी मामूली भावनाएँ, विश्व, प्राचीन यमान, रोम और म्केलेनेट्टा के निवासियों में प्रचुरमात्र में प्राप्ता होती है।¹ इन काल में उन की दृष्टि की जाया है कि पाश्चात्य विज्ञान भी पौराणिक साहित्य का अस्मिन्व मानव-परम्परा के साहित्यगत में स्वीकार करते हैं। भारतीय साहित्य में पुराण साहित्य को विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद में भी प्राचीन मानते हैं—

पुराणो सर्वे शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणो रभुतम् ।
 यन्मन्त्रं च ब्रह्मेणो वेदान्तस्य विनिर्गतम् ॥

मन्त्रस्य पुराण १३-३

यन्मन्त्र ब्रह्मणो में वेदों के समान ही उद्विक्त और पुराण को भी परमान्त का निःशक्य बनाना गया है—

स यथाश्वात्सरेभ्योऽहिनासृष्टाश्मन्त्राणि विनिष्कृतयेव वा अरेभ्यो महतो भूतस्य निष्कृतिर्मातृद्वयं सृष्टेः सृष्टेः, नामकेवाऽप्यर्थाङ्गम इतिहास, पुराण विद्या उपनिषदः स्योकाः सृष्टाऽसृष्टाऽप्यर्थाङ्गम इति व्याख्याऽन्वयप्रवेत्ति सङ्गति निष्कृतिर्मातृ ॥

यन्मन्त्र ब्रह्मणो १३-३/११०

छान्दोग्य उपनिषद् में पुराण का मान उल्लेख किया गया है² अथर्ववेद में चारों वेदों के साथ पुराण की भी परिचयित किया गया है।³ इसमें कश्चित्त सार के प्रति श्लोक किसी पुराण के सवाद में उद्धृत या जान चूकता है।⁴ बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है कि वेदों के साथ पुराण भी महत्त्व में निःसृज हुआ है।⁵ अतः यदि हम पुराण की उत्पत्ति भी वेदों के साथ ही मानते तो इनकी प्राचीनता सदियों वर्ष ही जायगी। किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि पुराणों में वेद सृष्टि साहित्य की नवीन व्याख्या की गई है, पुराण को वेद के समान प्राचीन श्रद्धा उसका समकालीन नहीं माना जा सकता, किन्तु साथ ही पुराण की प्राचीनता भी निःसृज है। यह बात अत्यन्त है कि हम पुराण का जो विद्वित, परिचयित और परिचयित रूप आज देते रहे वे वह रूपने मुख्यरूप में न रहा हो।⁶ किन्तु कुछ विद्वान् पुराण साहित्य का अस्मिन्व काको विकसित रूप में वैदिक युग में भी मानते हैं। वे अपने मत का आधार वेद और उपनिषद् में पुराण का उल्लेख मानते हैं। ऐसे विद्वानों में श्रीरुद्र सदाशरणदास उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने एक लेख में कहा है — 'पुराण साहित्य की वैदिक काल में मन्त्र ही सिद्ध नहीं होती, बल्कि यह भी प्रकट होता है कि उसका कितना समान था। किसी नये साहित्य का यह पद नहीं हो

1 New popular Encyclopaedia Vol. 9 p. 40.
 2 छान्दोग्य उपनिषद् ३. ४. १.
 3 अथर्ववेद ११. ७. २४.
 4 बृहदारण्यक २. ४. १०
 5 सूर और उनकी साहित्य (डा० हरव शंजाल शर्मा) पृ० १६४

सम्बद्ध है।^१ किन्तु इसी पुराण के कदार खण्ड में पुराणों का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से किया गया है। वहाँ कहा गया है कि 'अठारह पुराणों में से दस में शिव का, चार में ब्रह्मा का, दो में विष्णु का तथा दो में देवी का माहात्म्य गान किया गया है।^२ कुछ विद्वानों की सम्मति है कि पद्म तथा वराह पुराण विष्णु से, अग्नि पुराण शिव से, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मसंहिता, मार्कण्डेय, भविष्य तथा वामन पुराण ब्रह्मा से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् बाहु पुराण तथा शिव पुराण को एक ही पुराण मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान् बाहु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण को एक ही पुराण मानते हैं। श्री पार्शीटर महोदय को दूसरा मत मान्य है। इसी प्रकार पुराणों की नामावली में परिगणित भागवत पुराण में कुछ लोग श्रीमद्भागवत को प्रस्ताव करते हैं और कुछ लोग देवीभागवत को। कामतक ने यह एक विवादग्रस्त विषय है कि 'भागवत' नाम से पुराणों की अष्टादश सख्या के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को गिना जाए या देवीभागवत को। इस विषय का युक्तियुक्त विवेचन यहाँ किया जायगा।

पुराणों का प्रतिपाद्य विषय

उपर्युक्त वर्गीकरण तथा विभिन्न पुराणों के विषय विषय का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि पुराण किसी आधिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते तथा विभिन्न प्रकार के आचारों का निरूपण करते हुए नैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। पुराणों में विभिन्न देवताओं की उपासना का निरूपण किया गया है और उन्हीं के प्राधान्य की स्तुति, वलि, पूजा, अन्न, उत्सव, यौगंध्यादि का वर्णन किया गया है। पुराणों में त्रिमूर्ति के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत हुए विदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का एकत्व स्वीकार किया गया है।

समस्त पुराण ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का उद्घोष करते हुए उसी को सृष्टि का आधिकारक मानते हैं। अनेक देवता उसी एक ईश्वर की शक्ति हैं। पुराणों में बहुदेववाद का अस्तिपक्ष किया गया है। सभी देवताओं को पुराणों में बराबर महत्त्व और शक्ति का भावना समझा गया है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पुराण किसी आधिक सम्प्रदाय का प्रतिपादन करने के कारण किसी एक ही विशिष्ट देवता का अत्यधिक प्रतिपादन सम्पूर्ण प्रालम्बिक से करते हैं और उसी देवता की भक्तिमय उपासना का प्रबल उद्घोष करते हैं। अतएव सभी देवताओं में पुन्य-वृद्धि का समर्थन करते हैं।

१. पुराणों का वर्गीकरण भविष्य के दिवसः।

२. पुराणों का वर्गीकरण वराह के भागवतः।

३. पुराणों का वर्गीकरण वामन के भागवतः।

४. पुराणों का वर्गीकरण मार्कण्डेय के भागवतः।

५. पुराणों का वर्गीकरण भविष्य के भागवतः।

६. पुराणों का वर्गीकरण बाहु के भागवतः।

७. पुराणों का वर्गीकरण देवी के भागवतः।

८. पुराणों का वर्गीकरण शिव के भागवतः।

—स्कन्दपुराण, शिवरहस्य, रामव खण्ड।

१. पुराणों का वर्गीकरण भविष्य के दिवसः।

२. पुराणों का वर्गीकरण वराह के भागवतः।

स्कन्द पुराण केदार खण्ड

में भी मनुस्मृतिके अथर्वश्रौतियों के उपाख्यान द्वारा विद्या का ही सर्वोच्चतर निष्पत्ति किया गया है।¹ पुराणों के प्रथम सर्गों में स्पष्ट है कि विशिष्ट विशिष्ट देवताओं की महत्ता का प्रावधान पुराणों में नश्य है। पुराणों के अन्त में भी इस बात की पुष्टि होती है। किन्तु पुराणों में किना अथर्वश्रौतियों की महत्ता का उपाख्यान का विशेष भी नहीं किया गया है। अतः जाना जाता है कि पौराणिक धर्म बहुदेवतादी (Polytheistic) होने हुए भी एक ही तंत्र की सर्वव्यापकता का समर्थक (Pantheistic) है। जिस पुराण में विना देवता की महत्ता और उपाख्यान का प्रतिपादन है उस पुराण में उन्हीं देवता को मूर्ति के आदिकारण रूप का सर्वोच्चतर दिया गया है।

कालान्तर में जब प्राचीन वैदिक देवता अनेक उपाख्यान पद्धतियों के कारण अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे में विलीन कर चले तो विभिन्न उपाख्यान पद्धतियों की उपासना और मनुष्य के ऐहिकामुखिक कल्याण में उनके योगदान के सम्बन्ध में सम्पूर्ण चिन्तन का नूतनता हुआ। उग्राणियों में ब्रह्मा, शिव और ज्योति के सम्बन्ध में विचार कर अनेक समस्याओं को जन्म दिया गया तथा अनेक मनीषियों ने अपने-अपने समाधान भी प्रस्तुत किए। उग्राणियों-साहित्य के अन्तर्गत स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि एक ही सर्वोच्च शक्तिनी जन्म अपने आपको विभिन्न रूपों में व्यक्त करती है और वही एक संपन्न प्रपंच को व्याप्त करके स्थित है।² उग्राणियों का यही विचार परवर्ती साहित्य में विकसित और चलनविन हुआ और पुराणों में उसने अवतारवाद का रूप ग्रहण कर लिया। भगवान् के इन विभिन्न शक्तिमय रूपों में पूजाबुद्धि का लंघन हुआ और इसीसे उम उपासक तंत्र का जन्म हुआ जिसे हम भक्ति के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि भक्ति के तत्त्व-बीज खोजने पर वैदिकसाहित्य में भी उपासक हो जाते हैं, किन्तु एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में भक्ति का चरम विकास पुराणों में हुआ। जिसका सर्वोच्च निदर्शन श्रीमद्भागवत पुराण है। अतः हम कह सकते हैं कि पुराणों का प्रधान प्रतिपादकविषय भक्ति द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति है। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवत तो भक्ति को मोक्ष से भी अधिक महत्त्व प्रदान करता है।³ श्रीमद्भागवत में भक्ति केवल साधन ही नहीं साध्य के रूप में प्राण्य है।⁴

- १ तन्निशान्नाथ मुनयो विभिन्ना लुक्तरायाः ।
 मूर्धानं अर्धुर्विष्णु कनः शान्तिर्वैरोऽम्बर ।
 धर्मः माहात्म्योऽज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ।
 त्रैलोक्यं चाष्टधा सन्नापतत्प्रात्ममहापदम् । (श्रीमद्= १०. ०६. १३-१६)
- २ ईशान्वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्सं नगम् ।
 ईशान्वास्योपनिषद् १
- ३ नैवेद्यत्वाशिषः कदापि ब्रह्मर्षिर्नोऽन्युतः ।
 भक्तिं यदा भगवति लब्धवान्युसुवेऽन्यदे । श्रीमद्भा० १२. १०. ४
- ४ न परमेष्ठिनं न महेश्वरिण्यम् ।
 न सार्वभौमं न रसायिपत्यम् ।
 न पापं सिद्धीरपुनर्भवं वा
 नम्यतेऽस्मिन्नेति महिनात्म्यम् ॥ श्रीमद्= १२. २४. १४

अपनी मकरंदरूपव्यवस्था के कारण श्रीमद्भागवत सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ और इसे पुराणों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया ।^१

सर्वाधिक व्यापक, प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय पुराण श्रीमद्भागवत—पुराण साहित्य का उग्रतम महत्त्व एवं सशक्ति परिचय देने के अनन्तर यह समीचीन प्रतीत होता है कि हम सबसे अधिक विचारण, व्यापक, लोकप्रिय एवं प्रभविष्णु पुराण श्रीमद्भागवत की ओर विवेकपूर्ण दृष्टि प्रयोग करें। श्रीमद्भागवत ने मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य ही नहीं, समस्त भक्ति साहित्य की—यहाँ तक कि निर्गुण भक्ति, सगुण-गम भक्ति-साहित्य को भी अत्यन्त बलपूर्वक रूप से प्रभावित किया है। हिन्दी भक्ति साहित्य ही नहीं श्रीमद्भागवत ने बंगला, अरमिया, उडिया, गुजराती, मराठी तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य को भी अत्यन्त गम्भीर और व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आचार्य हरानिप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में “भक्ति के नवीन आन्दोलन ने अनेक लौकिक जन-आन्दोलनों को बालू का परत पकड़ा दिया और भागवत पुराण का प्रभाव बहुत व्यापक रूप से पड़ा।”^२ मोस्वामी तुलसीदास ने श्रीमद्भागवत की भक्ति के आदर्श को स्वीकार कर अपने अमर भक्ति शब्द रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस में अनेक स्थान श्रीमद्भागवत के छायादुवाद हैं। तत्त्विक दृष्टि से तो श्रीमद्भागवत का बड़ा ही स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव रामचरितमानस पर पड़ा है। अस्तुतः प्रबन्ध का विवेक्य विषय हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य पर ही श्रीमद्भागवत का प्रभाव निकला है, अतः कृष्णभक्ति-साहित्य की सर्वा प्रकृत वहीं है। श्रीमद्भागवत की प्रसिद्धि-प्रचार के निम्नानुसारेण के लिए उक्त कर्वाँ ही गई हैं।

श्रीमद्भागवत और देवी भागवत -

यद्यपि देव्याय कृत अठारह पुराणों का सम्मिलन करते हैं तो 'भागवत' नाम न पुराणों में एक ही पुराण किताब आता है। किन्तु अनेक लोक में 'भागवत' नाम से दो पुराण प्राप्त होते हैं, एक श्रीमद्भागवत तथा दूसरा देवीभागवत। अतः व्यास कृत अठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण सम्मिलित किया जाय, यह एक विचारणीय प्रश्न है। अतः यद्यपि तथा कृत अठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत ही अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत सम्मिलित है।^३ परन्तु पुराणों के श्रीमद्भागवत साहाय्य में आया है कि श्रीमद्भागवत की अठारह पुराणों के अन्तर्गत अनेक अनेक अनेक अनेक, तीर्थ, अग्निमुनि आदि के वहाँ वेद, वेदान्त आदि विषय भी विस्तृत अनेक अनेक आया है। व्यासकृत पुराणों के आगमन प्रथम में वहाँ अठारह पुराणों की संख्या की गई है क्योंकि अठारहवाँ पुराण तो श्रीमद्भागवत ही श्रोतव्य है।^४ इसी पुराणों में एक अन्य स्थान पर आया है कि सत्यवतीसुत व्यास को सत्रह पुराण

^१ श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या

^२ श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या १० : १३ : १५

^३ श्रीमद्भागवत का सम्मिलन : आचार्य हरानिप्रसाद द्विवेदी पृ० १७

^४ श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या

श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या

श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या

श्रीमद्भागवत की संख्या देवीभागवत की संख्या

संख्या ० श्रीमद्भागवत साहाय्य ।

श्रीमद्भागवत साहाय्य ।

सहिता की रचना की।^१

सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षण तो अल्प पुराणों के लक्षण हैं। महापुराणों में दस लक्षण पाये जाते हैं।^२ श्रीमद्भागवत में सर्ग, विलस, स्थान आदि दस लक्षण हैं। श्रीमद्भागवत में कहा भी गया है—

तस्माद् इदं भागवतं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
 श्रीमत् भगवता प्राह प्रीतः पुष्याय हृतकृत् ॥
 अत्र सर्गो विस्मयश्च स्थानं षोडशं मूर्तयः ।
 मन्वन्तरेषामुक्तवा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥^३

पद्य पुराण में कहा गया है कि भागवत में त्रिंशती वृत्तिस अध्याय है।^४ किन्तु श्रीमद्भागवत में त्रिंशती पैंतीस अध्याय है, अतः श्रीमद्भागवत अठारह पुराणों के अन्तर्गत नहीं है किन्तु श्रीमध्वाचार्य और श्रीवल्लभाचार्य ने अद्यानुर, जलहरण आदि की कथा के तीन अध्याय प्रक्षिप्त माने हैं, अतः श्रीमद्भागवत से त्रिंशती वृत्तिस ही अध्याय मानकर उन्होंने उसे क्लामकृत अठारह पुराण के अन्तर्गत माना है। किन्तु द्वात्रिंशत् त्रिंशत्ञ्च पद का अर्थ जाकपायिय मयास से तीन मी पैंतीस भी हो सकता है, और रोपाक भट्टाचार्य का यही मन है।^५ अतः इसी कारण श्रीमद्भागवत अष्टादशत्न से अपदम्य नहीं हो सकता।

शाक्त लोगो का मत है कि श्रीमद्भागवत महापुराण नहीं है किन्तु वे लोग भी अठारह पुराणों में परिगणित 'भागवत' नामक पुराण के मन्वन्व में एक मत नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि भगवती (दुर्गा) के जन्म और चरित का वर्णन करने के कारण 'कान्तिकापुराण' ही भागवत पुराण है। कुछ लोग देवीभागवत पुराण को भागवत-पुराण के नाम से अठारह पुराणों में सम्मिलित करते हैं। प्राचीन निरुक्त-साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में श्रीमद्भागवत पुराण ही अठारह पुराणों के अन्तर्गत परिगणित

- १ दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः
 नाभ्रशान् मनसा तोषं भारवेनाञ्जलि भासिनि ।
 चक्षुर सच्चिदानेता श्रीमद्भागवती पराम् ॥
- २ सर्गैश्च प्रतिसर्गैश्च वंशोमन्वन्तराणि च ।
 वंशानुचरितं चेति पुराणं षं च लक्षणम् ॥
 षट्दशपुराणानां लक्षणं कथयामि ते ।
 दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् ॥

अज्ञानैर्वैत पुराण, कृष्णलक्ष्मण चरमाध्याय ।

३ श्रीमद्भागवत २. ६. ४३ तथा २. २०. १

४ द्वात्रिंशत्त्रिंशत् च यस्य विलसच्छास्त्रः

श्रीमद्भागवतं अत्रिं हृतं भागवतदीपिका में उद्धृत । १. १. ७

५ श्रीमद्भागवत दीपनी व्याख्या पृ० २ (कृष्णलक्ष्मण से प्रकाशित सं० १६३०)

है। उद्योग के प्रसिद्ध निबन्धकार तर्कसिंह वाजपेयिन् ने 'लक्ष्मीधर' का मत उद्धृत कर काशिकापुराण का निराकरण किया है।^१

श्रीमद्भागवत और देवीभागवत के वर्ण-विषय को देखने से भी यही पता चलता है कि श्रीमद्भागवत ही अठारह पुराणों के अन्तर्गत है। श्रीमद्भागवत में कही देवीभागवत की वर्ण नहीं है और न पुराण पत्रिका में नहीं भी उसके साथ प्रतिद्वन्द्विता का भाव ही स्पष्ट है, किन्तु इनके विपरीत देवीभागवत में श्रीमद्भागवत का स्पष्ट उल्लेख करते हुए इसे उपपुराणों में गिना गया है और देवीभागवत को महापुराणों में।^२

इससे भी (१०३० ई०) के अग्रसे भारत-वर्षान में पुराण-सूची में 'वासुदेव-भागवत' का नामोत्प्रेषण किया है। 'भागवत' के 'वासुदेव' विशेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अलक्ष्मी का नामयं श्रीमद्भागवत से ही है क्योंकि इसमें वासुदेव श्रीकृष्ण का ही आद्योपान्त माहात्म्य विद्यमान है और 'वासुदेव' शब्द 'वैशख' का मामानार्थक भी है।^३

मलयपुराण में भागवत का उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि जिस पुराण में गायत्री को अर्पित कर धर्म का सविस्तर वर्णन है, जो वृद्धमनु के वध-वर्णन में युक्त है, जिसमें सातस्वत-कल्प के नर-श्रेष्ठों का वृत्त है, उस पुराण का लोक में 'भागवत' कहा जाता है।^४ किन्तु वर्तमान श्रीमद्भागवत पुराण में ये लक्षणा कुछ अतिन होने हैं कुछ नहीं। श्रीमद्भागवत के आद्यन्त में गायत्रीमन्त्र की ही प्रशंसा है^५ और वृद्धमनु की इसमें उल्लेख है^६ किन्तु इसमें सातस्वतकल्प के स्थान पर ब्राह्मणकल्प का उल्लेख है^७ इसमें अनुमान होता है कि भागवत का एक प्राचीन रूप रहा होगा जिसमें से कुछ अंश वर्तमान श्रीमद्भागवत में सुरक्षित रह गया है। कुछ पुराणों में इसी प्राचीन भागवत का उल्लेख है।^८

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत

१. अठारहपुराण पुराण पुराण शब्द सुसूची।

विद्यासायण सुविधि काशिकापुराण विवेचनम् ४

२. तर्कसिंह वाजपेयिन्, महा-काशिकापुराणव्याख्यान-प्रदीपः एव न मतिः सगवत्या इदं

पुराणं किं आदिशुद्धादि संस्यवदन्त नोऽनेन ये वदन्ति ते निरन्तराः—(सिद्धाचार प्रदीप

१०१)। अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

३. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

४. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

५. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

६. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

७. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

८. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

महानुराण (वैशखी संस्क० १३, २०-२१)

१. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

२. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

३. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

४. अथवा श्री-तुलसीदास जी की टीका काशिकापुराण भाग १ पृ० १२२, १६३-१६६ ई०)

देवीभागवत पुराण में अधिक प्रमुखता एवं महत्त्व प्रदर्शित करती है।

श्रीमद्भागवत की रचना काल श्रीमद्भागवत की अतिरिक्त लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि ने इसकी रचनाकाल के अनुसंधान की ओर अनेक देशी और विदेशी विद्वानों का ध्यान आकृषित किया। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद भाया जाता है। अज्ञातु हिन्दुओं और अनेकानेक वैदिक-निष्ठ दार्शनिकों सम्बन्ध अनुसंधानियों के मत में हजारों वर्षों का अन्तर है। अज्ञातु वैदिक हिन्दू श्रीमद्भागवत की महाभारत के पुरान्त भाग की रचना मानते हुए इसे लगभग गीच हजार वर्ष पुराना कथ्य मानते हैं। और अविद्वत्तर आधुनिक विद्वानों का मत है कि एक अत्यन्त परवर्ती रचना है जो ६ वीं शताब्दी ईसवी में आश्रित गहने की तर्ह है।^१ कुछ विद्वान् श्रीमद्भागवत को १३ वीं शताब्दी की रचना मानते हैं। इनमें विद्वान्, नेहरूजीय कोलकुक तथा बर्नार्ड उल्लेखनीय हैं। इनके आन्तमती का निराकरण हो चुका है।^२ बलालमेन (१०५० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'दानसागर' (इंडियन प्रॉक्लिन्, एम० ए० फॉन् डेरी) में एक भागवत पुराण का उल्लेख किया है। उनकी स्थापना है कि 'मैंने भागवत से इसनिग कोई उद्धरण प्रकृत नहीं किया कि उसमें 'दान' विषय पर कोई प्रकरण वही है।

'भागवत च पुराण ब्रह्माण्ड शैवतारदीय च।

दानविधिद्वयम् एतन्नय इह न विद्वद्भवधायं ॥'

वास्तव में वर्तमान श्रीमद्भागवत में दान विषय पर कोई प्रकरण है भी नहीं। हाँ, देवीभागवत में इस विषय पर नवसम्बन्ध का उन्नीसवीं अध्याय है। अतः बलालमेन का तात्पर्य उक्त श्लोक में आश्रित देवीभागवत से न होकर वैष्णव श्रीमद्भागवत से है। उन्होंने स्पष्ट सामोलेखपूर्वक 'कालिकापुराण में कई श्लोक अपने ग्रन्थ 'दानसागर' में उद्धृत किये हैं।^३ बलालमेन के कथन से तहाँ एक और श्रीमद्भागवत का अठारह पुराणों में परिणमित भागवतत्व सिद्ध होता है वहाँ उसके रचनाकाल की उत्पत्तीका का संवधारण भी हो जाता है। पहले कहा जा चुका है कि प्रथितार विद्वान् ६०० ई० में परवर्ती नहीं मानते। सम्भवता हमने भी पूर्ववर्ती होने की ही है। पर तन्निव आर्थर गीच लिखते हैं—

१ श्री अमरहाण्ड सरस्वती का लेख 'श्रीमद्भागवत का रचनाकाल' कथायः मंगलमास ३० २४

२ (अ) श्री म० बी० वैश का लेख—जर्नल ऑफ इन्वे लांच ऑव राबल एजिगैडिज नो-७३० १९२२ ई०, पृ० १४४

(आ) भारत-रकर—रेण्डिजिस, रौविज्म एंड मारनर रिजीजिस सिस्टन्स ३० ४८

(इ) बार्जेंटर—पेंसिलव्ण्ड इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रै डिपार्ल ३० ५०

(ई) फर्कूहर—आउटलाइन ऑफ़ डी रिजीजिस लिट्रेचर ऑफ़ इंडिया ५० २२१

(उ) विद्वानिद्व—इंडियन लिट्रेचर-दिल्ल १ पृ० ५२६

३ श्री आ० म० इज—ज्यू इंडियन पॉटिकवेरी १९३२-३६ भाग १ पृ० ५२२

४ वही, पृ० ५२४

"Hindus are by no means in accord as to its age or authorship, but as Alberuni mentions it, it can hardly have been written after 900 A. D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country."¹

बैसा कि पहले कहा जा चुका है 'पुराण' अपने मूलरूप में काफी प्राचीनकाल में विद्यमान थे किन्तु शंकराचार्य (६०२ ई०) के समय उन्हें प्रमाखकोटि में माना जाने लगा था। रामानुजाचार्य (११३० ई०) के समय में पुराणों की भारी मान्यता हो गई थी। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने अपने दार्शनिक ग्रंथों में विष्णुपुराण के प्रसंग प्रमाख रूप में उद्धृत किये हैं। विद्वानों का मत है कि श्रीरामानुजाचार्य श्रीमद्भागवत से अपरिचित न थे,² केवलकर आदि कतिपय आधुनिक विद्वान् योविन्दाष्टक को शंकराचार्य की प्रामाणिक कृति मानते हैं और श्री जीवसोस्वामी (१६वीं शताब्दी ई०) का भी यही मत है। योविन्दाष्टक के आधार पर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि शंकराचार्य श्री श्रीमद्भागवत से परिचित थे।³ श्रीमद्भागवत में बलराम की तीर्थयात्रा का वर्णन है।⁴ किन्तु जहाँ उसमें पूरुष, ब्रह्मर्षि आदि अनेक छोटें-छोटें तीर्थों का उल्लेख है, वहाँ जगन्नाथपुरी जैसे प्रमुख तीर्थ की चर्चा ही नहीं है। किन्तु शंकराचार्य ने पुरी में अपना मठ स्थापित किया था। अतः सहज ही अनुमान होता है कि श्रीमद्भागवत की रचना पुरी की स्वामन्व में बहुत पूर्व हो चुकी थी।

श्रीमद्भागवत में तमिल वंशकों का उल्लेख है⁵ तथा हूण, पुलिन्द, पुत्तक, यवन आदि विदेशियों के बंधनवत् मन स्वीकार कर लेने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

किरतहूणान्ध्रपूरितन्दपुत्तकवा

आभोरकंका यवमाः बलःययः ।

पैजमे व काला मनुष्यावधायमाः

सृष्टमिह तस्मै प्रभविष्यमे नमः ।⁶

अर्थात्—

ये ही विद्वन्महोत्तमरत्नि च देवमाया

सृष्टिपुरुषकवचरा अपि राणजीवाः ।⁷

११०० वर्ष के प्राचीन सार्वभौमिक इतिहास में विदित होता है कि भारत पर हूणों के आक्रमण ५३० ई० से आरम्भ हो गये थे।⁸ अतः श्रीमद्भागवत का रचनाकाल ५३० ई० के उपरान्त ही अत्यन्त सम्भव है।

१. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

२. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०-२२, पृ० १२०

३. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

४. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

५. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

६. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

७. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

८. १००० वर्ष के प्राचीन इतिहास, पीठ संस्करण, भाग २२, पृ० १२०

वर्णित है। इस प्रकार महाभारत का उपरोक्त रचित महाभाग्य का परिशिष्ट रूप त्रिवेद्य पुराण में भी आरूप-रूप-सा उपोपाय वर्णित है। इतका रचनाकाल लगभग ४०० ई० है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का त्रिवेद्य पुराण में पद्य रचना है क्योंकि इसमें श्रीकृष्ण चरित्र में पाण्डव एवं विष्णु का वर्णित है। श्रीकृष्ण-वर्णित है। इनके विकास और विस्तार में ग्रन्थ को एक या दो जनाश्रितों का समय लगा होता है। अतः श्रीमद्भागवत को हम छटी शताब्दी के पूर्वाह्न (लगभग २५० ई०) की रचना मान सकते हैं। यही सिद्धि इसके रचना काल की पूर्व सीमा का अवधारण करती है। यह जो सत्य ही अनुमेय है कि किस प्रकार अन्य पुराणों में न कुछ अत्यन्त प्राचीन होने हुए भी कालान्तर में प्रसिद्ध हो गए उसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी वर्तमान रूप तक पहुँचने में कुछ परिवर्धन अवश्य हुआ होगा।

श्रीमद्भागवत के रचयिता —

भारतीय परम्परा वेदव्यास को श्रीमद्भागवत का रचयिता मानती है। सभी पुराणों के रचयिता वेदव्यास हैं।^१ व्यास के नाम के माथ तीन भिन्न भिन्न जूड़े हुए हैं— (१) वेदव्यास, (२) वादरायण व्यास तथा (३) कृष्णार्द्रपायन व्यास। कुछ विद्वान् इन तीनों को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं किन्तु अधिकतर लोग तीनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा में सर्वथा निर्विकल्प भाव से तीनों को एक ही व्यक्ति माना गया है और उन्हीं को महाभारत, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भागवत आदि अठारह पुराणों का कर्ता माना गया है। श्रीमद्भागवत के रचयिता के रूप में हमें तीनों नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त मिलते हैं—पदा

१—वेदव्यास—

मरीचे शृशु कक्ष्यामि वेदव्यासेन दत्कृतम् ।
श्रीमद्भागवत नाम पुराणं वेद सम्मितम् ॥^२

२—वादरायणव्यास—

स वै मह्यं महाराज भगवान्वादरायणः ।
इमां भागवतीं प्रीतः सहितो वेद सम्मिताम् ॥^३

३ कृष्णार्द्रपायन व्यास—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
अचीतवान्द्रापरादौ पितुर्द्रैपायनावहम् ॥

१ वेदव्यासस्तु धर्मोत्तम वेदशास्त्रविभाग कृत् ।
श्रीकृष्णसर्वधर्माधि पुराणेषु सहीपते ॥ इन्द्रवारदीयपुराण २. १०४
२ भारतीय पुराण से भागवततत्त्व विमर्श में उद्धृत ।
३ श्रीमद्भाग्य ० १२. ५. ५९

उथा—

नमो भगवते तत्तमं कृष्णायाकुण्ठमेघसे ।
वत्सदात्मवृद्ध्यानाःसंहितामध्ययामिमाम् १

तथा

श्वेदेषु श्रीमद्भागवताख्यः शास्त्रचूडामणिः । × × तत्—
प्रणेता प्रथमत एवाचार्यचूडामणिः श्रीकृष्णार्द्रपायनः २

पुराणों के रचयिता वेदव्यास को केवल 'व्यास' भी कहा गया है और 'सत्यवतीसुत' नाम से ही पुराणों में ब्रह्मान के साथ उनका उल्लेख है—यथा—

मितद्वुद्व्यादि वृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च ।
परोक्षिच्छुक्रमवादे योज्यो व्यासेन वर्णितः ॥८॥
प्रथोज्जटादशमाहसः सोऽप्यो भागवतामिवः ।
कलिप्राहृष्टहीतानां स एव परमाश्रयः ॥९॥ ३

सत्यवती सुत—

दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
नाप्तवान् मनसातोषं कारतेनापि मामिनि ॥
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवती पराम् ॥ ४

उथा—

एवं निखम्ब भगवान्देवर्षेर्ब्रह्मकर्म च ।
भूकः प्रकृष्ट तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ ५

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत को वेदव्यास की ही रचना माना गया है । कुछ लोगों का कहना है कि श्रीमद्भागवत बोपदेव (तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान) की रचना है । किन्तु यह बात सर्वथा अमूर्त है । बोपदेव से पूर्व ही ब्रानन्द-तीर्थ (मध्वाचार्य) ने श्रीमद्भागवत के धार्मिक एवं दार्शनिक महत्व पर एक ग्रंथ 'भागवत रत्नस्यै मिसावः' लिखा है ४ मध्वाचार्य का स्थितिकाल तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है । यदि मध्वाचार्य बोपदेव के समकालीन भी रहे हों तब भी विद्वानों में प्रसिद्ध इस दलोक से श्रीमद्भागवत के बोपदेवकृत होने का खण्डन होता है—

बोपदेव कृतस्यै च बोपदेकपुराणस्यै ।

कथं टीका. कृताः संसृष्टं तु मन्त्रितुमादिभिः ।

अर्थात् श्रीमद्भागवत को बोपदेव कृत मानने पर बोपदेव से पूर्व हुए हनुमान् और

१. श्रीमद्भागवत = १. १. ८. तथा १२. ३. ३.

२. श्रीमद्भागवत-सत्यवती सुत—श्रीमद्भागवतमाराधेदहिनी टीका. १. १. १.

३. कृष्णपुराण १ वैश्वदेवसंख श्रीमद्भागवत साहाय्य अध्याय ४. श्लोक ८. ९.

४. मध्वाचार्य ।

५. श्रीमद्भागवत = १. ३. १.

६. श्री टीका-कारण कृष्णाचार्य द्वारा सम्पादित 'सर्वसुतम्' में संगृहीत (सम्बद्ध)

के मूलपाठ आदि की समस्याएँ मध्वाचार्य के समय में ही ठठ सही हुई थीं।^१ अनुमान होता है कि तेरहवीं शताब्दी में साम्प्रदायिकता के कारण श्रीमद्भागवत को अपने प्राचीनत्व से अपदस्थ करने के लिए उसे तत्कालीन पंडित बोपदेव की कृति बताया गया। किन्तु वास्तव में पंडित बोपदेव ने लगभग ८०० श्लोकों में श्रीमद्भागवत का दार्शनिक विवेचन करते हुए 'भागवतमुक्ताफल' नाम का एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ को केवल 'मुक्ताफल' भी कहा जाता है। इनमें उन्नीस अध्याय हैं; इस ग्रंथ पर हेमाद्रि (जो बोपदेव के समकालीन थे) की एक टीका भी है जिसका नाम 'कैवल्यदीपिका' है।^२

बोपदेव का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ है 'हरिलीला'। इस ग्रंथ में एक ही तिरसठ श्लोकों में श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका लिखी गई है। हरिलीला पर भी हेमाद्रि ने 'विवेक' नामक टीका लिखी है। हरिलीला के मूलपाठ का आरम्भ इस श्लोक से होता है—

श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायाद्यादि निरूप्यते ।
विदुषा बोपदेवेन संश्रितहेमाद्रितुष्ये ॥

हेमाद्रि ने अपनी टीका का आरम्भ यों किया है—

नमः कुपुत्राय नित्यैकमच्छिदानन्दमूर्तये ।
बदन्तर्गविसर्गादि नाभिरुज्जन्तशक्तये ॥१॥
अयन्ति बोपदेवस्य वाचो विबुधसंमताः ।
अनसारी ज्वलाभासः क्षीरोदस्येव वीचयः ॥२॥
श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी तद्विनिर्मिता ।
हरिलीलाभिधानेयं यथादुष्टि विविच्यते ॥३॥*

इण्डिया सोसैटिस लाइब्रेरी के हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों की सूची में 'हरिलीला' की एक अन्य प्रति का उल्लेख है जिसमें एकही सततर श्लोक है। इस ग्रंथ के अन्त में जो श्लोक है उसमें तो स्पष्ट ही हो जाता है कि बोपदेव श्रीमद्भागवत के कर्ता नहीं है, परन्तु केवल प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत पुराण की अनुक्रमणिका लिख रहे हैं—

१ काश्मीर के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज थे; पुस्तकालय में श्रीमद्भागवत की एक अद्वयत आचीठ हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। म० म० अक्षिराज मोर्षानाथ की का मत है कि यह प्रति बोपदेव के जन्म से भी पूर्व १२ वीं शताब्दी की है। (वेदिये कल्याण सामवर्तक में उक्त प्रति के पृष्ठ विश्व वर्ध अक्षिराज का लेख पृ० १८)

२ न्यू इंडियन एंजिन्वेरी नाम १, १९३८-३९, पृ० ५२५

३ Descriptive Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss in the Library of the University of Bombay 1944, Book I vol I and II, parts I to III No 1303,

४ उपर्युक्त पुस्तक सूची अन्तर्गत १३०४

इति भागवतस्मानुक्रमसूचीरमली कृता ।

विदुषा घोषदेवना विद्वत्केसवसुतुला ॥२७६॥

हरिमीनेति नाम्नेदं हरिभक्तविलोकिता ।

अस्य विनोक्तनादेव हृणी भक्तिविवर्धने ॥२७७॥

उपरोक्त कथन से स्वयं घोषदेव अपने श्रीमद्भागवत के कर्ता होने का प्रतिवाद कर रहे हैं, फिर भी प्रत्यक्ष है कि घोषदेव की श्रीमद्भागवत का रचयिता मानने का प्रवाद एक पक्ष है।

अन्यत्र विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना तृतीया शताब्दी में तामिल प्राय के भक्तों ने की है। वर आर्सेरोज ने लिखा है *It (श्रीमद्भागवत) Can hardly have been written after 900 A. D. and must be due to a Community of singers in the Tamil Country.*²

वेदव्यास का ऐतिहासिक व्यक्तित्व अनिर्णीत होने के कारण पुराणों के कर्ता का निश्चितान्तर निर्दिष्ट करना एक जटिल समस्या है। स्वयं श्रीमद्भागवत एकाधिक व्यासों का प्रक्षेप करता है। कुछ विद्वानों का मत है कि व्यस एक व्यक्तित्व नहीं अपितु एक परम्परा है। प्रचीन काल से ही व्यासपीठ पर बैठकर कथा प्रवचन करने वाले को व्यास नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। किन्तु भारतीय पौराणिक परम्परा बताती है कि वेद व्यास ने वेदों का निरालंकरण किया, पुराण संहिता का निर्माण किया, वेदों का अर्थ निरूपण करने के लिए ब्रह्मसूत्रों का निर्माण किया और ब्रह्मसूत्र के भाष्य रूप में उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की —

वेदस्य अविमण्य सकल्पितेभ्यः प्रदाय च ।

इतिहासं तदन्तर्गमं सप्तसूत्रम् मनीषया ।

पुराणमङ्गलानां चक्रे पुराणार्थविधारकः ।

अथर्थात् निरर्थात्कं ब्रह्मसूत्रमकल्पकम् ॥

सम्भाष्ये सूत्रं पुराणं भागवतं विदुर्दया ॥³

एक स्थान पर श्रीमद्भागवत को श्री जैतन्ध महाप्रभु ने श्री सार्वभौम भट्टाचार्य तथा नन्दप्रसाद चक्रवर्ती के प्रति ब्रह्मसूत्र का 'अद्वैत भाष्य' बताया है और श्रीमद्भागवत को 'अर्थ सूचक' और 'पुराण व्यास की रचना स्वोक्त' किया है।⁴ वादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्र 'ब्रह्मसूत्रस्य' रूप में प्रारम्भ होने हैं और श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ 'जन्माद्यस्ययत' से

² *Catalogue of the Sanskrit and Prakrit in the Library of the India Office. vol II Part II by A. B. Keith. पुस्तक-२३*

³ *Encyclopaedia Britannica IV Edition vol XII page 162*

⁴ *... श्रीमद्भागवत ११. १६. २२*

⁵ *... (अथर्व वेद)*

⁶ *श्रीमद्भागवतसंस्कृतः डॉ. माधोदास शर्मा, पृ. २०.*

जब अन्य स्थान पर श्रीमद्भागवत का व्यास न म्वय ब्रह्मसूत्रों का अथ महाभारत का तात्पर्यनिर्णायक तथा गायत्री का भाष्य बनाया है

अन्तेऽथ ब्रह्मसूत्राणां भारतापरिनिश्रयः ।

गायत्रासंन्यासतोऽपि श्रीमद्भागवताभिः ॥^१

विभिन्न वैशेष्य सम्प्रदायों में—जिनमें रामानुज, निम्बार्क, मध्व, चैतन्य तथा बल्लभ-सम्प्रदाय उल्लेखनीय हैं, निर्विकल्प रूप में व्यास को ही श्रीमद्भागवत का रचयिता माना गया है। इन सम्प्रदायों में केदम्बक, व्यास, कृष्णार्जुणव्यास तथा वादरायण व्यास सभी को एक ही व्यक्ति माना गया है :

एक ही कर्ता की रचना —

श्रीमद्भागवत एक ही व्यक्ति की रचना होने के लक्षणों से युक्त है। इसकी सुदृढ़ज्ञानित सौधी एवं संवर्धित रचना-विधान को देखने में यह स्पष्ट हो जाता है। सारे ग्रंथ में पूर्वापर सम्बन्ध बना हुआ है। उदाहरणार्थ तृतीयस्कन्ध अध्याय बारह में वर्णित परमाणु में लेकर पराङ्ग पर्यन्तकाल और जगत् युगों के प्रमाण का हवाला द्वादशस्कन्ध के चौथे अध्याय में दिया गया है^२ तथा विष्णुपार्षद जन्मविजय के वारम्बार जन्म का वृत्तान्त जो तृतीय स्कन्ध अध्याय १४, १६, १७ में वर्णित हुआ है, उसका हवाला दशमस्कन्ध अध्याय चौहत्तर में दिया गया है।^३ इस प्रकार के पूर्वापर प्रसंगों की संगति अन्य स्कन्धों में भी है।^४ यदि हम ब्रह्मसूत्रों के कर्ता और श्रीमद्भागवत के कर्ता वादरायण व्यास को एक ही व्यक्ति मानें, जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु का भी मत है तो हमें पता चलेगा कि ब्रह्मसूत्रों की भाषा और श्रीमद्भागवत की भाषा में बहुत साम्य है। ब्रह्मसूत्रों के अनेक सूत्र श्रीमद्भागवत में ज्यों के त्यों मिलते हैं।^५ इससे भी श्रीमद्भागवत के एक ही कर्ता की कृति होने का प्रमाण मिलता है।

श्रीमद्भागवत का आकारप्रकार एवं दार्थ्यविषय

श्रीमद्भागवत वर्तमानकाल में जिस रूप में प्राप्त है, उसका वह रूप भी पर्याप्त प्राचीन है और तेरहवीं शताब्दी से वह अपने वर्तमान रूप में आच्छुका था इस बात की पुष्टि

^१ गण्डपुराण—में उपर्युक्त तत्त्वनिर्णय प्र० १० पर ऊर्ध्व ।

^२ कालस्ते परमाश्वादिदिशिपरार्थावधिर्नृप ।

कथितो दुषमानं च शूलु कल्पलकावधि ॥ श्रीमद्भाग० १२. ४. १

^३ वर्णितं तदुपाख्यानं यथा ते बहु विस्तरम् ।

वैकुण्ठ-चामिनोर्जन्म विप्रशायात्पुनः पुनः ॥ श्रीमद्भाग० १०. ७४. ५०

^४ श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध प्रथम अध्याय श्लोक १-४ तथा द्वादश स्कन्ध अ० १ श्लोक २

^५ ब्रह्मसूत्र का "जन्मावस्त्वव" सूत्र तथा श्रीमद्भाग० का प्रथम श्लोक

जन्मावस्त्ववोऽन्वयादितरतः—

श्रीमद्भागवत की नारदीय पुराण में दी हुई विषयानुक्रमणी 'तरपर्वनिर्णय' तथा श्री श्रीधर स्वामी की श्रीमद्भागवत पर्यटनमा हो जाती है। तेरहवीं शती में बीपदेव पंडित ने 'हरि श्रीमद्भागवत की जो अनुक्रमणिका दी है वह भी वर्तमान श्री सुची के अनुसार ही है। अतः हमारे आलोच्य काल में श्रीमद्

१. तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षिणा समागतः ।
 आत्मस्य चरितं पुष्य पाण्डवाना तथैव च ॥१॥
 पारिभितमुणख्यानमितीदं ममुदाहृतम् ।
 परीक्षच्छुकसचादे सृष्टिद्वयनिरूपणम् ॥२॥
 ब्रह्मानारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ।
 पुराणानुसृतं चैव सृष्टिकारणमम्भवः ॥३॥
 द्वितीयोऽयं समुद्धितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ।
 चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेहास्य संश्रमः ॥४॥
 सृष्टिप्रकरणं पश्चाद् ब्रह्मणः परमात्मनः ।
 कापिलं साङ्ख्यमप्यथ तृतीयोऽयमुदाहृतः ॥५॥
 मत्स्याचरितमादौ तु द्रुवस्य चरितं ततः ।
 पृथोः पुष्यतमाख्याने ततः प्राचीनबर्हिषः ॥६॥
 इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गस्कन्ध उच्यते ।
 प्रियव्रतस्य चरितं तद्व्याप्तं च पुष्यदम् ॥७॥
 ब्रह्माण्डान्तर्वेदानां च लोकानां वर्णनं ततः ।
 नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पंचमो अतः ॥८॥
 अथामिसस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
 बृशस्रज्यानां ततः शक्रान्मरुतां अन्य पुष्यदम् ॥९॥
 अष्टोऽयमुद्धितः स्कन्धो व्यासेन परिपाठ्यते ।
 अस्नादचरितं पुष्यं अर्जुनस्यनिरूपणम् ॥१०॥
 मन्त्रो गदितो अतः ब्राह्मणकर्मदीर्घने ।
 अथेन्द्रलोकाकाश्यानां मन्वन्तरनिरूपणम् ॥११॥
 सप्तमस्कन्धेन अथ अग्निदेवकवचनम् ।
 मत्स्यवतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ॥१२॥
 सूर्यवतारमाख्यातं सोमवचनिरूपणम् ।
 वीरवतारचरिते श्रीकृष्णो मथमोऽयं ब्रह्मणे ॥१३॥
 कुण्डलान्तं बालचरितं कौमारं च अस्मिन्नि ।
 कौशिकं कृष्णवचनं दौष्येन ह्यन्यादित्यतिः ॥१४॥
 भूधरद्वारस्य चात्र निगोपं दण्डमः स्मृतः ।
 अरसेन तु मरुतां कस्युवन्म्य कीर्तितः ॥१५॥
 अथैवम दनाशेषसु श्रीकृष्णो नोद्वन्म्य च ।
 अण्डव्याना मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकदशः स्मृतः ॥१६॥
 अविष्ककनिर्देशो मोक्षाः राज्ञः परीक्षितः ।
 वैशम्पायानोऽनुवचनं माण्डव्येयस्य स्मृतम् ॥१७॥
 कीर्तयिषुतिरुद्धिना सात्वती च ततः परम् ।
 पुराणसंख्यातयनमाश्रये उद्देशो ह्ययम् ॥१८॥
 इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ।

(नारदीय पुराण से भागवत)

कारण असन्तुष्ट और अनवस्थ था। मृत ने शीवकादि को नारद और व्यास का संवाद सुनाया, जिसमें नारद ने व्यास को भगवच्छब्द वर्युक्त का माहृत्स्य और अपने भक्त रूप का वृत्तान्त सुनाया था, नारद के उपदेश में व्यास ने भागवत का निर्माण कर उसे अपने निवृत्ति परावच्छिन्न युक्त शुकदेव को पढ़ाया, शीवक ने इसके उपरान्त श्रीमद्भागवत के प्रमुख श्रोता परीक्षित के जन्म, महाभारत युद्ध के अनन्तर का इतिहास तथा परीक्षित को शृंगी ऋषि के लक्षक-दमन शप का वर्णन किया, परीक्षित क्षामरणा अनशन व्रत लेकर गंगातट पर उपस्थित थे कि उन्हें श्रीमद्भागवत का उपदेश करने के लिए शुकदेव का अकस्मान् आगमन हुआ।

द्वितीय स्कन्ध—द्वितीय स्कन्ध में दस अध्याय हैं। शुकदेव ने परीक्षित को ज्ञान, ईश्वर्य एवं भक्ति प्रधान श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाने का उपक्रम किया, ईश्वर के विराट् स्वरूप, क्रमसुक्ति तथा सखीसुक्ति का वर्णन कर शुकदेव ने भगवद्भक्ति के प्राक्कम्ब का निरूपण किया, भगवान् के विराट् रूप से जगत् की उत्पत्ति, भगवान् की विराट् किमुक्तियों और भगवान् के लीलानतारों का वर्णन कर शुकदेव ने परीक्षित को भगवान् विष्णु का चतुःस्तोत्री भागवत का ज्ञान देने का आख्यान सुनाया, अन्त में शुकदेव ने परीक्षित को भागवत के सर्व विमर्शादि दस लक्षण समझकर प्राकृत सर्व का रहस्य समझाया।

तृतीय स्कन्ध—तृतीय स्कन्ध में तैतीस अध्याय हैं। शीवकादि ऋषियों ने शुकदेव को प्रश्न किया था कि विष्णुति मार्ग के पथिक विदुर ने भैरव ऋषि से जो अध्यात्म शर्कों की बातें सुनी सुनाइए। शुक ने उत्तर दिया कि परीक्षित से भी शुकदेव से बड़ी प्रश्न किया था और शुकदेव ने परीक्षित को विदुर तथा भैरव का संवाद सुनाया था, महाभारत युद्ध के सम्बन्ध विदुर विरक्त होकर इन्द्रियाणु के चले आश और अनेक नीचों में विचरण करते दण्ड २५०० २५०० से मिले। शुक ने उन्हें भगवत्कीला सुनाई। इसके उपरान्त विदुर अनुयायि १००० १००० भैरव ऋषि के मिले, भैरव से उन्होंने इन विषय का वर्णन सुना—
 नृपति कन इति। शक्तिवि शक्ति, मन्त्रमन्त्रादि कर्म विभाग, सृष्टि विस्तार, वाराह अवतार का कर्म, विष्णुमन्त्रों और शिखाश की कथा, देवहृति श्री कपिल का संवाद। कपिल ने उपरोक्त मन्त्र, शक्ति के प्रतिभक्तिदोष महादि नृत्यों की उत्पत्ति प्रकृति पुरुष के विवेक में उपरोक्त मन्त्र का भक्ति, अज्ञानकोष की विधि अनुमार्ग और अविरादि मार्ग से जाने वालों का प्रति १००० १००० की उत्कृष्टता का वर्णन किया।

चतुर्थ स्कन्ध—चतुर्थ स्कन्ध में एकतीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में भी विदुर की कथा का वर्णन है। भैरव ने विदुर के प्रति इन विषयों का वर्णन किया है—
 भगवत्पुत्र ननु १००० १००० के जग का वर्णन, दमयज का विध्वंस, ध्रुव का उपाख्यान, राजा धन की कथा, राजा पूष का भाविर्भाव और उनके द्वारा पृथिवी-दोहन आदि अनेक चरित। 'जन्म' रूप में मन्त्र के आध्यात्मिक कर्मरत्न की भाषा नहीं की जा सकती। जीव का कल्याण आध्यात्मिक रूप में ही हो सकता है।' इस आध्यात्मिक उत्सव का निरूपण करने के लिए भैरव ने उपरोक्त मन्त्रोपाख्यान विदुर को सुनाया तथा भगवद्भक्त प्रचेताश्री का चरित वर्णन किया, चतुर्थ स्कन्ध में विदुर और भैरव के संवाद की समाप्ति होती है।

पंचमस्कन्ध—पंचमस्कन्ध में छत्तीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध ने शिवब्रह्म, बालीश्वर, नासि, रतुगण आदि चक्रवर्ती राजाओं के वंश एवं चरित का वर्णन है। साथ ही सुवन कौशिक, डीप, लोक, ब्रह्म, गिजुमान चक्र और विभिन्न नरक आदि अनेक पौराणिक विषयों का वर्णन है।

षष्ठस्कन्ध—षष्ठस्कन्ध में उन्नीस अध्याय हैं। परीक्षित के यह प्रश्न करने पर कि मनुष्य किस प्रकार नरक जानना से मुक्त हो सकता है, शुकदेव ने भगवद्भक्ति ही उसका एक मात्र उपाय बताया। इस प्रसंग में उन्होंने शुकदेव को सत्रासिन का उपाख्यान सुनाया और विष्णु वृत्तों द्वारा निरूपित भास्वनवर्म का वर्णन किया। इस स्कन्ध में दक्ष प्रजापति की साठ लन्थाओं का वंश वर्णन, वृत्रामुखद, देवामुख संशाम आदि पौराणिक विषयों का वर्णन है।

सप्तमस्कन्ध—सप्तमस्कन्ध में पन्द्रह अध्याय हैं। परीक्षित के यह प्रश्न करने पर कि ममत्वमुक्त भगवान् ने देवताओं का पक्ष लेकर दानवों का संहार क्यों किया, शुकदेव ने इसके उत्तर में परीक्षित को नारद और युधिष्ठिर का मुवादे सुनाया। गिजुपाल के श्रीकृष्ण में मनुष्यत्व हो जाने का कारण था। श्रीकृष्ण ने उसकी तन्मयता, चाहे वह द्वेष वश ही क्यों न हो। इसी प्रसंग में गिजुपाल के पूर्वजन्म वृत्तान्त का वर्णन करने हुए बताया कि मत्कादि ऋषि के शापमें विष्णुपापंद्रुय त्रिजय किम प्रकार द्विष्यकशिपु और द्विष्याक्ष के रूप में अवतीर्ण हुए। द्विष्यकशिपु के महार प्रसंग में ही मविस्तर प्रह्लाद कथा और अन्न में मानव-धर्म, वर्णाश्रम धर्म, लीजर्म, पविषर्म, गृहधर्म तथा मोक्षधर्म का वर्णन किया।

अष्टमस्कन्ध—अष्टमस्कन्ध में चौबीस अध्याय हैं। इन स्कन्ध में मन्वन्तरों का वर्णन, रतु-शङ्ख का आख्यान, समुद्रमन्थन, मोहिनी-भक्तार कथा, देवामुख संशाम, वामनावतार, बनिवन्धन एवं मन्मथावतार की कथा मविस्तर की गई है।

नवमस्कन्ध—नवमस्कन्ध में भी चौबीस ही अध्याय हैं। राजा परीक्षित की जिज्ञासा पर शुकदेव ने पूर्वजन्म अनेक चक्रवर्ती राजवशों का वर्णन किया। इस स्कन्ध में विशेषरूप से पुराभव महापुरुषों का चरित एवं वंश वर्णन है। वैवस्वत मनु का वंश, ज्यवन और मुकुन्दा का चरित, समानि बल, नाभाग और भस्वरीय की कथा, इन्वाकु वंश, विशकु और हरिरचन्द्र की कथा, सगर चरित, मनावतरण की कथा, राम कथा, निर्मलेश, चन्द्रवश, परशुराम चरित, यदति चरित, पूरुवश, भगतवश, यदुवश एवं विदर्भ-वश वर्णन इस स्कन्ध के विषय हैं।

दशमस्कन्ध—(पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध) दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हैं। पूर्वार्ध में दशमस्कन्ध तथा उत्तरार्ध में एकलासीस अध्याय हैं। इस प्रकार दशमस्कन्ध नब्बे अध्यायों में विस्तीर्ण श्रीमद्भागवत का सबसे बड़ा स्कन्ध है। श्रीकृष्ण चरित का संगोपांग वर्णन एवं श्रीकृष्ण का महिमायान ही इसका लक्ष्य है। परीक्षित के यह प्रश्न करने पर कि यदुवंश में ही अवित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रवतार ग्रहण किया था, उनकी अलौकिक लीलाओं का क्या रहस्य है, शुकदेव ने उन्हें श्रीकृष्ण के जन्म से उनके परमधाम गमन तक का समस्त चरित बड़े विस्तार से सुनाया। यह कृष्ण-लीला ही

सर्वा भारतीय भक्त कवियों का सबसे प्रिय वर्ण्य विषय रही है। अतः दशमस्कन्ध की कृष्ण लीला का सविस्तर विवेचन आगे किया जायगा।

एकादशस्कन्ध—एकादश स्कन्ध में इकतीस अध्याय हैं। इसमें भुक्तदेव ने श्रीकृष्ण के वरमन्त्रम यमन का वर्णन कर कृष्ण चरित का उपसंहार किया है। इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में अर्थात् माधना के विविध विषयों का वर्णन है, यथा, माया, ब्रह्म और कर्म दोष का निरूपण, भगवत्पूजाविधि का वर्णन अथर्वतोपाख्यान, सत्संग, भक्तियोग की महिमा, भगवद् विभूति वर्णन, वर्णाश्रम-धर्मनिरूपण, वादप्रस्थ और संन्यासी के धर्म, भक्ति ज्ञान, यमनियमादि साधन वर्णन, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग, तत्त्व-संख्या एवं पुरुष प्रकृति विवेक, साख्ययोग, त्रिगुणवृत्ति निरूपण, क्रिया-योग वर्णन, परमार्थ निरूपण और भागवत धर्म निरूपण।

एकादश स्कन्ध श्रीमद्भागवत में एक स्वतंत्र आध्यात्मिक ग्रंथ के रूप में मालूम होता है। इस स्कन्ध का विषय दर्शन एवं क्रिया दोनों में ही सम्बद्ध है और उसमें सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। भक्ति-साहित्य पर श्रीमद्भागवत के माध्याम्य और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से यह स्कन्ध बहुत महत्त्व पूर्ण है।

द्वादशस्कन्ध—द्वादशस्कन्ध में तेरह अध्याय हैं। यह स्कन्ध पुराणों की परम्परागत विशेषताओं को लिये हुए है। अविष्य काल की क्रिया का प्रयोग कर इसमें अविष्य-कथन किया गया है। अविष्य कथन पुराणों की प्राचीन परिपाटी है। इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में पुराणों की परिपाटी के अनुसार इन विषयों का वर्णन है—कलियुग के राजवृक्ष, कलिधर्म, मुमुक्षु, पुराणलक्षण, एवं विभिन्न पुराणों की प्रतीक मन्त्रा। इस स्कन्ध में भुक्तदेव का परीक्षित की अन्तिम जाद्वेज है जिसमें उन्हें सर्वभावेन भगवच्छरणार्थी भवे का आदेश दिया गया है।

श्रीमद्भागवत की प्रमुख टीकाएँ

श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त विनष्ट ग्रंथ है। जहाँ एक ओर इसमें सरस-मरल गौरीशक्ति का प्रयोग हुआ है, वहीं इसमें अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण प्रौढ दार्शनिक भावों का प्रयोग भी दर्शनीय है। किन्तु श्रीमद्भागवत की विनष्टता का प्रमुख कारण उक्तकी भाषा नहीं है बल्कि इसकी दार्शनिक गूढता है। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में विश्वजित् भागवत की भाषा की जो उक्ति विद्वानों में प्रसिद्ध है वह यथार्थ ही है। गरुड उक्त की अनुगत वैदिक दर्शन का प्रभाव करने वाला, ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत का अर्थ, रामायण का अर्थ का वेदार्थ का परिवृंहण करने वाला श्रीमद्भागवत अत्यन्त विनष्ट का कारण है। इतने दरीयान् पद का निर्वहण करने वाले इस ग्रन्थ को

- १. अर्थविवेक भागवतभाष्यः भारतवर्षविनिर्वाहः ।
- २. भागवतभाष्यः श्रीमद्भागवतभाष्यः ।
- ३. भागवतभाष्यः भागवतभाष्यः ।
- ४. भागवतभाष्यः भागवतभाष्यः ।
- ५. भागवतभाष्यः भागवतभाष्यः ।
- ६. भागवतभाष्यः भागवतभाष्यः ।

कैवल्य आचार्यों का मुख्य-मुख्य टीकाओं का महिम्न परिचय दिया जाता है।

(१) नावाधदीपिका श्रीमद्भागवत की इस सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका के कर्ता श्रीधरस्वामी हैं। यह टीका श्रीमद्भागवत के इस अर्थ समस्त टीकाओं के प्राचीन है। परकीर्ति प्रायः समस्त टीकाकारों ने इसका अनुसरण किया है और श्रीमद्भागवत के बृहत्तम स्थलों को समझने में इसकी सहायता की है। साम्प्रत में इस टीका का आध्ययन करने में इनके कर्ता श्रीधरस्वामी के अनाद्य वाग्मिण्य का ज्ञान होता है। श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध में बहुत कम बातें ज्ञात हैं। उन्होंने अपने विषय में स्वयं कुछ नहीं कहा है। टीका के मंगलप्रारम्भ से इतना पता चलता है कि ये श्री नृसिंह के उपासक थे।^१ श्रीमद्भागवत की श्रुति और अन्तो अल्पज्ञता को प्रदर्शित करने के लिए श्रीधरस्वामी ने लिखा है कि 'जिस क्षीरादिभ्यः का मन्थन करने में मन्दराचल भी हूब जाता है वहाँ परमाणु की क्या विज्ञात है।'^२ किन्तु श्रीधरस्वामी की टीका इतनी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हुई कि इसके सम्बन्ध में बड़े तन्त्रि प्रचलित हो गई—

व्यामोद्रेणि सुकोद्रेणि राजा वेनि न वेनि वा ।

श्रीधरः सकल वेनि श्रीनृसिंहप्रसादतः ॥

अर्थात्, श्रीमद्भागवत का मर्म वेदव्यास और युक्तदेव जानते हैं। राजा (परीक्षित) के ज्ञान में सन्देह है, किन्तु नृसिंह की अनुकम्पा से श्रीधर उसका समस्त मर्म समझते हैं। श्रीधरस्वामी की टीका की इसमें अधिक प्रशंसा और क्या हो सकती है। सत्त्वर नामादास जी ने भी भक्तमाल में श्रीधर की टीका को वेदसम्मत बताया है और काशी के बिन्दुमाधव मन्दिर के एक चमत्कार का उल्लेख किया है कि भगवाद् बिन्दुमाधव ने उनकी टीका को समस्त अर्थों के ऊपर रखकर उसे सर्वोत्कृष्ट घोषित कर दिया।^३ श्रीधरस्वामी का स्थितिकाल ११वीं सताब्दी माना जाता है।^४ श्रीधर ने अपने पूर्ववर्ती वेदान्त के प्रसिद्ध आचार्य कित्मुक्ताचार्य की टीका का उल्लेख किया है।^५ श्रीधर की नावाधदीपिका

१ वागीशा यत्पु कदने लक्ष्मीर्विषय व कथति ।

व्यासस्ते इत्येते संदिग्धं तं नृसिंहमहामुनिः ।

श्रीधरः भावार्थं दीपिका १

२ कदाचि मन्दमतिः क्वेदं मथने क्षीरदारिद्र्यः ।

किं तत्र परमात्तुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥

वही, श्लोक ५

३ तस्यै कायस्य कृत्स्नस्य सानि कोऽत्र ब्रह्म कथं नमः ।

कर्मठं ज्ञानी ह्येति अर्थे को अन्तर्य कान्तः ।

परमार्थं संज्ञिता विदितं टीका वित्सारणौ ।

यद् शास्त्रनि अविहस्य वेद मम्मताहि विचारणौ ।

परमानन्द प्रसाद ते माधौ नृकुर सुधार दिधौ ।

श्रीधर श्रीमानवसु में परम धरम निरनै कियौ ॥

भक्तमाला अध्याय १६६ पृ० २५५

४ भागवतसम्प्रदाय (श्री बलदेव उपाध्याय) पृ० १५५

५ वही, पृ० १५७

टीका पर श्री रामरामदास कोस्वामी ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्वक 'दीपनी' नामक टिप्पणी लिखी है, जो बृन्दावन से सं० १९६० में प्रकाशित विविषटीकासंवलित श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत सम्मिलित की गई है।

(२) श्रीकृष्णजीवा टीका - श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता विशिष्टाद्वैतमत प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय के एक प्रख्यात आचार्य श्री सुदर्शन सूरि हैं। ये वही विद्वान् हैं जिन्होंने रामानुज के प्रतिष्ठित 'श्रीभाष्य' पर 'श्रुतप्रकाशिका' टीका लिखी है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में सुदर्शन सूरि का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या की है। इनका स्थितिकाल ईसवी १४वीं शताब्दी है। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने जब १३६७ ई० में श्रीराम पर आक्रमण किया था तब उस काल में ये मारे गये थे।^१

(३) भगवतचन्द्रिका - श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता श्री वीरराघवाचार्य हैं। ये भी श्री रामानुजसम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य थे। इन्होंने श्री सुदर्शन सूरि की टीका का ही विमर्शकरण किया है। विशिष्टाद्वैतमत के अनुसार श्रीमद्भागवत के व्याख्यान के लिए वीरराघव की टीका का अथर्वमूल मानियारा है। इनका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

(४) पदरत्नावली - श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता द्वैतमतवलम्बी आचार्य विजयधर हैं। द्वैतमत के प्रवर्तक श्री आनन्दतीर्थ (श्रीमद्वाचार्य) ने श्रीमद्भागवत का मर्म का प्रकाशित करने के लिए पहले ही 'भागवततत्त्वार्थनिर्णय' नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिख दिया था। किन्तु आचार्य के ग्रन्थ की हद श्रीमद्भागवत की टीका नहीं कह सकते। यह श्रीमद्भागवत पर एक निबन्ध है। द्वैतमतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या बाद में श्री विजयधर ने अपनी 'पदरत्नावली' में की और अपना आधार आनन्दतीर्थ तथा विजयतीर्थ की कृतियों को स्वीकार किया।^२ विजयधर की टीका काफी विम्वन एवं सुबोध है।

(५) सिद्धान्तप्रदीप - श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता निम्बार्कसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं। निम्बार्कसम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में इनका स्थान है। विद्वत्मत के प्रतिष्ठित आचार्य श्री निम्बार्क ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी किन्तु उनके मत में श्रीमद्भागवत का अन्तर्भाव स्वीकृत है, विशेषकर युगल-लीला का। श्रीमद्भागवत के प्रवर्तक रामानुजा यह का सम्प्रदाय में बहुत महत्त्व है और निम्बार्क मत में इनका महत्त्व भी अत्यन्त महत्त्व है। विविध रूपों की लीलाओं-मुख्यतया रासलीला की प्रमुख प्राण-दाहिनी व्याख्या की है। श्री सुकदेवचार्य ने श्रीमद्भागवत की द्वैताद्वैतपरक व्याख्या करने वाले सिद्धान्त को प्रामाणिक मान लिया है।

^१ श्रीमद्भागवत सम्प्रदाय पृ० १२७

^२ श्रीमद्भागवत विजयधर टीका पृ० १२७

श्रीमद्भागवत सम्प्रदाय पृ० १२७

के कुछ स्वरूपों और सम्पूर्ण दशमस्कन्ध पर ही यह प्राप्त है। मुंबई में श्रीबल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को व्याख्या करने के दृष्टियों से करके अनेक अर्थों की उद्भावना की है। मुद्राहृत सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को प्रत्येक ग्रंथों में रखकर उसका परमप्राधान्य स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय के अन्य विद्वानों ने भी श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं, जिनमें गिरिधर महाराज की टीका उल्लेखनीय है।

(१) बृहद् वैष्णवोपिषी—श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री सनातन गोस्वामी थे। इनका समय १६वीं शताब्दी है। श्री चैतन्य महाराज श्रीधर की 'भावावर्षेणिका' टीका को श्रीमद्भागवत की सर्वाधिक प्रामाणिक एवं सर्वोत्तम टीका समझते थे। यद्यपि श्रीधर स्वामी की टीका संस्करण के अर्जुन मंत्र के अनुसार है और चैतन्य मंत्र में भिन्न दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है, तथापि श्रीधर की टीका की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर चैतन्य ने अपने मंत्र में उसी को प्रमाण-स्वरूप स्वीकार कर लिया और स्वयं श्रीमद्भागवत पर उन्होंने कोई टीका नहीं लिखी। चैतन्य के अनुयायी वृन्दावन के गोस्वामियों ने श्रीधर की टीका का पूर्ण समारंभ करते हुए अपने मंत्र (अचिन्त्यभेदाभेद) के अनुसार श्रीमद्भागवत पर अनेक विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। इनमें श्री सनातन गोस्वामी की 'बृहद् वैष्णवोपिषी' टीका बहुत प्रसिद्ध है। यह श्रीमद्भागवत के केवल दशमस्कन्ध पर ही की गई है।

(२) कमलसन्दर्भ—श्रीमद्भागवत की इस सुप्रसिद्ध टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य श्री जीव गोस्वामी थे। ये पूर्वोक्त श्री सनातन गोस्वामी के भतीजे थे। श्री जीव गोस्वामी एक अत्यन्त प्रतिभाशाली पण्डित थे। इन्होंने श्रीमद्भागवत के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण 'सन्दर्भ' नामक ग्रन्थ लिखा। 'कमलसन्दर्भ' उसी परम्परा में लिखी गई श्रीमद्भागवत की विस्तृत व्याख्या है। यह समस्त श्रीमद्भागवत पर है। 'सन्दर्भ' के उपरान्त उसका यह 'समसन्दर्भ' ही था।

(३) सारार्थदर्शिनी—श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं। श्री चक्रवर्ती ने अपनी टीका में श्रीधर स्वामी, श्री चैतन्य महाराज तथा उनके गुरु के श्रीमद्भागवत विषयक विचारों का सार ग्रहण किया है इसीलिए इन्होंने अपनी टीका का नामकरण 'सारार्थदर्शिनी' किया है।^१ यह टीका

१ दे० कमलसन्दर्भ की पुष्पिका—'श्री रूपमनात्मगुणानन्दसारादीर्घे समसन्दर्भमकश्रीभागवतसन्दर्भे प्रथमस्कन्धस्य कमलसन्दर्भः सनातः'।

२ श्रीधर स्वामिना श्रीमद्भूषणं श्रीमुखाद् गुरोः।
व्याख्यसु सारप्रसाद इव सारार्थदर्शिनी।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा सारार्थदर्शिनी टीका की पुष्पिका।
टिप्पणी—पूर्वोक्त नौ टीकाओं में से श्री सनातन गोस्वामी की बृहद् वैष्णवोपिषी टीका के अतिरिक्त अन्य आठ टीकाएँ वृन्दावन से सं० १९६० में श्री निरवस्वरूप महाराज की संस्थाद्वारा प्रकाशित श्रीमद्भागवत के संस्करण में निकल चुकी हैं।

(२०) द्वादशीब्रजे नन्दजनप्रवेशः, (२१) कृष्णस्य मेघाच्छुनियसनम्, (२२) गोपकन्या भजनम्, (२३) राधात्वल्पधारणम्, (२४) श्रीदारुणः, (२५) बसन्तदीनायाप्राकृतम्, (२६) द्वितीयेषुषुम् (२७) यह अध्याय शीर्षक रहित है। (२८) वनभोजनम्, (२९) राम शोभा, (३०) रासक्रीडा, (३१) मध्वर्षमोक्षणम्, (३२) अरिष्टासुर वधः (३३) राधिका मंदर्वनम्, (३४) अक्षुरगोकुलप्रवेशम्, (३५) कृष्णमारुतव्याधः, (३६) गोपक्रीडिलापः (३७) रामकृष्णमधुरागमनम्, (३८) रामकृष्णयोरक्षुरगृहप्रवेशः, (३९) धनुषसंबन्धुहे धनुर्भंगः, (४०) कृष्णस्यचामूरमुष्टिककसंबधः, (४१) उग्रसेनसहस्राग्यवस्त्रीः । इस ग्रंथ की विषयसूची तथा राधा का नामोल्लेख देखकर जात होता है कि यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत से बहुत परवर्ती है।

भागवत चम्पू—इस ग्रंथ की तीन प्रतियाँ इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। जिनमें से दो तेलुगु लिपि में तथा एक 'ग्रंथ' लिपि में लिखी हुई हैं। तीनों ही प्रतियाँ खड्गूर-ग्रंथ पर हैं।^१

भागवतचम्पू किन्हीं 'अग्निव कालिदास' नामक कवि की रचना है। इसमें इन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को छंद उल्लामों में सुन्दर शठ पद्य में वर्णित किया है। ग्रंथारंभ में "श्रीमते रामानुजाय नमः" का उल्लेख कवि अथवा प्रतिनिधिकार के रामानुज उतावदम्बी होने की सूचना देता है। इस ग्रंथ की 'रत्नावली' अथवा 'भागवतचम्पू व्याख्या' नाम से एक टीका भी प्राप्त है जिसके रचयिता अज्ञेय सुरि हैं।

मंत्रभागवत—इस ग्रंथ की एक प्रति बड़ोदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में सुरक्षित है।^२ इसके रचयिता 'गोविन्द' के पुत्र 'नीलकण्ठ' हैं। सम्भवतः ये महाभारत के सुप्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ही हैं। इल्का स्थितिकाव अनिर्णित है। 'मंत्रभागवत' की एक विस्तृत व्याख्या भी है जिसका नाम है 'मंत्ररहस्यप्रकाशिका' इस टीका के रचयिता मंत्रभागवतकार स्वयं नीलकण्ठ ही हैं। 'मंत्ररहस्यप्रकाशिका' में ऋग्वेद संहिता के विभिन्न भागों से दोसौग्याम श्लोकाएँ संगृहीत हैं। इन श्लोकाओं की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि उससे श्रीमद्भागवत की कथा का निर्देश होना है।

बालभागवत—सन् १४३० ई० में हुए ग्रान्थ निदाती एक ब्राह्मणकवि चमसूरि ने 'बालभागवत' नामक एक सुन्दर काव्य लिखा था। दुर्भाग्य से यह काव्य अब अप्राप्त है किन्तु कवि ने अपने एक छोटे से नाटक 'नरकासुर विजय' में 'बालभागवत' का उल्लेख किया है। साहित्यरत्नाकर से क्रियाफलोत्प्रेक्षा के उदाहरण में बालभागवत का निम्नांकित प्लोक उद्धृत किया गया है—

१ केटेलॉग ऑफ़ संस्कृत ग्रन्थ प्रामुख मेन्सुस्क्रिप्ट्स, इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, पृ० ११६८।

२ गायक शब्द ओरिएण्टल सीरीज नं० २७, केटेलॉग ऑफ़ मेन्सुस्क्रिप्ट्स इन दी सेण्ट्रल लाइब्रेरी ऑफ़ बड़ोदा, कॉल्यूम १, पृ० १०।

‘निर्विषय नीरवप्रतिकुंजमध्यसा-
नमो लमीरोस्महसा ससंभ्रमाः ॥
न यक्नुवन्तीह पुनर्विनिर्गमे ।
वता ह्यनान्निगतबालसा ध्रुवम् ॥

निष्कर्ष—इन अध्याय में निरूपित विषय के आधार पर इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि भारतवर्ष के पुराण-साहित्य में श्रीमद्भागवत सूर्यन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है और भारतवर्ष की वैष्णव भक्ति साधना में उसका महत्व निर्विवाद है। विभिन्न भारतीय और अन्तर्देशीय भाषाओं में इस ग्रन्थ के अनेक अनेक अनुवाद इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं; भारत की प्रादेशिक भाषाओं में बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, उडिया, कन्नड़ और कन्नड़ अनुवाद बहुत पहले से ही होते रहे हैं। श्रीमद्भागवत के समस्त और अनेक हिन्दी गणपदात्मक अनुवादों की संख्या भी बहुत है। हमारे आलोच्यकाल में ही नहीं, उसके बाद भी भाषवत के अनुवाद चलते रहे। उदाहरणार्थ १७७१ ई० में कृष्ण कृष्ण ब्रजवासीदास का ब्रज-विलास बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें पूर्व १७५० ई० में रामदास ने ‘भागवतभाषा’ नाम से समस्त भागवत का तथा हिनदास ने ‘भागवत दशम भाग’ नाम से भागवत के दशमस्कन्ध का ब्रजभाषा, पद्यानुवाद किया। १७०४ ई० में बालनन्दराम ने ब्रजभाषा स्तु और पद्य में इसका अनुवाद किया था। १२वीं १६वीं शताब्दी में हुए ‘प्रतिमराजिन्साल’, ‘भागवत’, ‘रस पञ्चाङ्गम्’, ‘भागवत एकादशस्कन्ध भाषा’, ‘भागवत दशमस्कन्ध’, ‘रत्नप्रकाश’, ‘भागवत दशम’ आदि अनेक अनुवादों का उल्लेख हिन्दी इतिहासिक ग्रन्थों की खोज रिपोर्टों से हुआ है। इनमें स्वामीसिंह (लगभग १६८५ ई०) का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है।

— १९११ ई० में श्री गुरुदेवस्य विद्वत् ७३३ श्री मन्त्र आदि हिन्दी नेमुस्त्रिपुस, सन् १९१२-१६.
७३३ श्री मन्त्र आदि हिन्दी नेमुस्त्रिपुस।
७३३ श्री मन्त्र आदि हिन्दी नेमुस्त्रिपुस १९२३-१९२५ ई०
७३३ श्री मन्त्र आदि हिन्दी नेमुस्त्रिपुस।

द्वितीय अध्याय

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य

(तत्त्वज्ञान एवं भक्तिदर्शन)

हृष्टिकोश—आचार्य अक्षयानन्द ने ब्रह्मज्ञान-ज्ञान ही परमात्म तत्त्व और अस्तित्व वस्तु मानी गई है। इसी ज्ञान को स्वयं पवित्र वस्तु भी माना गया है।^१ 'श्रीश्री ब्रह्मैव तापरः' की अनुसृति ही यह तत्त्वज्ञान है जिसको उपनिषद् के माधनों और स्वयं के वर्णों से भारतीय अध्यात्मशास्त्र के श्रुति स्मृति उपनिषदादि ग्रंथ में पड़े हैं। पुराण-साहित्य में भी इसी तत्त्वज्ञान को उपनिषद् के माधनों का निरूपण है किन्तु शक्ति-सौख्य, आध्यात्मिक और मन्त्र रूप में। हमारे विवेक्य ग्रंथ श्रीमद्भागवत में उस तत्त्व-ज्ञान को दो साधनों से उपलब्ध होना शक्य बताया गया है—(१) बुद्धियोग में, (२) भक्ति-योग में। दोनों में प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म ही है, अतः प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म के स्वरूप को श्रीमद्भागवत में जिस प्रकार निरूपित किया गया है उसे पहिले समझना आवश्यक है। भागवत में ब्रह्म को 'तत्त्व' कहा गया है और उस वस्तुतः एक ही पदार्थ को तीन भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया है—(१) ब्रह्म (२) परमात्मा और (३) भगवान्। वह ज्ञानस्वरूप वस्तुतः एक ही परमात्म तत्त्व हृद्य आदि अनेक भावों से प्रकट होता है। उपनिषद् ग्रंथों में उसे 'परब्रह्म', योगशास्त्र में परमात्मा ईश्वर, सांख्यशास्त्र में 'पुरुष' और भक्तिशास्त्र में उसे 'भगवान्' कहा जाता है।^२ इस तत्त्व को ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति से आत्मसात् किया जा सकता है।^३

ब्रह्मतत्त्व की बीजमता में श्रीमद्भागवत का वेदान्त शास्त्र से पूर्ण समतुल्य है और उपनिषद् गीता तथा ब्रह्म-सूत्रों के मन्त्रव्य को इसमें अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध वाक्य से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवत का अनुबन्ध वाक्य—अध्यात्म में (१) विषय, (२) प्रयोजक, (३) सम्बन्ध और (४) अधिकारी—इस अनुबन्ध अनुष्ठान का उल्लेख करने की प्राचीन

- | | |
|--|------------------------|
| १ तदि जनेन लक्ष्मं पवित्रमिहविद्यते | श्रीमद्भागवतगीता ४.२० |
| २ यदस्मि तत्त्वविदमन्तव्यं यज्जानमदवत् । ब्रह्मैति परमात्मैति भववर्तन्ति शब्ददे । | श्रीमद्भागवत १. २. ११ |
| ३ ज्ञानमात्रं यत् अत्र परमात्मैश्वरः पुरात् । दृष्टव्यं तस्मिन् दृष्टव्यं तस्मिन् तस्मिन् तस्मिन् ॥ | श्रीमद्भागवत १. १२. २६ |
| ४ तत्त्वज्ञानात्पुनरो ज्ञानवैराग्ययुक्तया । पश्यन्त्यात्मनि वा-स्यत् नक्त्या अतःपृथीक्या ॥ | जीनशास्त्र १. २. १२ |

भारतीय परिपटी है। श्रीमद्भागवत में बड़े कौशल से प्रारम्भिक दो श्लोकों में इसका निरूपण करते हुए कहा गया है कि "कार्यं कारणात्मक समस्त जगत् में जो अन्वय और स्वतंत्रिक उभय दृष्टियों में व्याप्त है (अर्थान् जिमकी सत्ता से सब पदार्थ सत्तावान् हैं और जिसकी सत्ता के अभाव में सब पदार्थ सत्ताहीन हैं) जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं, जो सर्वज्ञ और स्वयं प्रकाश है, जिस वेद के विषय में सूरिजन भी मोहित हो जाते हैं, उसका जिनसे संकल्पमात्र से ब्रह्मा के हृदय में संचार कर दिया और जिस प्रकार तेज, मल, मृत्तिका आदि में विपर्यय हो जाता है उसी प्रकार जिस शुद्ध ब्रह्म में त्रिगुणान्तिका अमत् मृष्टि भी मत् प्रतीत होती है, जिसके ज्ञान-स्वरूप तेज से माया कण्ठ आदि का सर्वथा बाध रहता है। हम उस सत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं।" अतः 'ब्रह्म' ही श्रीमद्भागवत का विषय है। श्रीमद्भागवत में निर्मत्सर पुरुषों के परमधर्म तथा ज्ञातव्य मंगल वस्तु (परब्रह्म श्रीकृष्ण) का वर्णन किया गया है। इसके अन्वय से भाष्य-काली पुरुष (अधिकारी) तत्काल ही ईश्वर को अपने हृदय में अवस्थ कर लेते हैं।^१ यही अन्वय का प्रयोजन है।^२ भगवान् और अन्वय का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। प्रथम श्लोक के "सत्यं परं धीमहि" श्रंख से ब्रह्मसूत्रों का जिज्ञासाधिकारश्लोक "अथातो ब्रह्मविज्ञाता"^३ शब्दा अर्थ तथा गायत्री का भाष्य-रूपत्व ज्वलित होता है। 'सत्यं पर' शब्द से ब्रह्म का 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुत्युक्त स्वरूप लक्षण घटित हो जाता है। 'जन्माद्यस्यत्' श्रंख से ब्रह्मसूत्रों के द्वितीय 'जन्माद्यधिकारण' स्थित 'जन्माद्यस्य यत्' सूत्र के अर्थ का तथा जो वेद इमानिभूतानि जयन्ते केन जातानि जीवन्ति ये प्रयन्त्यभि धीमहिन्ति" इत्यादि श्रुत्युक्त ब्रह्म के कार्य लक्षण का बोध होता है। इसी प्रकार "सत्यं परं धीमहि" श्रंख से ब्रह्मसूत्रों के एकाधिक अधिकारणों—'समन्वयाधिकारण', 'इन्द्राधिकारण', 'आमन्वयाधिकारण', 'अन्तराधिकारण', 'आकाशाधिकारण' आदि का प्रमाण उपलब्ध हो जाता है। वेदान्त के समस्त कारण वाक्य ब्रह्म में समनुगम होते हैं अतः 'जन्माद्यस्यत्' वाक्यात् से ब्रह्मसूत्रों के द्वितीय अविरोधाध्याय का सारांश संकेतित हो जाता है। 'येन ब्रह्मकृत्वा य एतदिकवम्' वाक्यात् से श्रुत्यर्थ का अत्यन्त स्पष्ट

१. अन्वय इत्येवमन्वयवित्तरमन्वयवित्तरः स्वराट् ।
 २. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ३. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ४. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ५. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ६. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ७. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ८. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।

श्रीमद्भागवत २. १. २. २

१. अन्वय और प्रयोजन श्रीमद्भागवत भाष्यसंस्कृत में भी इसी प्रकार वर्णित है—
 २. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 ३. अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च अन्वयवत्तु च ।
 श्रीमद्भागवत २. १. २. २

समस्त वस्तु जगत् का सामान्यबहुल सेवों में हुआ है और वेद ब्रह्म से ही प्रादुर्भूत है यह 'यो वै वेदाश्च प्रतिष्ठाति' इत्यादि पूर्वोक्त श्रुति से प्रापारिख्य है। अतः समस्त चराचर वस्तु जगत् का नाम अर्थादि संकेतशक्ति ब्रह्म ही है शेष नहीं।

तेजोवारिमूढा यथा वितिमयोः' इस अंग में 'विकृतरसश्रुति—तामाश्रित्वं रिश्रुतवेकैकं करकालि' इत्यादि श्रुति का समन्वय करने का प्रयत्न हुआ है।

इसी अनुबन्ध श्लोक के 'अमृषा' पद से ब्रह्मसूत्रों के 'आरम्भकाधिकरण' (ब० सू० २. १. २४) तथा प्रसिद्ध श्रुति वाक्य—'वाचारम्भस्य विकारो नामधेयं मृतिवैश्वेदेव सत्वम्' का संकेत होता है।^१ तात्पर्य यह है कि जगत् ब्रह्मात्मना सत्य है अथवा वस्तु श्लोक में 'अमृषा' पाठ न लेकर 'मृषा' पाठ ग्रहण करे तो तेजोवारिमूढा यथा वितिमयो यत्र तिस्रगोमृषा—वाक्य से ब्रह्मसूत्रों के 'उभयतैव्याधिकरण' (ब० सू० ३. २. ११-१२) का सम्बन्धस्थ घटित होता है।^२ भगवान् स्वकादौष विवर्जित है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार नेत्र, कर्ण एवं पुष्पी में अन्धावभास अर्थात् स्थल में जलादि भ्रम, जल विशेष करकालि में पृथिव्यांश पाषाणशिलादि बुद्धि मिथ्या है उसी प्रकार भयक्त्वरूप ब्रह्म में मानुषत्वदि, भौतिकत्वादि, सुप्तपिपासादि बुद्धि मिथ्या है।^३

अनुबन्ध श्लोक के अन्तिम वाक्य—'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकृहकं सत्यं परं धीमहि' से ब्रह्मसूत्रों के 'उभय निगाधिकरण' से प्रारम्भ कर 'कलाधिकरण' (ब० सू० ३. २) तक का समस्त सार ग्रहण किया गया है। इस प्रकरण में ब्रह्म का प्राकृत सर्वविलक्षणत्व निरूपित है। 'स्वेन धाम्ना' का तात्पर्य है सत्य, ज्ञान एवं आनन्द लक्षण त्रैज स्वस्व महिमा से ही (जीव की भीति उपासनादि साधनों से नहीं) जो सदा—विकालावच्छेदेन—'निरस्तकृहकं' अविद्यादि समस्त दोष रूप अन्वकार में रहित है, हम उस परमसत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप लक्षण भी वहाँ कथित है तथा साधन और फल का संकेत भी किया गया है। अर्थात् जो निज स्वरूप महिमा से ही 'कृहक' पद से वाच्य

१. यो वेदाश्च प्रतिष्ठाति पूर्वो यो वै वेदाश्च प्रतिष्ठाति.
 नस्मै न इ देवतामनुष्ठितकालं मुमुक्षुर्वै शरणाग्रं प्रपद्ये। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ९-१-२)
 तथा—यो ब्रह्मस्य विद्यमानि सर्वं यो वै विद्यते नस्मै कोपाकृतिम कुम्भः।
 तं ह मानुषबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणां ब्रजेत्। (योगसूत्र पूर्वोक्तपत्तो उक्ति० ६)

२. संश्रमृतिवृत्तिस्तु विवृक्तवैत उपदेत्यात्। (ब्रह्मसूत्र २. ४. २०)
 ३. तदनन्तत्वराम्भस्य शब्दादिभ्यः। (ब० सू० २. १. १४)
 ४. ...
 ५. ...

अविद्या, अस्मिता, रागद्वेषादि सप्तसप्त दोषों से परे है और परमसत्य है, वह निरतिशय न्यून ज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मा ही 'फल' और 'विषय' है। 'धीमहि' पद से सूचित उस ब्रह्म का समागमन ही 'साधन' है। समस्त भोगों से उपरत भगवत्स्वरूप की प्राप्ति में सत्सत्त मुमुक्षु ही अधिकारी है। भगवान् और ग्रंथ का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव ही सम्बन्ध है। इस प्रकार ब्रह्मसूत्रों के तृतीय साधनाध्याय तथा चतुर्थ फलाध्याय का मन्तव्य श्रीमद्-भागवत के अनुबन्ध श्लोक से पूरा हो जाता है।

इस श्लोक के 'धीमहि' पद में आत्मनेपद उत्तमपुरुष, बहुवचन का प्रयोग भागवतकार ने विशेष अभिप्राय से किया है। लात्पर्य यह है कि भागवतकार सहस्र तत्त्वज्ञानी को समस्त मुमुक्षु वर्ग का प्रतिनिधि है, वह भी सगुण ब्रह्म-भगवान् का ध्यान करता है, 'भगवान्' उनके भी ध्येय, ज्ञेय और प्राप्य हैं। भागवतकार ने स्वयं कहा है कि आत्माराम और अविद्यादि ग्रंथियों से मुक्त जानी जन भी भगवान् की अद्वैतकी भक्ति किया करते हैं क्योंकि भगवान् के गुण ही इनके आकर्षक हैं। परमतत्त्वज्ञानी वीतराग युक्तदेव मुनि भी भगवान् के अलौकिक गुणों से आकृष्ट होकर उद्गुण वरुण प्रधान भागवतशास्त्र के अध्ययन में प्रकृत हुए थे।^१ स्वयं भागवतकार व्यास भी जब सनातन ब्रह्मतत्त्व का विचार करके भी अकृतार्थ रहे और उनकी आत्मा असंतुष्ट रही तो उन्होंने सगुण ब्रह्म भगवान् के कष्टर-रुह और जीवात्मानप्रधान भागवत महापुराण का सर्जन किया।^२

आत्मा और परमात्मा का स्वरूप—ऊपर श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध श्लोक के आधार पर ब्रह्मतत्त्व का निरूपण किया गया है। आत्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व को भी श्रीमद्भागवत में उसी शब्दावली में अभिव्यक्त किया गया है जिसमें ब्रह्मतत्त्व को। आत्मा क्लिय, अविद्यादोष, बुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, अविष्टान, अविद्यार्थ, स्वयंप्रकाश, मय का कारण, अकार, अक्षय और अनादित्व है। आत्मा के दो कारण हुए हैं।^३ बुद्धि की तीन वृत्तियों—

- १. ... अक्षय और अनादित्व को अनुभव करने वाला सर्वनाशी पुरुष ही परमात्मा
- २. ... आत्मतत्त्व को निर्दिष्ट करने वाले :
 - १. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
 - २. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
 - ३. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ३. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ४. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ५. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ६. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ७. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ८. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- ९. ... अक्षय और अनादित्व को परि :
- १०. ... अक्षय और अनादित्व को परि :

महा है ।^२

ईश्वर ब्रह्म का परमार्थिक स्वरूप ब्रह्म है । जब ब्रह्म सत्त्वगुण की उपाधि से अवच्छिन्न नहीं होता तब निर्वाण और अव्यक्त भाव से स्थित रहता है यही 'निर्गुण ब्रह्म' के नाम से धर्मज्ञित किया गया है । किन्तु जब ब्रह्म सत्त्वगुण की उपाधि से अवच्छिन्न होता है तब वह साकार और अव्यक्तभाव से स्थित रहता है और 'सदृश ब्रह्म' कहनाया है । ब्रह्म का यही स्वरूप 'ईश्वर' अथवा 'समवाय' है । यह ईश्वर त्रिगुणात्मिका माया का स्वामी, निर्गुण और ज्ञानमय है ।^३

जीव—जीव ईश्वर का अंश है ।^४ जीव भी ईश्वर के समान चैतन्यस्वरूप है किन्तु जीव भी ईश्वर की सामर्थ्य में बड़ा अन्तर है । ईश्वर ज्ञान, ऐश्वर्य आनन्दादि में जीव से अनन्तगुण अधिक है । जीव नित्यवृद्ध है, कर्म फलों की भोगता है और अधिष्ठा युक्त है । जीव का पुनर्भव होता है । उपनिषद् के समान श्रीमद्भागवत में भी—ईश्वर और जीव को दो पक्षियों का रूपक दिया गया है । ये दोनों पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर) पर स्वेच्छा से बैठना बनाकर रहते हैं । वे दोनों उत्पत्तः समान और एक दूसरे के सखा हैं । किन्तु इनमें से एक तो (जीव) उस वृक्ष के फलों (सुखदुःखादि) को खाता है और दूसरा (ईश्वर) निर्वाण (कर्म फलादि से अलग, साक्षीभाव) रहकर भी बल (ज्ञान ऐश्वर्य आनन्दादि) में पहले पक्षी (जीव) से अधिक है ।^५ परम पुरुष (ईश्वर) का अंश रूप पुरुष (जीव) उद्भिज्ज, अहङ्क, स्वैदज और जरायुज—चार भेदों से शरीर रूपी पुर (नगर) में

- २ ब्रह्म त्रैलोक्यं स्वप्नः सुषुप्तिरिति ब्रह्मणः ।
ता वेदैकानुसूक्तानि मोऽध्यक्षः कुर्यात् परः । श्रीमद्भाग० ७. २. २२
- ३ पुरुषेश्वरशरीरं च वैतन्त्रयसमवायि । श्रीमद्भाग० ११. २२. २२
- ४ ओऽविद्याया युक्तं स तु निर्व्यक्तो
विद्यामयो न स तु नित्यमुक्तः । श्रीमद्भाग० ११. ११. ७ तथा ११. ६. ८
- ५ सृष्टैर्वेदा पंचभिरात्ममूर्धैः
पुरं किराजं विरचय्य तमिदम् ।
स्वामिन विष्टः कृम्याभिरात्म-
मवाप नरायण्य आदिदेवः ॥ श्रीमद्भाग० ११. ४. ३
- ६ सृष्टयैवेतौ सहरौ सखायौ
बह्वचर्येतौ सुतनीतौ च वृद्धे ।
एकतयोः स्वदति पितृत्वान्-
मन्यो निरन्वोऽपि कवेन सुवान् ॥
आत्मानमन्यं च स वेद विद्वान्
अपिप्लादो न तु पिप्लादः ।
ओऽविद्याया युक्तं स तु नित्यं बद्धो
विद्यामयो न स तु नित्यमुक्तः ॥ श्रीमद्भाग० ११. ११. ६-९
ब्रह्मसत्त्वगुणस्वरूपः श्रीवो ब्रह्मज्ञानैवः ॥ श्रीमद्भाग० १. १. ३०

प्रवेश करके मधुमक्षिकाओं से निर्मित मधु के समान इन्द्रिय-ग्राम के द्वारा विषयों का सेवन करता है।^१

जगत्—जगत् का उपादान और निर्मित कारण ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। विभिन्न मर्तों में जगत् के उपादान कारण रूप में द्रव्य, कर्म, कान्त, स्वभाव, जीव आदि जो तत्त्व माने गये हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। जब मगुल ब्रह्म अनेक रूप होने की इच्छा करता है तो वह अपनी माया-शक्ति से सत्व, रज और तमोगुणों को क्रमशः जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के लिए स्वीकार करता है। यह विशिष्ट है कि उक्त तीनों गुण भी निर्गुण ब्रह्म के ही हैं।^२

वास्तव में श्रीमद्भागवत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं करता। सब कुछ ब्रह्म ही है, जीव भी, जगत् भी। जब ब्रह्म सत्य है तो यह सब जगत् भी सत्य है। तनुःशब्दोंकी भागवत में इसका सारांश इस प्रकार दिया गया है 'सृष्टि से पूर्व केवल ब्रह्म था। मत्, असत्, प्रकृति आदि कुछ भी नहीं था। सृष्टि के अनन्तर भी ब्रह्म ही था, जगत् रूप में भी ब्रह्म ही है और इसका घन्त होने पर भी केवल ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है।^३ केद में ब्रह्म की इस स्थिति को 'वासुदेवमीन्द्रो मदासीत्तदानीम्' इत्यादि श्लोका से निरूपित किया गया है।^४ विद्वानों ने सूक्ष्म विश्लेषण से यही अभिमत किया है कि ब्रह्म स्वरूपतः 'निर्गुण', माया के संयोग से 'सगुण', अविद्या के कारण 'जीव' तथा अज्ञान के कारण 'जीव' तथा विवर्त रूप में आने से 'जगत्'—इस प्रकार जगत् का है। आचार्य वासुदेव ने अपने ग्रंथ 'श्रुतिकल्पमता' के उपोद्घात में स्पष्ट

निर्गुण सगुण जीववर्जित जगदात्मकम् ।

एतन्वबुद्धिर्ब्रह्म श्रीमद्भागवते स्मृतम् ॥^५

उपरोक्त श्रीमद्भागवत में निर्गुण, सगुण, जीव और जगत् संज्ञा ने चार प्रकार के ब्रह्म का स्पष्ट उल्लेख है।

श्रीमद्भागवत-संस्कृत-टीका

संस्कृत-टीका-प्रथमः

संस्कृत-टीका-प्रथमः

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

संस्कृत-टीका-प्रथमः ॥ श्रीमद्भागवत ४. १४. ३४

प्रमुख द्वय हैं क्योंकि भागवतकार के मत में उन्वत्तः वह एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत में भगवान् का वर्णन निर्विशेष, अविशेष, निराकार, साकार विविध रूपां में हुआ है। अधिकारी भेद से साधक उनको अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करता है।

श्रीमद्भागवत के दश लक्षण और प्रतिपाद्य आश्रय-तत्त्व

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य ब्रह्म अथवा भगवान् है। इस में इस प्रतिपाद्य तत्त्व को साम्बन्धीय भाव में 'आश्रय' कहा गया है। आश्रय का साधारण अर्थ 'अरण्य स्थान' है। ब्रह्म या भगवान् ही समस्त ब्रह्मण्डल जगत् का एकमात्र आश्रय है। प्रह्लाद ही आश्रय और निरोध का अविष्टान्त, निरपेक्ष और निमित्त साक्षी है। श्रीमद्भागवत में इस आश्रयतत्त्व ब्रह्म के सम्बन्ध और उपनिषद् के विष्टान्तों विषयों का विवेचन हुआ है।^१ वे हैं—(१) मयं, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण (५) ऊर्जा, (६) सन्तन्त्र, (७) ईशानुक्त्या, (८) निरोध और (९) मुक्ति। दसवाँ तत्त्व स्वयं आश्रय तत्त्व है। मयं विसर्गादि के सविस्तर निरूपण द्वारा ब्रह्म के साक्षित्व और भगवान् की अनन्त विभूति महिमा का ज्ञान कराया गया है। यों ही श्रीमद्भागवत के बारहलक्षनां में से प्रत्येक में आश्रय-तत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है पर विवेकपूर्वक तत्त्वके अङ्गुल और साकार रूप का वर्णन उक्तमस्कन्ध में तथा निर्गुण और निराकार रूप का वर्णन द्वादशस्कन्ध में प्राप्त होता है। दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन एवं श्रीसामान है। श्रीकृष्ण ही श्रीमद्भागवत के अनुसार मण्डल, नाकार ब्रह्म है। वही 'आश्रय' है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म (आश्रय) का स्वरूप सभामते में पूर्व हयें प्रमुख भारतीय दार्शनिक आचार्यों के मत में ब्रह्म-तत्त्व की विवेचना समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि इनमें से ज्ञानः सभी ने श्रीमद्भागवत को परम प्रमाण माना है। अतः यहाँ हम संक्षेप में उक्त आचार्यों के मत का उल्लेख करते हैं—

श्री शंकराचार्य के अद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

ब्रह्मविन्माय, एकरम, अक्षय्य और अद्वितीय है। वह निर्विशेष है। केवल ब्रह्म ही मत्त्व है; उसके अतिरिक्त समस्त दृश्य जगत् मिथ्या है। माया का प्रपञ्च है। दृश्य का निर्विशेष हो जाने पर निर्विशेष की सीमा में जो अनुच्छिद्य, अवशिष्ट तत्त्व रह जाता है वही ब्रह्म है। ब्रह्म का निरूपण वर्णनात्मक, विज्ञानात्मक पदावली से सम्भव नहीं है, अपितु उसका कुछ सकेत 'वह स्थूल नहीं है', 'अणु नहीं है', 'दीर्घ नहीं है', 'अचिन्त्य है', 'अलक्ष्य है', 'अज्ञात है' आदि निर्विशेष पदावली से हो सकता है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण

^१ अथ सर्वो विस्तारश्च स्थानं पोषकभूतयः ।

सन्तन्त्रेशानुक्त्या निरोधोमुक्तिराश्रयः ।

दशमस्य विशुद्धार्थं सदानामिह लक्षणम् ।

वर्षयन्ति महात्मानः श्रुतेनैवैतं चात्मना ।

मुली पुरुष से परे होता है, इसलिए दोनों बिल्व भी हैं।

श्रीमध्वाचार्य के द्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

श्रीमध्वाचार्य की प्रकार के तत्त्व मानते हैं। १ स्वतंत्र २. अन्वयतः। अनेक सुख समस्त विष्णु स्वरूप तत्त्व ही ब्रह्म है। यह स्वतंत्र तत्त्व भाव और अभाव दोनों के बिलक्षण है। जीव और जगत् ब्रह्म के अर्थात् हैं। ब्रह्म तथा जीव सर्वथा पृथक् हैं। इसी प्रकार ब्रह्म तथा जगत् भी नित्य पृथक् है। किन्तु रामानुज के मत में ब्रह्म ही जगत् के रूप में परिष्कृत होता है। मध्वाचार्य ब्रह्म और जीव की नित्य भिन्नता मानते हुए दोनों में सेवा-सेवक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

ब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह समस्त विशुद्ध बर्णों का आश्रय है। वह निर्गुण होने पर भी मनुष्य, निराकार होने पर भी साकार, अचक्षुष होने पर भी मुग्ध, आत्माराम होने पर भी रम्य, निर्दोष होने पर भी सधर्मक है। ब्रह्म में परिष्कृत नहीं होता और होता भी है। वह अविज्ञान है और उसका परिष्कृत भी अविज्ञान है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं।

ब्रह्म के स्वरूप विवेचन में उपर्युक्त सम्प्रदायाचार्यों के भिन्न-भिन्न मतों के अतिरिक्त भारतीय दर्शनों में भी आश्रयतन्त्र (ब्रह्म) के भिन्न-भिन्न स्वरूप स्थापित किए गए हैं। गौतम के न्याय दर्शन तथा कामाद के वैशेषिक दर्शन में जगत् के कर्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया गया है। यतञ्जलि के योगदर्शन (अथवा शेष्वर सांख्य) में ब्रह्म (ईश्वर) को 'पुरुषविशेष' कहा गया है।^१ व्यास के वेदान्त दर्शन में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन पूर्वोक्त पाँच आचार्यों के मत के सांगण रूप में दे ही दिया गया है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म का स्वरूप—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है वेदान्त दर्शन के आधारभूत ब्रह्मसूत्रों के रचयिता तथा श्रीमद्भागवतकार वेदव्यास एक ही व्यक्ति हैं, अतः स्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्रों में आश्रय-तन्त्र (ब्रह्म) का जो स्वरूप गृहीत हुआ है श्रीमद्भागवत में भी वही स्वरूप मान्य है। श्रीमद्भागवत में जो जो सभी स्कन्धों के अर्थ विषयों का उद्देश्य आश्रयतन्त्र (ब्रह्म) का निरूपण करना है किन्तु दो स्कन्धों पर उसका साक्षात् उल्लेख कहा गया है। वे स्कन्ध हैं— द्वितीय स्कन्ध का दसवाँ अध्याय तथा द्वादशस्कन्ध का सातवाँ अध्याय, जहाँ कहा गया है कि 'सृष्टि और लय अथवा प्रतीति और अप्रतीति का अभाव—दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते हैं, वह परब्रह्म ही आश्रय अर्थात् अविष्ठान है उसी को परमात्मा नाम से पुकारा जाता है। जो आध्यात्मिक पुरुष (जीव) है वही आधिदैविक तेषादि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता हैं; जो उन दोनों को पृथक् करने वाला है, यह आधिभौतिक पुरुष (स्फुल्ल सरीर) है। एक के अभाव में दूसरे को उपबन्ध नहीं हो सकती। परमात्मा,

१ क्लेशकर्मविपरिवर्तपरसृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

प्राथमिक पुरुष तथा प्राथमिक पुरुष—ये तीनों सपेक्ष हैं। इन तीनों के भाव और अभाव को जो जानने वाला है, वह निरपेक्ष साक्षी 'आश्रय' है। जीव की तीन अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति के अभिमानों विश्व, तंजस और प्राज्ञ के मायामय रूपों में जिसका व्यतिरेक और अन्वय होता है वह जगत् की प्रतीति और बाध का अधिष्ठान ब्रह्म ही 'आश्रय' है। श्रीमद्भागवत की चतुःश्लोकी में इसी आश्रयतत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है। जिसका सारांश यह है कि "सृष्टि के पूर्व केवल ब्रह्म ही ब्रह्म था। ब्रह्म के अनिर्दिक्त न भाव या न अभाव, और न दोनों का कारण अज्ञान था। उस समय न सूक्ष्म जगत् था न सूक्ष्म जगत् और न दोनों का कारण प्रकृति ही थी। जहाँ यह सृष्टि नहीं है वहाँ भी केवल ब्रह्म है और इस प्रपञ्च के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी ब्रह्म है। इस प्रपञ्च के न रहने पर जो कुछ अवशिष्ट रहेगा, वह भी ब्रह्म ही होगा। वस्तुतः न होने पर भी जो कुछ अनिर्वच्य वस्तु ब्रह्म के अनिर्दिक्त दो चन्द्रमाओं की भाँति मिथ्या प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश के तन्त्रों में राहु की भाँति ब्रह्म की प्रतीति नहीं होती, यह उस ब्रह्म के परमात्मरूप की मायाशक्ति है। जैसे प्राणियों के पाञ्चभौतिक लक्षुहृत्कार्यों में विश्वदादि पंचमहाभूत उन शरीरों के कार्यरूप में निमित्त होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही तत्त्वस्थान रूपों के कारण स्वैच्छ विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते; उसी प्रकार उन भूतप्राणियों के शरीर की दृष्टि से ब्रह्म उनमें आत्मरूप से प्रविष्ट भी है और आत्मदृष्टि से ब्रह्म के अनिर्दिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी है। अन्वय (यह ब्रह्म है) और व्यतिरेक (यह ब्रह्म नहीं है), की अभिमान-पट्टति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत और सर्वरूप ब्रह्म ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है। वही वस्तुतः तन्त्र-सर्वार्थ है। आत्म-परमात्म-तत्त्व के विज्ञानों के लिए इतना ही जानना अल्पम् है।"^२

१. आत्मानस्य निरोधस्य सर्वकारणवतीत्ये ।
 न आश्रयः परब्रह्म परमात्मैतं सत्त्वं ॥
 कोऽप्यभिधीतेऽनं पुरुषं सोऽस्योदेवर्षिर्ब्रह्मः ।
 वक्तव्येन्ये "विन्देदः पुरुषो धारिणीर्ब्रह्मः" ।
 जगत्स्योत्पत्तये कदा सौख्यं समाप्ते ।
 किञ्चित् कदाचिद् न सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
२. सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥
 सत्त्वं सत्त्वं न्वाश्रयः सत्त्वं न्वाश्रयः सपः ॥

श्रीमद्भाग० १. १०. १०, ३
 श्रीमद्भाग० १२. ७
 श्रीमद्भाग० २. ६. ३२-३५

प्रतिष्ठापक है और हमने अद्वैत ब्रह्मवाद का सुनिश्चित एवं हृदयंगम प्रतिपादन करने के लिए उसने अपने 'चतुःश्लोकी' का सुदृढ कनेवर को विस्तृत कर वर्तमान बृहत्काय बाराह किया है। गीता में इसी आश्रयतत्त्व को 'युक्तोत्तम' कहा गया है और इसे परा-अपरा प्रकृति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, कर-अकर तथा प्रकृति पुरुष में परे माना गया है।^१ श्रीमद्भागवत में इसे ब्रह्म 'परमात्मा' और 'भगवान्' नीनों ही नामों से सम्बोधित किया गया है और श्रीकृष्ण को इनमें अभिन्न माना गया है।^२ श्रीमद्भागवत में अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख है।^३

इस प्रकार इस दशमस्कन्ध आश्रय (ब्रह्म = श्रीकृष्ण) की यथावर्षोत्तमि के लिए श्रीमद्भागवत में मर्म किसादि अन्य नौ तत्त्वों का बर्णन किया गया है।^४ अतः इन तत्त्वों का स्वरूप भी संक्षेप में वहाँ व्यक्त किया जाता है।

आश्रयतत्त्व के प्रतिपादक अन्य नौ तत्त्व

(१) सर्ग—'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि। सृष्टि के प्रारम्भ और उदभव के विषय में विश्व के विभिन्न वर्मदर्शनों में अनेक मत हैं। भारतीय ब्राह्मण-वेद, उपनिषद्, दर्शन पुग्यादि में ही विभिन्न मत मिलते हैं। स्वयं श्रीमद्भागवत में ही अनेक प्रकार से सृष्टि के उदभव और विकास का वर्णन हुआ है। भारतवर्ष के आस्तिक दर्शनों में ब्रह्म को सृष्टि के आधार रूप में सभी ने स्वीकार किया है किन्तु सृष्टिक्रम में मतभेद पाया जाता है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि-क्रम के सम्बन्ध में तीन मतवाद प्रमुख हैं—(१) आरम्भवाद, (२) परिणामवाद और (३) विवर्तवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनों में परमाणु रूप काकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन को 'नित्य द्रव्य' तथा गुरु, कर्म, सामान्य, विशेष आदि को 'अदार्थ' माना गया है। परमात्मा अनेक जीवात्माओं में सर्वथा विलक्षण तत्त्व है। सृष्टि के आरम्भ में वह निमित्त रूप से विकीर्ण परमाणुओं को संसृक्त करता है, अतः ताजा प्रकार की सृष्टि होती है। परमाणुओं का संशोधन होना ही सृष्टि का आरम्भ है।

१ परमाण्वरमनीशोऽब्रह्मवरादपि कोशमः ।

अनोऽभिलोके वेदे प्रकितः पुण्योत्तमः ।

श्रीमद्भागवतीता १५. २०

२ अदमित्तमस्यविदः सर्वं ब्रह्मानमद्वयम् ।

अक्षोति परमात्मेति भगवानिति शक्यते ॥

श्रीमद्भाग० १. २. ११

कृष्णमेवमवेति स्वमात्मन्तस्त्रिंशत्समायम् ।

इन्द्रिताय सोऽयत्र देहीवानिति मायया ॥

श्रीमद्भाग० १०. १४. १५

ब्रह्मकृष्ण महाभाग भगवानमसर्वकर ।

X X X X

त्वमाद्यः पुरुषः सान्नादीश्वरः प्रकृतेः परः ।

श्रीमद्भाग० २३. ७१. ७. २२

३ कृष्ण कृष्ण महायोगिस्त्वमस्यैवः पुरुषः परः ।

व्यक्तान्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणविदुः ॥

श्रीमद्भाग० १०. १०. २६

४ दशमस्य विशुद्धस्यै नवानामिह लक्ष्यम् ।

अथैवमिति महात्मायः श्रुतेनाथेन चात्रता ॥

श्रीमद्भाग० २. २०. २

इसी से इस मत को 'भारम्भवाद' कहा जाता है। जो दर्शन परमाणुओं के संयोग में ईश्वर को निमित्त कारण मानते हैं, वे 'शेखर' हैं और जो नहीं मानते वे 'निरीश्वर'।

योगदर्शन अथवा ईश्वर सांख्य में त्रिगुणात्मिका प्रकृति को सृष्टि का कारण माना गया है, परमाणुओं को नहीं। त्रिगुण के परिणाम से ही सृष्टि होती है। इसी से यह मत 'परिणामवाद' कहलाता है। कतिपय दार्शनिक आचार्य इस परिणाम में ईश्वर को निमित्त मानते हैं और कतिपय आचार्य परिणाम को प्रकृति का सहज भाव ही मानते हैं। कतिपय आचार्य ब्रह्म में परिणाम मानते हुए भी ब्रह्म को अद्विकृत मानते हैं यही ब्रह्म का 'विरुद्धवर्माश्रयत्व' है। इस प्रकार परिणामवाद के तीन भेद हो जाते हैं—(१) 'ब्रह्म-परिणामवाद' जिसके समर्थक रामानुजाचार्य हैं, (२) 'गुण-परिणामवाद' जिसके समर्थक श्री मन्वाचार्य हैं, (३) 'अद्विकृत-परिणामवाद' जिसके समर्थक श्रीवल्लभाचार्य हैं।

अब तीसरे सिद्धान्त विवर्तवाद को लीजिए। इसके प्रमुख समर्थक श्री शंकराचार्य हैं। शंकर ब्रह्म से पृथक् परमाणु, प्रकृति और उसके परिणाम आदि किसी वस्तु की सत्ता स्वीकार नहीं करते। बस 'परिणाम' और 'विवर्त' शब्द एकार्थक से लगते हैं किन्तु वास्तव में इनमें बड़ा भेद है। 'परिणाम' सत्य वस्तु में होने वाले वास्तविक परिवर्तन को कहते हैं और 'विवर्त' अवास्तविक होने पर भी भ्रमवस्तु दिखाई पड़ने वाले परिवर्तन को कहते हैं। यह सृष्टि 'विवर्त' के कारण दीख पड़ती है। यह 'विवर्त' ही माया है जो कल्प नहीं है, भ्रम है। एक अद्वितीय सच्चिदानन्द वस्तु को ही प्रतिष्ठा विवर्तवाद का लक्ष्य है। सृष्टि आदि का बसुन इनका लक्ष्य नहीं है। जहाँ सृष्टि आदि का वर्णन है वह अध्यारोप रण्ट से समझने के द्वारा उन्नी अद्वितीय परब्रह्म का ज्ञान कराने के उद्देश्य से है। कसे भी हो, सबका अज्ञान हीकर स्वकीयत्व ही होना चाहिए।

श्री निम्बार्काचार्य का मत है कि दृष्टि भेद में सभी सिद्धान्त सम्भव हो सकते हैं। पूर्वमीमांसकों को मानकर बनने वाले आचार्य जीवों के दृष्ट को ही सृष्टि का कारण मानते हैं। व्याख्यारिक दृष्टि में उत्तर मीमांसक (वेदान्ती) भी वही स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लोगों ने ईश्वर के रमण, देव की इच्छा तथा काल की क्रीड़ा को सृष्टि का कारण कहा है। पश्चिम के दर्शन में सृष्टि और अर्वाचिन्य जगत् के सम्बन्ध में कोई सुस्थिर सिद्धान्त नहीं है। आधुनिक दार्शनिक भी पहले अनेक पदार्थों के संयोग से सृष्टि का आरम्भ मानते थे किन्तु बाद में उन्होंने विकासवाद स्वीकार किया। अभी पाश्चात्य दर्शन का वैज्ञानिक पर नहीं पहुँच गया कि सृष्टि का मूलतत्त्व जड़ है या चेतन। भारतीय दर्शन सृष्टि के मूल में निर्विकल्प रूप से चित्तन्व को स्वीकार करता है।

श्रीवैश्वानरमत में सृष्टि (सर्ग) तत्त्व का निरूपण अनेक प्रकार से किया गया है। आद्युक्त सभी दार्शनिक अपने मत को सृष्टि के लिये उसे प्रमाण रूप में ग्रहण कर सकते हैं। श्रीवैश्वानरमत में सर्व का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

वद, श्रीवैश्वानरमत ३. २२ में श्रमायु के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है।

ब्रह्मालो मुहूर्तवन्द्याद्.....॥

X X X

अध्यात्मसुखसोपान्महत्त्वमिदं नोऽस्मिः ।

भूतमात्रेन्द्रियाद्यनेना सम्भवः तत्र उच्यते ॥११

अर्थात् 'ईश्वर की प्रेरणा से मूर्तों में जीव होता है, वे स्थानान्तरित होते हैं और तब ओ आकाशादि पञ्चभूत, तन्मात्रादि, इन्द्रियादि, अहंकार और महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है उसे 'सर्ग' कहते हैं। जब मूल प्रकृति में तीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है, महत्तत्त्व में रासम, तामस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकार के अहंकार बन्ते हैं। त्रिविध अहंकार में पञ्च तन्मात्राद् (शब्दरूपमादि) इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रम का नाम 'सर्ग' है।'

अब प्रश्न यह है कि श्रीमद्भागवत में इनके निम्न-निम्न सिद्धान्तों के अनुसार सर्ग (अथवा सृष्टि) का वर्णन क्यों है? क्या सृष्टि वर्णन ही उसका लक्ष्य है? नहीं। वास्तव में बात यह है कि श्रीमद्भागवत को कि एक समन्वयात्मक महान् दार्शनिक ग्रंथ है, बुद्धि के समस्त सम्भव पक्षुषों से सृष्टि के उद्भव के सम्बन्ध में विचार करके अन्त में ब्रह्म को ही उसके मूल में प्रतिष्ठित करता है; उसके सर्ग (सृष्टि) वर्णन का लक्ष्य यही है।

श्रीमद्भागवत में एक दूसरी दृष्टि में श्री सर्ग-वर्णन किया गया है, वह है—भक्त की दृष्टि। भगवान् भक्त को आनन्दित करने के लिए क्रीडा करने के लिए, रमण करने के लिए भक्त को अपनी लीला का आस्वादन करने के लिए सृष्टि करते हैं। श्रुतियों में आया है, 'वह रमण करना चाहता था' (म रन्तुमैच्छत्) उसे अकेले जाना अच्छा न मगर, इसलिये उसने दूसरे को रचा। (स एकाकी नारयत् । ततो द्वितीयमसृजत्) भगवान् जगत् को निर्माण कर भक्तों के साथ रमण करते हैं। अणुपर जगत् भगवान् की 'जीवा' है। यह 'लीला' भक्त के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है। अस्वस्वीया का दर्शन और गहन भक्त का चरम लक्ष्य है। इसीलिए तो भक्त भगवान् के समान ही जगत् को—जो भगवान् की लीला है—नित्य आनता है।

(२) विसर्ग—'विसर्ग' का अर्थ है विशिष्ट सर्ग, विशिष्ट सृष्टि। यह विशिष्ट सृष्टि ब्रह्मा की वासना विशिष्ट सृष्टि है।^१ विराट् के अण्ड (ब्रह्माण्ड) में ब्रह्म द्वारा जो विविध सृष्टि होती है उसे विमर्ग कहते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि मानसी सृष्टि है। बंजी नहीं। जीवों की वासना के अनुसार एक बीज से दूसरे बीज के होने—अणुपर सृष्टि की उत्पत्ति को 'विमर्ग' कहते हैं। यह विमर्ग भगवान् की अनन्त लीला शक्ति और ज्ञान का श्रावण है।

१ श्रीमद्भागवत २, १०, ३ तथा १२, ७, ११
२ विमर्ग-बीजस्य स्मृतः । श्रीमद्भाग० २, १०, ३.
ब्रह्मवानुसृष्टीनामनेना वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाश्रितो बीजाद् बीजं वरावरत् १ श्रीमद्भाग० १२, ७, १२

सृष्टि की प्रत्येक विचित्रता और विविधता भगवान् के अनन्त सौन्दर्य और कौशल का भान करानी है। भक्त भगवान् की अचिन्त्य लीलाओं को देखकर मुग्ध होता रहता है, अतः स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत में विद्यमन्-वर्णन का उद्देश्य भी आश्रयमूर्त ब्रह्म (भगवान्) की अनुभूति और उपलब्धि ही है।

(३) स्थान—श्रीमद्भागवत में इसे 'स्थिति' भी कहा गया है। सृष्टि और विनिष्ट सृष्टि के वर्णन के पश्चात् यह स्वामाधिक है कि उसकी वास्तविक स्थिति बताई जाय। 'किन्तु विशेष मयादाओं के पालन से सृष्टि स्थित है।' 'लोकों की सख्या और विस्तार किम्बदा है।' 'उनका धारक और निधामक कौन है', इत्यादि प्रश्नों पर विचार करने से भी सर्व-लोक-निम्न्ता भगवान् की ही सर्वश्रेष्ठता का अनुभव होता है। भगवान् ही समस्त चराचर का अतिक्रमण करके उनसे दस अंगुल आगे निकल जाते हैं—अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् । यही सबसे विजयी होते हैं। इसी से श्रीमद्भागवत में कह दिया गया है—'स्थितिर्विकुण्ठ विजयः' अर्थात् भगवान् की सर्वातिघाथिनी विजय ही 'स्थिति' या 'स्थान' है। स्थिति से भगवान् की अद्भुत आधार-शक्ति और वारसाशक्ति का किञ्चित् अनुमान होता है। प्रत्येक ऐक्यकाल के कर्तव्याकर्तव्य, सुकर्म कृकर्मदि के नियन्ता और न्यायदण्डादि के धारक भगवान् श्री अनन्त महिमा के स्थापन के उद्देश्य से 'स्थान' का वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है।

(४) पोषण—सृष्टि नियामक और न्यायाधिपति होने के साथ ही भगवान् अहैतुकी कृपा का आधार है। इसी से श्रीमद्भागवत में भगवान् के अनुग्रह को "पोषण" कहा गया है।^{१३} अष्ट स्कन्ध में पोषण का वर्णन है। इसमें देव, दानव और मनुष्य सभी पर भगवान् के अहैतुक-अनुग्रह, अकारण-कृपा का दिग्दर्शन होता है। देवताओं में इन्द्र, जिसके द्वारा बुध कद अश्वत्थ और 'विश्वरूप' नामक ब्राह्मण का वध हुआ था, भगवान् के अनुग्रह का पात्र हुआ। बंटकों में वृषासुर और मनुष्यों में अजामिल भगवान् की कृपा के कारण मुक्त हो गए। श्रीमद्भागवत में इन तथा अन्य अनेक आख्यानों का उद्देश्य भगवान् की अनन्त अहैतुकी कृपा का ज्ञान कराना ही है।

(५) उक्ति—अग्नि का धर्म है कर्म-वासना।^{१४} अपनी कर्मवासना के कारण ही 'सर्व वन्यन से बंधा हुआ है। कर्म-वन्यन के कारण वह परमात्मतत्त्व को विस्मृत किए हुए ।। कर्मवच से कर्म भी गति है भी नहीं महान्—बहुता कर्मसो गतिः'।^{१५} जब तक कर्म-धरुणताओं का स्वरूप स्पष्ट होकर उनकी दुःख-रूपता का अनुभव जीव को नहीं होता तब तक वह बाल्य से रहित नहीं होता और तब तक आनन्द के अविद्यमान परमात्मा की उपलब्धि भी उसे नहीं होती। शुभ और अशुभ भेद से वासना दो प्रकार की होती है। मनुष्यों के प्रति श्रेय होने के कर्मस्वरूप उनके अनुग्रह से शुभ वासना तथा उनसे द्वेष इत्यादि से अशुभ वासना होती है। विष्णुपार्षद जय-विजय का सनकादि के द्वेष के कारण

१३. स्थितिर्विकुण्ठविजयः श्रीमद्भाग० २. १०. ४
 १४. अग्निर्विकुण्ठविजयः श्रीमद्भाग० २. १०. ४.
 १५. अग्निर्विकुण्ठविजयः श्रीमद्भाग० २. १०. ४
 श्रीमद्भागवत-टीका १४. १७

करना स्पष्ट है। सदाचार की मद्दुम्नों से जीवन का निर्माक कर भगवदनुष्ठान का अनुष्ठान करने से भगवदनुष्ठान का आनन्द हो जाता है। श्रीमद्भागवत के सप्तमस्कन्ध में 'उत्ति' का वर्णन है।

(६) मन्वन्तर—काल गणना में ऋतुचक्रों के श्रुति मुनियों ने आदर्शवर्षक योनि-दृष्टि का उपयोग किया है। काल का परिणाम उत्तरे, क्षय के भी अनुष्ठान भाग से लेकर 'कल्प' जैसे विशाल कालखण्ड तक मन्वन्तर है क्योंकि काल तो अनादि और अनन्त है और ब्रह्म की स्थिति भी ऐसी ही है। अतः ब्रह्म के विकासोन्मुखचिह्नमन्त्र को निरूप करने के लिए काल गणना अतिवार्थ है। श्रीमद्भागवत में इसी उद्देश्य से 'मन्वन्तर' का वर्णन किया गया है। काल के कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार अष्टावक्र लक्ष खण्ड हैं। यह एक चतुर्गुणी है, जिसका परिणाम ४३००००० मनुष्य वर्ष है। इस प्रकार की ७१ चतुर्गुणियों का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में एक 'मनु' मनुष्यों से सद्धर्म का पालन कराते हैं। उसके बाद दूसरे मनु आते हैं। एक मनु से दूसरे मनु के आश्रम का सममन्तर 'मन्वन्तर' कहलाता है। इस प्रकार जब १४ मन्वन्तर हो जाते हैं, तब एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का एक दिन है। ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है।^१ इस हिसाब से ब्रह्मा सौ वर्ष जीवित रहते हैं। ब्रह्मा की पूरी आयु जिसे 'द्विपरार्ध' कहते हैं भगवान् के एक निमेष के समान है।^२ भारतीय मनीषियों ने ब्रह्म के अनाद्यनन्तत्व का कृष्ण आभास कराने के लिए ही इतनी विशाल काल गणना की है।

श्रीमद्भागवत में मन्वन्तर को 'सद्धर्म' कहा गया है।^३ प्रत्येक मन्वन्तर में मनु के रूप में सद्धर्म का विस्तार होता है। मनु १४ हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वरोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैश्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्ष सवर्णि, (१०) ब्रह्मासवर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) मद्रसावर्णि, (१३) देवसावर्णि और (१४) इन्द्रसावर्णि। इनमें से वर्तमान 'धेतव्य काराह कल्प' के प्रथम ६ मनु व्यतीत हो चुके हैं। सातवें वैश्वतमनु वर्तमान .।

(७) ईशानुक्त्या—श्रीमद्भागवत में त्रिगुण-ब्रह्म को नत्त्वतः स्वीकार करते हुए व्यवहार में समुल्ल ब्रह्म की उपसना का उपदेश किया गया है। समुल्ल ब्रह्म अवतार धारण करता है। समस्त हिन्दू धर्म ग्रंथ भगवान्वाद का समर्थन करते हैं।^४ ऋग्वेद में विष्णु के कामनाकार का उल्लेख "इदं विष्णुचिह्नं त्रेधा निदधे पदम्" आदि श्रुतियों से किया गया है। अतः स्पष्ट है कि भगवदवतारों और भगवत्कालोत्पत्तियों का गान भगवत्स्वरूपोपलब्धि के

१ सद्धर्ममन्वन्तरमन्वन्तरं विदुः।

रात्रिं सुमन्वन्तरानां तेषोरुत्तरेणोत्तरेणः ॥ श्रीमद्भागवत २. १७

२ कालोऽर्धद्विपरार्धयोः निमेष उपकथनः।

अध्याह्नस्थान्तस्व अदार्त्तैर्जादात्मनः ॥ श्रीमद्भाग ३. ११. २७

३ मन्वन्तराणि सद्धर्मः.....

श्रीमद्भाग २. १०. ४

४ शीला ४-७ तच्छ श्रीमद्भागवत २. ७

द्विगु भावश्यक है। भगवच्चरित्र के समान ही भगवद्भक्तों के चरित्र और आख्यान भी उलने ही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि भगवान् और भक्त में भेद नहीं रह जाता।^१ इसलिए श्रीमद्भागवत में विविध भगवदवतारों तथा भगवद्भक्तों की गाथाएँ 'ईशानुकथा' के नाम से साथ ही वर्णित हैं जो नाना आख्यानों से और भी विस्तृत हो गई हैं।^२ मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य में भगवदवतारों, भगवल्लीलाओं और भगवद्भक्तों के पुष्प चरित्रों का मान एक प्रमुख वर्ण-विषय रहा है। भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि भगवन्नाम और भगवत्कृपा के मान में अवश्य ही भगवत्प्राप्ति होती है और यही तक नहीं भगवान् से भी दुर्लभ उनकी भक्ति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत में स्थान-स्थान पर भगवदवतारों का वर्णन और उनकी मुचियाँ दी हैं। आचार्यों ने अवतारों के अनेक भेद किए हैं—यथा पूर्वोक्तार, अभावतार, गुणावतार, व्यूहावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, रफूति-अवतार। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्—अवतारी पुरुष हैं।^३ श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा श्रीमद्भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में वर्णित है।

(२) निरोध—ममस्त जड चेतनात्मक प्रपञ्च जब अपनी उपाधियों के साथ ब्रह्म में लय हो जाता है, तब वह स्थिति 'निरोध' कहलाती है। यही प्रलय है। उस समय भगवान् अपनी शक्तियों सहित योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं।^४ अवतारावस्था में भगवान् कृष्टि की विपरीत गति का निरोध करते हैं। सत् का प्रवर्धन और असत् का उन्मूलन करते हैं। असत् के प्रतीक हिरण्याक्ष, रावण, कंसदि का वध करते हैं।^५ यह भी निरोध ही है।

श्रीमद्भागवत में प्रलय का विस्तृत वर्णन है।^६ प्रलय चार प्रकार के होते हैं—
(१) नित्य, (२) नैमित्तिक, (३) प्राकृत और (४) आत्यन्तिक। जगत् का निरन्तर क्षय और नित्य प्रति निद्रा के समय कृष्टि का अज्ञान में लीन हो जाना 'नित्य प्रलय' है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकार का होता है—(१) आधिभूत प्रलय, (२) पूर्ण नैमित्तिक प्रलय, गन्धर्व के दाह आधिभूत प्रलय तथा कल्पांत में पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। ब्रह्मा की मृत्यु पूरी होने पर प्राकृत प्रलय होता है और ब्रह्माण्ड प्रकृति में सर्वथा विलीन हो जाता है। आत्यन्तिक प्रलय जीविका साधना चतुष्टय द्वारा स्व स्वरूप में स्थित होना है। उस समय उसके शक्ति संसार का आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है, इसका समय निश्चित नहीं। यदि वह जब भी भगवत्सुख हो जाय, उन्ही संसार का आत्यन्तिक प्रलय होता है। यही प्रलय की मुक्ति है।

१. श्रीमद्भागवत के श्लोकानुसार—भारद् सनि, सूत्र २१

२. अज्ञानानुसारिणं शरीरकालानुवर्तितानाम्।

३. महाभारत अष्टमः प्रोक्तः महाभारतानुवर्तितानाम् ॥

४. श्रीमद्भागवत १०. १०. ३

५. श्रीमद्भागवत १०. ३. २८

६. श्रीमद्भागवत १०. ३. ६

७. श्रीमद्भागवत १०. ३. ६

८. श्रीमद्भागवत १०. ३. ६

९. श्रीमद्भागवत १०. ३. ६

श्रीमद्भागवत १०. ३. ३

.. १०. ३. २८

.. १०. ३. ६

• एक अथाह जोरों के ही अविच्छिन्न बह्वी उपलब्धि होती है ।

(६) मुक्ति—मुक्ति या मोक्ष जीव का परम पुरुषार्थ है । अगच्छाति ही मुक्ति है । यह अगच्छाति दो प्रकार से हो सकती है—(१) ब्रह्मज्ञान के (२) अगच्छाति के । प्रकृति में प्रथम महाप्रलय आदि लो होते हैं किन्तु अत्यन्तिक प्रलय नहीं होता । किन्तु जब जीव पर अगच्छाति होता है और यह अगच्छाति-स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब उसके लिए सर्वादि का आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है । यह आत्यन्तिक प्रलय ही मुक्ति है । जीव को यह मुक्ति कभी भी प्राप्त हो सकती है : देश, काल, रूप, निवासि भेद इत्यादि कोई व्यवधान नहीं डाल सकते । उस समय जीव के जन्म-मरण का बन्ध छूट जाता है । वेदान्त दर्शन में इसे 'कैवल्यमुक्ति' कहा गया है । कैवल्य मुक्ति का उपाय है तान्ना नाम रूपों को उत्पन्न करने उनको कामना से जीव को मुक्तपुष्पा में डालने वाली अविद्या का नाश । पराविद्या अथवा परमज्ञान से इस अविद्या का नाश होता है । तब प्रष्टा अपने स्वरूप में अविद्यत होता है । श्रीमद्भागवत में मुक्ति का जो चतस्र निरुद्ध है वह वेदान्त-दर्शन-सम्मत कैवल्य-मुक्ति में पूर्णतया घटित हो जाता है । श्रीमद्भागवत में मुक्ति का लक्षण यह बताया गया है कि अज्ञान-वन्धित कर्तृत्व, मोक्षत्व आदि अज्ञानमय का परित्याग करने अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाना अर्थात् परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेना ही मुक्ति है ।^१ जब तक जीव 'इदं' पदवाच्य अन्वय रूप (विषय)^२ को नहीं छोड़ देता तब तक उसे 'सोऽहम्' पदवाच्य सहज स्वरूप आत्मा की अनुभूति नहीं होती ।

श्रीमद्भागवत में इस मुक्ति का वर्णन वेदोक्त सिद्धान्त के अनुसार सद्गोमुक्ति और काममुक्ति के नाम से हुआ है ।^३ श्रीमद्भागवत में कैवल्यमुक्ति का वर्णन को ही इसके अतिरिक्त पाँच प्रकार की मुक्तियों का वर्णन भी है । वे हैं—(१) सालोक्य मुक्ति, (२) सार्वटि-मुक्ति, (३) सामीप्य मुक्ति, (४) साहचर्य मुक्ति और (५) सामुज्य मुक्ति^४ भगवान् के लिए चित्तमय काम में निवास करना सालोक्य मुक्ति है । भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्वटि मुक्ति है । भगवान् का सतत सामीप्य प्राप्त कर लेना सामीप्य मुक्ति है । भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना साहचर्य मुक्ति है । भगवान् में लीन हो जाना, युक्त हो जाना सामुज्य मुक्ति है । इन पाँचों प्रकार की मुक्तियों के अनेक उदाहरण श्रीमद्भागवत में प्राप्त होते हैं । उदाहरणार्थ विश्रुत के कृष्ण से निरन्तर बर-सात्र के कारण ज्येष्ठाकारता हो गई थी अतः सरस्वतीपर्यन्त उसकी आत्म-ज्योति वासुदेव श्रीकृष्ण से अनविष्ट हो गई जिससे उसे सामुज्य मुक्ति प्राप्त हुई ।^५ गोस्वामी तुलसीदास

१ मुक्तिर्हि ज्ञानवशात् स्वरूपेण व्यवस्थितिः ।

श्रीमद्भाग० १. १०. ६

२ विषयस्यो मिथ्याज्ञानमत्तद् प्रकृतिष्ठम्—

वेगसूत्र १. ५

३ श्रीमद्भागवत ७. २

४ श्रीमद्भागवत १. २६. १३

५ लैलदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवसुपाविसात् ।

परशरामैवमुनानामुत्केश मुनिस्तान्मुक्ताः ।

श्रीमद्भाग० १०. ७४. ४५

साहचर्य मुक्ति के लिए श्लोक—

श्रीमद्भाग० ११. ३०. ३

व्यास ने जब नारद से अपनी इस कृपा की बात कही तो नारद ने भी उत्तर दे कर ही कहा कि जिस प्रकार उन्होंने धर्म अर्थ धर्मि का पूर्ण निरूपण किया उस प्रकार निर्मम भगवद्भक्त नहीं थाया। इसी कारण वे उद्दिष्ट और प्रधान हैं। जिस धाम से भगवान् ही सुप्त न हों वह ज्ञान तो मोक्ष ही है।^२ तब व्यास ने इस भगवत्प्रतिबद्ध मंगलमय भागवतपुराण की रचना की और अपने आत्मजाती पुत्र शुक को पढ़ाया।^३ इस प्रकार श्रीमद्भागवत का व्यावहारिक उद्देश्य भगवद्भक्ति का प्रकाशन है। इस पुराण में भक्ति को केवल्य मुक्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है और शोचनी की गई है कि एकान्त भगवद्भक्त तो अपुनर्मम रूप केवल्य की भी कामना नहीं करते।^४

श्रीमद्भागवत में निरूपित भक्ति सिद्धान्त का विमर्श करने से पूर्व हम संक्षेप में मानव हृदय में भक्ति भावना की सहजता पर विचार कर लेना उचित समझते हैं।

भक्ति एक सहज भाव—विकास-क्रम की दृष्टि में मनुष्य में रागात्मक भावनाओं का उदय बौद्धिक तर्क शक्ति से पहले ही होता है। अतः रागात्मक भाव—'भक्ति' का जन्म निश्चय ही ज्ञान से पूर्व हुआ होगा। यह सहज अनुभव है। इस प्रकार भक्ति का उदय हम मनुष्य के उदभव के साथ ही मानें तो अनुचित न होगा। विष्व के महान् से महान् बुद्धिशाली तत्त्वचिन्तकों ने परमत्व के शक्ति निरूपण में अपनी बौद्धिक शक्ति की

२ ध्रुवव्रतं हि महा इन्द्रोनि दुरवोऽपमदः ।
 शान्तिना निर्वर्त्तकेन सूदरं तानुशामनम् ।
 कारजन्वषदरोन शान्वाधार्भर्य दारितः ।
 दुरवने वष धर्मादि स्त्री शूद्रादिभिश्च्युत ॥
 तथापि सत मे दैवो ह्यस्तः तैवान्मदः विभुः ।
 कसम्पन्न इवाभाति मङ्गलवैत्थसत्तमः ॥
 किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
 भिक्वाः परमर्हमानां च शत्रु ह्यच्युतप्रियाः ॥

श्रीमद्भाग० १, ४, २८, ३१

३ भवतामुचिन्मार्गं दशो जनवरोऽभ्रजम् ।
 देवैवान्मो न तुयेन मन्ये तद्वर्त्तन शिखलम् ॥
 यथा धमत्तयजुषार्था मुनिवयोऽहोर्निताः ।
 न तथा वासुदेवस्य महिमा अनुवर्त्तितः ।

श्रीमद्भाग० १, ५, २, ६

४ इदं भागवतं नाम पुराणं श्रमस्मिन्माम् ।
 उत्तमश्लोकवर्तितं चकार भगवान्मुनिः ।
 निःश्रेयसाय लोकत्व धर्मं स्वस्वधर्मं महत् ।
 तथैव आहयामास सुनमात्सवना वरम् ॥
 इदं भागवतं नाम कल्पे भगवतोऽजितम् ।
 संस्रजेऽर्जुनं विभूतीनां लभेत्स्वविपुलीकृत् ॥

श्रीमद्भाग० १, २, ४०-४१

श्रीमद्भाग० १, ७, ५१

५ न किंचित् साधनो बीरा यथा ह्येकान्तियो मम ।
 वाङ्मन्यधि महा दत्तं कैवल्यमपुनर्भवेत् ॥

श्रीमद्भाग० ११, २०, ३४

यह ज्ञान लिया था कि सृष्टि की लड़ में सृष्टि के तत्त्वज्ञान और अनित्य पदार्थों से भिन्न या विन्यस्त कोई एक तत्त्व है, जो अनात्मन्त, अमृत, स्वतंत्र, सर्वव्यक्तिमान और सर्वव्यापी है। और मनुष्य उसी समय से उस तत्त्व की उपासना किसी न किसी रूप में करता गया था रहा है।¹ इस मत से स्पष्ट होता है कि अज्ञा और अज्ञित मनुष्य की एक महत्वमयी भावना है और आदिम युग के मानव ने उसे ईश्वर की उपासना का माध्यम बनाया था। अद्यपि विश्व के प्राचीनतम साहित्य केंद्र में इस वर्णन को एक पृथक् दर्शन के रूप में वर्णित नहीं पाते तथापि उसके बीज हमें वैदिक ऋचाओं में अवलोक्य प्राप्त होते हैं।

भक्ति का विकास—एक सहज सामान्य रागात्मक भाव अनेक युगों में झूठे हुए नव्यज्ञान में किंचि प्रकार एक पृथक् भक्तिदर्शन के रूप में परिष्कृत हो गया इस विषय पर अनेक विद्वानों ने बहुत विस्तार से विचार किया है। परन्तु हम भक्ति के विकास विषय पर अनावश्यक विष्टोपमसु न करके संक्षेप से केवल इतना कहना पर्याप्त समझते हैं कि भारतीयों में भक्ति का उद्भव एक सहज स्वाभाविक घटना है। इसके उद्भव का कारण न तो इस्लाम का अन्याचार है और न ईसाइयत का प्रभाव।² भारतीय भक्ति के बीज वैदिक ऋचाओं में विद्यमान हैं। ये ऋचाएँ अज्ञा और भक्ति की उत्कट भावनाओं से पुरित हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्र, सावित्री, उषा आदि के प्रति उद्गीत ऋचाओं में हृदय को द्रवित कर देने की शक्ति है। कौन कह सकता है कि ये ऋचार्थ भक्तिपरक नहीं हैं।³ उपनिषदों में हम और भी स्पष्ट रूप से भक्ति सिद्धान्त का दर्शन करते हैं। ईश्वर के प्रति अत्यभिन्नरित प्रेम और प्रपत्ति का संकेत उपनिषदों में अनेक श्लोकों पर हुआ है।⁴ यह आत्मा केवल उसी को वास्तविकतया अपना ज्ञान कराता है, जिस पर यह कृपा करता है, जिसे यह भुक्त लेता है।⁵ हमसे कृपा या अनुबहकारी भक्ति सिद्धान्त का उद्भव होता है। श्वेतश्वतरांशुनिषद् (६. २३) में अनुबह और प्रपत्ति (पूर्वाकारणशक्ति) पर जोर दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् (२. ७) तथा बृहदारण्यकोपनिषद् (५. ३. ३२) में इन्द्र को परमानन्द के रूप में वर्णित किया गया है जो भक्ति सिद्धान्त का पोषक है। महाभारत का नारायणीय अध्याय⁶ भक्ति सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा

१ गीतारहस्य—शांकरभाष्य लिखक। पृ० ४२०
 २ हिन्दी साहित्य : आचार्य इन्द्राणीप्रसाद द्विवेदी . पृ० १००
 ३ अ हि जः पिता वसो अं नत्वा रातत्रतो बभूविथ । अथाने सुम्ममीमहे । ऋग्वेद २२८-११
 ४ आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एव एवं पश्यन्नेवं मन्वान एव चिन्तानन्तात्परिः। अत्यक्रोड आत्मनिभुज आत्मानन्दः स स्वराद् भवति ।—तन्दोयोपनिषद् ७. २५. २
 अर्थान् 'यह स्व कुछ परमात्मा ही है: जो देना देकर, मानता और ममता है, वह परमात्मा में परम अनुभव, क्रोडा, उसके संशय का सुख तथा उसी में आनन्द का अनुभव करता हुआ स्वरूप (परमात्मस्वरूप) हो जाता है।' उपनिषद् के इस वाक्य में दर्शन, मन्त्र, ज्ञान आदि सामान्य आन्तरिक ज्ञान भक्ति के अंग हैं, यह दर्श ही है।
 ५ दमेवैव कृणुते नैव तन्मयः । कठोपनिषद् १. २. २३; मुख्योपनिषद् ६. २. ३
 ६ महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ६६-६७ (गी० प्र०)

ही भक्ति है।^१ यह भक्ति स्वयं फलरूपा है,^२ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह भक्ति प्रेमरूपा है। इस प्रेम का स्वरूप मूक पुत्र के आन्वयान के समान अनिर्वचनीय है।^३ किन्तु इस प्रेम का किञ्चित् आभास देने के लिए नारद ने उसका लक्षण बताया है कि यह प्रेम मुखरहित, कामनारहित, प्रतिश्लक्ष वर्धमान, परिच्छिन्न, और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर-मनुभव रूप है।^४ इस प्रकार इन तीन बंधों से भक्ति का सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन एवं सर्वोच्च महत्त्व प्रतिपादित है। शिन्तु वैष्णव भक्ति का जो विज्ञान रूप पुराणों में प्रकट हुआ वह भक्ति के चारम विकास का लोकोत्क है। पुराणों में भी वैष्णव भक्ति को चरमा-वस्था तक पहुँचाने का श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत महापुराण को है। यह निर्विवाह और निर्विकल्प रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति का प्रतिपादक श्रीमद्भागवत से अधिक सबम और आप्त-प्रमाणभूत अन्य कोई ग्रंथ भारतीय वाङ्मय में विकसित नहीं है। इसी को आधार मान कर मध्यकाल में अनेक वैष्णव आचार्यों ने भक्ति-संज्ञा पर प्रत्येक लक्ष्य एवं लक्ष्ये विनयी चर्चा आगे की जायगी। भक्ति विकास के इस संक्षिप्त विवेचन में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय के पूर्व ही इन आस्तिक धर्म ने 'नारायणीय', 'आत्मत', 'नैकान्तिक', 'भक्तवत' और 'पावरत्र' आदि अनेक नाम धारण कर लिए थे।^५

वैष्णव भक्ति का उपास्य तन्त्र विष्णु—'विष्णु' शब्द विष्णु व्याप्ती धातु (वैपाकगत सिद्धान्तकौमुदी, धातु पाठ, जुहोत्यादि मूल १२ वीं धातु) से बना है। 'विष्णु' सर्वव्यापी शक्ति को कहते हैं। इस अर्थ में विष्णु ब्रह्म का ही पर्याय ही जाता है। ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है किन्तु सर्वत्र ही विष्णु एक दिव्य, महान् और सर्वव्यापी शक्ति के रूप में गृहीत हुआ है।^६ वेद से ही विष्णु को हम ब्रह्म के साकार रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं तथा उसके पराक्रम पूर्ण कार्यकलापों का वर्णन पाते हैं। विष्णु के 'त्रिविक्रम' शब्द का बीज ऋग्वेद में मिलता है।^७ उपनिषत्काल में विष्णु की प्रविष्टि और बड़ी और विष्णु के धर्म को सर्वोच्च पद माना जाने लगा।^८ महाभारत में विष्णु को ब्रह्म का ही साकार रूप स्वीकार कर लिया गया है और अनुष्ठासनपूर्व में विष्णु की अथार महिमा 'विष्णुसहस्रनाम' के नाम से वर्णित है।^९ विष्णु की ही महाभारत में 'वासुदेव'

१ नारदस्तु तद्वर्षिनास्मिन्कारता तद्विदुस्तु परमव्याकुलविति । नारदसक्ति सूत्र २६
 २ स्वयं फलरूपवर्तिन ब्रह्मकुराराः नारद भक्ति सूत्र, १०
 ३ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् । मुक्तस्वादन वत् नारद भक्ति सूत्र ११, १२
 ४ मुखरहितं कामनारहितं प्रतिश्लक्षवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥ नारद भक्ति सूत्र १४
 ५ महाभागवत राशिनि पूर्व अध्याय ३३५ से ३४० तक (महाभारत अनुष्ठासन पूर्व के अन्तर्गत)
 ६ Aspects of Early Vishnuism by J. Gonda p. 3
 ७ इदं विष्णुविक्रमं वेधा सिद्धे षडम् । ऋग्वेद १, २०, १७
 ८ विज्ञानसारधिवस्तु मनः प्रमहान्तरः ।
 सोऽध्वनः परमान्मोनि तद्विष्णोः परमं उदम् । कठोपनिषद्, १, बल्ली, श्लोक ६
 ९ ॐ विश्वं विष्णुर्वैश्वंकारो भूतमध्यमवत्प्रभुः ।
 भूतकरभूतवृद्धाको भूतान्मा भूतमावतः ॥ विष्णुसहस्रनाम श्लोक १४

भी कहा गया है।^१ गीता में भी वासुदेव का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है और उसको ब्रह्म के समकक्ष ही माना गया है।^२ विष्णु की अनन्त महिमा का वर्णन करने के लिए विष्णु-पुराण की रचना हुई। विष्णु को साकार उपास्य के रूप में ग्रहण कर उसे हृदय के अति निकट लाने की अभिलाषा ने उसे नराकार प्रदान किया।^३ विष्णु ही नारायण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। सृष्टि-क्रम विवेचन में ऋग्वेद में नारायण का संकेत प्राप्त होता हुआ है।^४ सृष्टि-क्रम में नर के बल उत्पन्न हुआ वह 'नार' कहलाया और यह 'नार' (अल) शिखा, अयन (बावास) हुआ वह 'नारायण' कहलाया। नारायण शब्द की यह व्युत्पत्ति मनुस्मृति में भी प्राप्त होती है।^५ क्षीरसागरशायी नारायण को ही 'केशव' (के लने से होने के कारण) कहा गया और वह विष्णु के प्रमुख नामों में गृहीत हुआ।^६ गीता में श्रीकृष्ण ११ अर्ध अध्याय २२-२३ में 'केशव' नाम से सम्बोधित किया गया है।^७ श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ११ अध्याय २२-२३ में मत्स्य विकास देखते हैं जिसका संक्षिप्त विवेचन ऊपर किया गया है। श्रीकृष्ण का अनेक विभिन्न नामों से वैष्णव भक्ति में परम देवता, परम उपास्य, इष्टदेव के रूप में उपासना की जाती है। श्रीकृष्ण भी उत्तमतः वैष्णव भक्ति का उपास्य तत्त्व विष्णु ही है। श्रीकृष्ण की अनन्त महिमा का उद्बोध श्रीमद्भागवत महापुराण का चरम अंग है।

श्रीमद्भागवत एवं विष्णु तत्त्व—श्रीमद्भागवत में विष्णु को विराट् पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है और उसके स्थूल रूप को सावक के लिए धारणा का आशय बताया गया है।^१ मत्स्य भविष्यत् और वर्तमान समस्त जगत् जिस ब्रह्माण्ड में प्रतीत होता है वह ब्रह्माण्ड उस विष्णु का स्थूल विग्रह विशेष है। उसके चरणों के तनुए पाताल हैं। तानों से मांस-रस के प्राण सहस्र शीर्षा पुरुष का शिर मत्स्य लोक है। इन्द्रादि देवगण बाहु, दिग्गज, राज, राज भवलोन्द्रिय, अश्विनीकुमार नासास्त्रिद, मत्स्य धारोन्द्रिय, प्रज्वलित शरीर सुगन्ध, मत्स्य शरीर मन्तरिक्ष, अश्विन्द्रिय पूर्व, दोनों पलक रातदिन, भृकृष्टि विलास हस्तोत्थ, जगत् का धार विष्णु इस है। इस उसकी डार्डों, जगत्सोहिनी माया उसकी समुद्राद और कर्माद विशेष अनन्त सृष्टि है। प्रजापति ब्रह्मा उसकी जननेन्द्रिय, मित्रावरुण मत्स्योत्थ, मनुज कर्मा जीव पूर्वत समूह उसका अस्थि संघ है। नदियाँ उस विराट् पुरुष महाशक्ति की नदियाँ, इन्द्र रोमावली, प्रकृत वायु स्वास, कालगति और सुण प्रवाह कर्म

१. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः ।
२. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः ॥ श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ श्लोक १४.
३. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः । गीता ७-११
४. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः । श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ श्लोक १०-१०
५. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः । श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ श्लोक १०
६. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः । श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ श्लोक १०
७. श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ विधिवाक्यः । श्रीमद्भागवत ११ अध्याय २२-२३ श्लोक १०

है। नैमिषाश्रम उसका वेदान्तज्ञान, सम्पन्ना वरक, शब्दात् (मुक्तप्रकृति) हक, और बन्नाम वन है। महत्तत्त्व उसका चित्त, और सब उसका अन्तःकरण है।^१ श्रीमद्भागवत में विष्णु का ही सर्वोपरि महत्त्व है।^२ और विदेव (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) में ब्रह्म और सब को विष्णु का ही संस्पृष्ट माना गया है, क्योंकि विष्णु स्वयं परं पुरुष ब्रह्म हैं और सब को अस्पृष्ट ब्रह्म के ही होता है।^३ यह विष्णु ब्रह्म का परम कारण, ईश्वर, प्राणी, स्वयंप्रकाश और सेवाहित ब्रह्मा एवं स्रष्टा है। तत्र यन्मृतः एक हैः कार्यं भेद से उसके ब्रह्मा, विष्णु एवं स्रष्टा हीन बन हो गये हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपने संबंधों किन, पत्नि, पादादि से अपने से पृथक् बुद्धि नहीं रखता, उसी प्रकार उसकोना पुरुष ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु में पारंपर्य नहीं करता।^४ समस्त भूतों के अदिष्टप्रभ इस दुरारण्य विष्णु का परमपद प्राप्त कर लेना जीव का चरम पुरुषार्थ है।^५ विष्णु का यह लोक 'वंकुष्ठ' कहलाता है। यह लोक तब से परे सतत भास्वर है और इस लोक में पहुँच कर जीव को फिर उसपर चक में नहीं झूटना पड़ता।^६ यह धाम शोकरहित, नित्य ध्यानस्थ है।^७

१. पात्रवर्ततस्व हि पादभूतं

पठन्ति कार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।

महावर्तं विष्णुवोऽथ गुल्फो

तत्तत्तत्र वै पुरुषस्य वने ॥ श्रीमद्भाग० २, १, २६, आदि

विशेष श्रेयस्य—श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध प्रथम वचन परं पठ अर्थात् में सम्पूर्णतया ही विष्णु के विराट् रूप का वन ही ओजस्वी वर्णन है जिसे बटकर वेदोंक पुरुषमुक्त (महत्सत्त्वो) पुरुषः आदि / का तत्काल ध्यान आ जाता है।

२. वन्तिशम्बाव मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।

भूर्वासं शम्भुर्विष्णुं यतः शान्तिर्ब्रह्मोऽभवत् ॥ श्रीमद्भाग० १०, २६, १५

३. तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं

प्रचक्षुः श्रोतव्यान्मनि मुविभाष्यम् ।

स्वतेवसा त्वस्यगुणप्रसाहं

बन्धे विष्णुं कानिलं वेदगर्भम् ॥ श्रीमद्भाग० २, ३३, ८

४. महं ब्रह्म च सर्वैरेव वनतः कारयं परम् ।

आन्नेश्वर उपद्रष्टा स्वबहुमविशेषकः ॥ श्रीमद्भाग० ४, ७, १०

५. यथा पुमान् स्वनिषु शिरः शय्यादिषु क्वचिन् ।

पारक्यबुद्धिं कुरुते पवं भूतेषु मन्वरः ॥

ज्वायामेकमावाणां को न वरयति वै भिदात् ।

सर्वभूतान्मनां शक्यं त शान्तिमविमच्छति ॥ श्रीमद्भाग० ४, ७, ५२, ५४

६. सर्वभूतात्मभावेन भूतवासं हरिं भवान् ।

आराव्याथ दुरारण्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ श्रीमद्भाग० ४, ११, १२

७. जगो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम् ।

यत्र नारायणः सत्त्वान्मद्यतिनां परमस्थितिः ।

शान्तानां न्यस्तादृच्छानां यतो नावर्तते पुनः ॥ श्रीमद्भाग० १०, १८, २५, २६

८. तद्वै सर्वं भगवतः परमस्य पुंसो—

बद्धोति यद् विदुरज्जगद्वलं विदोमम् । श्रीमद्भाग० २, ७, १८

कहलाया।^१ यही नारायण स्वयंदासपति विष्णु है। नारायण ने अवतार लेकर त्रिलोकी के महान् कष्ट का हरण किया। अतः मनु ने उसका नाम 'हरि' रखा।^२ प्रणतभक्त की भाँति का हरण करने वाले कृपालु 'हरि' का नाम इस अर्थ में सूर मीरा आदि कृष्ण भक्त कवियों ने 'हरि तुम हूँ जन की भीर' आदि अनक गीतों में ग्रहण किया है। अमरकोष (शुकी कृती) में परिभाषित विष्णु के ३६ नामों^३ में से प्रायः सभी का प्रयोग श्रीमद्भागवत में हुआ है और 'वानुदेव' तथा 'कृष्ण' नाम भी 'विष्णु' या 'हरि' के पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त हुए हैं।^४ कृष्ण विष्णु का ही सत्त्वमय विग्रह है।^५

अवतारवाद—भारतवर्ष में सगुण भक्ति का आवार अवतारवाद है। यह सगुण भक्ति का प्रथम स्वरूप है। इसे हमारे आलोच्यकाल की भक्ति का सुगठित शरीर स्थिति के रूप में माना जा सकता है। भारतवर्ष में कब से उद्बुद्ध हुई, इस विषय में प्रामाणिक मतों के अभाव में कुछ ठोस प्रमाणों की कमी है। विद्वानों का मत है कि सम्भवतः यह धारणा वैदिक-काल के अन्त में ही उद्बुद्ध हुई होगी। पौराणिक-साहित्य में अवतारवाद प्रबल रूप से प्रकटित है। भारतवर्ष में अन्त-भारतवर्ष में अवतारवाद के प्रति गहरी आस्था पाई

- १. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- २. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०।
- ३. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ४. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ५. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ६. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ७. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ८. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ९. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १०. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- ११. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १२. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १३. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १४. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १५. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १६. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १७. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १८. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- १९. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।
- २०. श्रीमद्भागवत, अष्टमोऽध्यायः, श्लोक १०-११।

श्रीमद्भाग० २, १०, १०, ११
श्रीमद्भाग० ११, १५, १०

श्रीमद्भाग० २, ७, २

—अमरकोष, अथमकारण स्वर्गवर्ग श्लोक २५-४२

श्रीमद्भाग० ४, ३०, ३

श्रीमद्भाग० १२, २, २०

श्रीमद्भाग० १०, १२, २३

जाती है। लोग का आज भी ईद विश्वास है कि भगवान् देवता, मनुष्य कथना अन्त किसी प्राणी की आकृति धारण कर जीवों का पालन और उद्धार करते हैं।^१ गीता के अनुसार अवतार का प्रयोजन साधुओं का परिपाल, पापियों का विनाश और धर्म की स्थापना है। महाभारत में दो स्थलों पर अवतारों का वर्णन है। एक स्थान पर छै और दूसरे स्थान पर दस अवतारों का उल्लेख है। वे हैं—(१) वराह, (२) वृषिह, (३) वामन, (४) परशुराम, (५) दशरथ राम, (६) बामुदेवकृष्ण, (७) हंस, (८) कूर्म, (९) मत्स्य और (१०) कल्कि महाभारत के जिस अंश में अन्तिम बार अवतारों का उल्लेख है उसे कुछ लोग प्रकृत अनुमान करते हैं।^२ किन्तु सभी पुराणों में विष्णु के दस अवतारों और उनके चरितों का वर्णन है। वर्तमान काल में विष्णु के इन दस अवतारों की मान्यता है— (१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) वृषिह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) रामचन्द्र, (८) कृष्ण, (९) बुद्ध और (१०) कल्कि। मध्यकाल में इन दस अवतारों की महिमा और चरितगान का बड़ा प्रचार रहा है। राजस्थान में आज भी लीकर्मियों के छम में वामनादि अवतारों के चरित गाए गाते हैं। जिन्हें इन प्रत्तियों के लेखक ने स्वयं सुना है। जयदेव (११वीं शताब्दी) ने अपने 'श्रीतयोविन्द' में सुन्दर गीतियों में दशावतारचरित काया है।^३ पृथ्वीराजरासो में भी 'दशम' नाम से दशावतारचरित का गान है। नवीं दशवीं शताब्दी के बाद से 'दशावतारचरित' नाम से भारत में विपुल स्तोत्र और काव्य साहित्य की रचना हुई है।^४ मध्यकाल के प्रायः सभी धर्म सम्प्रदायों में अवतारों की मान्यता है।

श्रीमद्भागवत में अवतार-विवेचन वैसे तो सभी पुराणों में भगवान् के अवतारों का वर्णन हुआ है किन्तु श्रीमद्भागवत में अवतार विवेचन विशेष वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से किया गया है। इसमें सभी प्राचीन परम्पराओं का सामंजस्य है। श्रीमद्भागवत में अवतारों के तीन भेद किये गये हैं। (१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार और (३) लीलावतार। पुरुषावतारों में संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिहङ्ग हैं।^५ बामुदेव—
 आहुताय नमः अवतारो ह्ये। यह बामुदेव है जिसका विवेचन हमने आर पुरुष रूप से किया है। गुणावतारों में बृष्ण, बह्म और हनु है, जो अतएव ब्रह्म के अन्त रस, अन्त तन्मयता से युक्त है। प्रद्युम्न अवतारों में अन्त में अन्त और हनु अन्त के अन्त में है।

१. मत्स्य पुराण में अवतारों का वर्णन है।
 २. महाभारत, पुराणों में अवतारों का वर्णन है।
 ३. जयदेव की 'श्रीतयोविन्द' में अवतारों का वर्णन है।
 ४. पृथ्वीराजरासो में अवतारों का वर्णन है।
 ५. श्रीमद्भागवत में अवतारों का वर्णन है।

काना है। नारायण क रजोगुणाद्य से ब्रह्मा, अस्वका से विष्णु और ललायुगास से सर्व सहायक रुद्र उत्पन्न होते हैं। यही गुणावतार हैं।^१ इस मूची के कुछ अवतारों को 'कमल-वतार' भी कहा गया है।^२ लीलावतारों में सभी मुचियों के सभी अवतारों का उल्लेख है। चतुर्थे मूची के अन्तर्गत गजराज का उद्धार करने वाले 'हृदि' की भी यदि हम विष्णु का पृथक् अवतार मानें तो लीलावतारों की सङ्ख्या सत्रह हो जाती है जिनका क्रम यह है—
 (१) नर-नारायण, (२) हंस, (३) दत्तात्रेय, (४) सप्तकादि, (५) ऋषभ, (६) तदप्रीत्य, (७) मत्स्य, (८) वराह, (९) कूर्म, (१०) हृदि, (११) रुद्रमह, (१२) बामन, (१३) परशुराम, (१४) राम, (१५) कृष्ण, (१६) बुद्ध धार (१७) कल्कि।

अवतार प्रयोजन - श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतार के अनेक हेतु बताये गये हैं। शीतोक्त 'परिवाराय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतान्' आदि कारकों का समर्थन तो श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर है ही^३ इसके अतिरिक्त ही भगवान् के अवतार के निम्नलिखित प्रयोजन बताए गये हैं—

१. केवल लीला विस्तार^४।
२. देव कार्य सम्पादन^५।

१ श्रीमद्भाग० ११. ४. ३५

२ " ११. ४. १७

३ कौर्मे धृतोऽदिरमृतोन्मथने रज्जुच्छे

माहात्म्यपन्थगिराजमनुज्ज्वान् ॥

श्रीमद्भाग० ११. ४. १८

४ क—अप्यथ विष्णोर्मितुजत्वमोयुधे नारावताराय तुवां निवेच्छया । श्रीमद्भाग० १०. ३८. १०

क—भूमेभारिवताराय दोऽवतीर्थो यदोः कुते ॥

" १०. ४३. २८

ग—एतदर्थं हि नौ जन्म माधुनासोऽहं शर्मकृत् ।

" १०. ६०. १६

घ—एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभागहरखाय मे ।

संरक्षाय साधूनां कृतोऽन्वेषां वधाद च ॥

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संश्रियते मया ।

विरामायान्धर्मस्य काले प्रमदतः क्वचित् ॥

श्रीमद्भाग० १०. ६७. १०

ङ—तथावतारोऽयमकुच्छठ धामन् धर्मस्य सुध्वै जगतो नवाय ॥

" १०. ६३. ३६

च—लोकं सवाभ्रसदिनः कथंवावतीर्थः ।

सद्रक्षायाम् खलविभङ्गाय चान्यः ॥

श्रीमद्भाग० १०. ६९. ३०

छ—भूभाराद्धरराजन्वहन्तवे गुणवे सत्तान् ।

अवतीर्थस्य निर्वृत्तौ यदोः लोके विन्ध्यने ॥

श्रीमद्भाग० ११. ६. ३०

ज—जन्मैतत्ते भारहाराय सुमेः ।

" १०. ६३. ०३

और भी द्रष्टव्य— श्रीमद्भाग० १०. ८४. १८

" १०. ८५. १८

" १०. ८५. ३०

" ११. ४. २२

५ क्रीडार्थस्यदक्षोत्तमनुष्यविमहं नतोऽस्मि पुन्यं यदुहृषिकसात्वताम् ॥ श्रीमद्भाग० १०. ३७. २३

६ मया निष्पादितं सत्र देवकार्यमस्येवमः ।

तदर्थमवतीर्थोऽहंश्रीमंश्रीन ब्रह्मत्यादिभिः ॥ श्रीमद्भाग० ११. ७. २ तथा १०. ४६. २३, १०. ३८. १३

३—प्रासियों को मोड़वाना ।

४—भक्तों पर अनुग्रह ।

५—भक्तों के प्रति संतोषित्व ।

भक्ति-साधन में स्थित मनुष्य-वर्ण, लक्षणग्रह आदि भगवदवतार कारण तो शोचनीय ही नहीं, बल्कि अस्मिता-साधन ही अनुग्रह का भक्तों पर अनुग्रह करके अवतार द्वारा स्वयं भक्ति-साधन ही का ही अन्त उपलब्ध माना गया । मधुरा भक्ति के पथिकों ने ही भक्तों के प्रति संतोषित्व के अन्त उपलब्ध माना गया । मधुरा भक्ति के पथिकों ने ही भक्तों के प्रति संतोषित्व के अन्त उपलब्ध माना गया ।

भक्तोऽप्यनुग्रहोऽयम् । भक्तोऽप्यनुग्रहोऽयम् ।

भक्तोऽप्यनुग्रहोऽयम् । भक्तोऽप्यनुग्रहोऽयम् ।

इस प्रकार भक्तों के प्रति संतोषित्व का अर्थ है कि "परवर्ती काल में दुष्ट दमन आदि की अवतार के अवतार का अनुग्रह ही ही माना गया है," समीचीन है । भक्ति-साधन में स्थित मनुष्य-वर्ण, लक्षणग्रह आदि भगवदवतार कारण तो शोचनीय ही नहीं, बल्कि अस्मिता-साधन ही अनुग्रह का भक्तों पर अनुग्रह करके अवतार द्वारा स्वयं भक्ति-साधन ही का ही अन्त उपलब्ध माना गया । मधुरा भक्ति के पथिकों ने ही भक्तों के प्रति संतोषित्व के अन्त उपलब्ध माना गया । मधुरा भक्ति के पथिकों ने ही भक्तों के प्रति संतोषित्व के अन्त उपलब्ध माना गया ।

- १. श्रीमद्भागवत १०. १०. १६ तथा १०. ७०. ३२
- २. श्रीमद्भागवत १०. ११. २३
- ३. श्रीमद्भागवत १०. १२. १७
- ४. श्रीमद्भागवत १०. १३. १७
- ५. श्रीमद्भागवत १०. १४. १७
- ६. श्रीमद्भागवत १०. १५. १७
- ७. श्रीमद्भागवत १०. १६. १७
- ८. श्रीमद्भागवत १०. १७. १७
- ९. श्रीमद्भागवत १०. १८. १७
- १०. श्रीमद्भागवत १०. १९. १७
- ११. श्रीमद्भागवत १०. २०. १७
- १२. श्रीमद्भागवत १०. २१. १७
- १३. श्रीमद्भागवत १०. २२. १७
- १४. श्रीमद्भागवत १०. २३. १७
- १५. श्रीमद्भागवत १०. २४. १७
- १६. श्रीमद्भागवत १०. २५. १७
- १७. श्रीमद्भागवत १०. २६. १७
- १८. श्रीमद्भागवत १०. २७. १७
- १९. श्रीमद्भागवत १०. २८. १७
- २०. श्रीमद्भागवत १०. २९. १७
- २१. श्रीमद्भागवत १०. ३०. १७

श्रीमद्भागवत १०. ३१. २०

वासुदेवादि चतुर्व्यूह—श्रीमद्भागवत में विष्णुतन्त्र की चतुर्व्यूह रूप से दार्शनिक व्याख्या भी की गई है। वासुदेव तो विद्युत् ज्ञानस्वरूप अद्वितीय, व्यापक, प्रखरान्त परमार्थ सत्य है। भक्तिशास्त्र में उस 'वासुदेव' को 'भगवान्' कहते हैं।^१ एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि तत्त्वगुणामय स्वच्छ चित्त जो महत्तन्त्रात्मक है, 'वासुदेव' कहलाता है। अध्यात्म में जिसे 'चित्त' कहते हैं, अधिभूत में उर्मा को महत्तन्त्र कहा जाता है। चित्त में उपास्यदेव 'वासुदेव' और अधिष्ठाना 'अनिरुद्ध' होता है। जब मत्सन्ध में विकार होता है तो उससे क्रियाविक्रमय वैकारिक, तन्म और नामस—तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है। इस त्रिविध अहंकार से ही क्रमशः मन, इन्द्रिय और पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इन भूतेन्द्रियमनोमय अहंकार को 'संकर्यण' कहते हैं।^२ महत्काम से उपास्य देवता मकर्यण है और अधिष्ठाना ह्रद है। जैसा कि अभी कहा जा चुका है वैकारिक अहंकार से 'मन' की उत्पत्ति होती है जो संकल्प विकल्पात्मक है और कामनाओं—काम (प्रवृत्त) का जनक है। यह मनस्तन्त्र इन्द्रियों का अधिष्ठाना 'अनिरुद्ध' नाम से प्रसिद्ध है।^३ बुद्धि में उपास्य देव 'प्रवृत्त तथा अधिष्ठाना कहा है और मन में उपास्यदेव 'अनिरुद्ध' तथा अधिष्ठाना चन्द्रमा है।

वस्तुतः यह चतुर्व्यूह रूप परम पुरुष एक विष्णु ही है। वही विद्व, ज्ञेयस, प्राज्ञ एवं तुरीय—इन चार वृत्तियों द्वारा क्रमशः अर्थ (बाह्य विषय) इन्द्रिय (मन) आक्षय (विषय एवं मन—दोनों के संस्कार से युक्त अज्ञान) और ज्ञान (साक्षी) रूप से भावित होता है।^४ जब ब्रह्म चतुर्व्यूह विष्णु रूप में साकार होता है तब वह बरणादि शंभ, शरणादि उपांग, सुदर्शनादि आयुज एवं कौन्तुभादि आभूषण धारण करता है।^५ पांचनात्र तव

१ मानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं स्ववद्विषयं सत्यम् ।

प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दभेदं च वासुदेव इत्यर्थो वदन्ति । श्रीमद्भाग० ५, ११, ११

२ दत्तस्तत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ।

यदाहुर्वानुदेवाख्यं चित्तं तन्मत्तदात्मकम् ॥

महत्तन्त्रादिकुर्वाणोऽहं भगवद्बोधैस्सम्भवात् ।

क्रियाशक्तिरहंकारत्रिविधः समपद्यते ॥

वैकारिकसौत्रसत्त्व नामसत्त्व इतो मयः ।

मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां सत्तामपि ।

सहस्राक्षरसं साक्षात्तमननं प्रचक्षते ।

सकर्यखाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥

श्रीमद्भाग० ३, १६, १०१, १२, २७, २६

३ वैकारिकादिकुर्वाण्यन्मसस्तन्मत्तदात्मनः ।

दत्तसंकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥

बद्धिदुर्ध्वं निरुद्धाख्यं हृषीकाद्यानर्थाश्रयम् ।

श्रीमद्भाग० ३, २६, २७, २८

४ वासुदेवः संकर्यणः प्रवृत्तः पुरुषः स्वकम् ।

अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥

स विश्वसौत्रमः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।

अर्थेन्द्रियास्यज्ञानैर्भगवान्परिभाष्यते ॥

श्रीमद्भाग० १२, ११, २१, २२

५ अंगोपान्नायुधाकर्यैर्भेयवांस्तत्त्वगुणध्वजम् ।

विभर्तैस्म चतुर्भूतिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥

श्रीमद्भाग० १२, ११, २३

इस रूप की सामान्य विशेषताएँ ये हैं —

- १—सर्वदा स्मितसुकुल प्रसन्न मुद्रामण्डल ।
- २—कमलवदन के समान अरुणाम विद्यमान नेत्र ।
- ३—स्निग्ध, स्वच्छ, कुञ्चित अलकावली ।
- ४—उदार लीलाङ्गमय मृकृति चिन्ताम ।
- ५—नीलकमलवदनवदन अथवा सञ्जल जलवदन स्थाययगुं ।
- ६—सन्त कपोर अथवा नाकरुद्र ।
- ७—कौशेय पीतान्धरवारी ।
- ८—कौस्तुभमणिक एवं वनमालावारी ।
- ९—अति कान्तियुक्त किरीट-मृकृद-केयल-कृष्णनादि आभूषणधारी ।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप

विष्णुतत्त्व एवं अवतारवाद के उपर्युक्त विवेचन से हम हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विष्णु का निराकार वरुण को ही भक्तों ने अपनी तीव्र उच्छ्वास में उपासनाार्थ तदुक्त वाकार रूप में देखा । अवतारों में भी वरुण के समान और वृष्णावतारों की भावतत्त्व में सर्वाधिक प्रसुलता है । इनके प्राधान्य का कारण इनकी भुवनमोहिनी अगमित लीलाएँ हैं । इस दोनों अवतारों में भी श्रीकृष्ण तो अपनी नीलामायुरी के कारण 'नीलामयुरोत्तम' ही कहे जाते हैं । वैसे तो यह नीलामयुरोत्तम श्रीकृष्ण सभी हिन्दी भक्त-कवियों का परम आराध्य है किन्तु श्री कलदाचर्य के पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के नीलाधरुण का विशेष महत्त्व है ।^१ इसी से इस सम्प्रदाय में दीक्षित-अष्टावक्र के कवियों ने नीला पुरोत्तम कृष्ण को ही अपना परम उपास्य माना । अतः हमें यह जानना आवश्यक है कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप क्या है । प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण के दो रूप मिलते हैं—(१) यदुकुल श्रेष्ठ दुष्ट-निहन्ता पोंडा, श्रीकृष्ण उषा (२) 'शोषण', 'शोषण', 'शोषण' 'राधाधर-दुष्पापानशालि वनमाली श्रीकृष्ण' । महाभारत, त्रिबिध एवं विष्णु पुराण में प्रमुखतया श्रीकृष्ण के प्रथम रूप का प्राधान्य है । श्रीकृष्ण का दूसरा 'शोषणकृष्ण' रूप अर्थात् कृत नदीन है । इस रूप का प्राचीनतम उल्लेख विद्वान् लाल बौद्ध कवि धरदत्ता की रचितियों में मानते हैं ।^२ महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में विष्णु (अर्थात् श्रीकृष्ण) के 'शोषण' का उल्लेख किया है ।^३ श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के उभय रूपों का अत्यन्त सुन्दर मानवन्द्य घटित किया गया है । जहाँ वह दुष्टहन्ता महाम् पोंडा और वहाँ वहाँ

१ तमसि हृदये शोके लीलाजीराजिभशाधिनम् ।
 लक्ष्मीसहस्रगीताभिः नेत्र्यमन्तं कलाविधिम् । शोषणार्थः, मंगलानन्द्य, श्लोक २

२ लयातानि कर्माणि च यानि शनैः शशादयस्सम्भवसा यदुक्तः ।
 —उदयुत- ८।० इजारीप्रसाद शिवेरी, अन्वयार्थान्तरं वर्तते साधना पृ० ११८

३ केन यदासं बहुरतिपरां काण्डिभाषन्त्यनेने ।
 बहोषेव सुदित्तवदिना शोषणैरन विष्णोः । मेघदूत, पूर्वोक्त श्लोक १५

४ कंसः लक्ष्मणोऽपीतो दग्धे पात्वाग्निः शिवा ।
 नरासिंहः सप्तशतसंयुक्तान्किरयो रतः ॥ श्रीमद्भाग० १०. १०. २२

स्वर्गों पर प्रतिपादित हान क कारण श्रीकृष्ण भी परब्रह्म ही माने गये हैं। ब्रह्म को भक्तिसाक्षर म भगवान् कहा जाता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्^२ हैं। श्रीमद्भागवत म श्रीकृष्ण का अनिवचनय महिमा और उनके परब्रह्मत्व क प्रतिपादन म जा कुछ कहा गया है उसका साक्षरतम सार भा प्रस्तुत करना यहा शक्य नहीं है कवल दिङ्मात्र दर्शन के रूप में ही भगवान् के परब्रह्मत्व का सारांश यह है —

श्रीकृष्ण प्रकृति के पर प्रकृति नियामक, साक्षात् ईश्वर है। वह अपनी चिच्छक्ति म प्रकृति के नियामक रूप अर्थात् कैवल्यरूप में स्थित है।^३ कृष्ण, वासुदेव, देवकीपुत्र, ललाटे कृष्ण, गोविन्द और नामों से उसी परब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम किया जाता है। परब्रह्मत्व प्राप्त करने की प्रणाली है किन्तु ऋषि मनुष्य, तिर्यक्, जलचरादि योनियों में जन्म के म और प्रकृति के अनुकूल आचरण करना उसकी लीलासाध है। वह काल-काल परब्रह्मत्व प्राप्त कर लेता है। वह आत्माराम है किन्तु भक्तों की कीर्ति-कौमुदी विशेषता के लिए उस अजन्मा ने यदुकुल में जन्म लिया। भक्तियोग की स्थापना करने की उपाय यथाः^४ शक्त-पराधीन होने के कारण भगवान् कृष्ण को पुत्र, भिन्न, गौरी भक्तों के और शारथि तक बनना पड़ा। वस्तुतः तो वह समदर्शी, अद्वितीय परमात्म है, पर वह शक्तिपथ सारथ्य है जो लोको को विमोहित करता हुआ गूढ़ रूप में अज्ञान का म विभ्रम कर रहा है।^५ परम प्रेमविह्वलः शक्त गोपियों के साथ उस शोभनमय परमात्मा को साकारण प्राकृत पुरुष के समान भी रमना करना पड़ा है।^६ किन्तु वह भी गोपियों एवं शोको को श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व का निरन्तर ध्यान करने के लिए निरन्तर माहात्म्यकाम रहता है। अन्यथा श्रीकृष्ण को भगवान् के रूप में एक दिन उसके प्रति अपना हृष्य गोपियों का प्रेम जा र के प्रति किये गये प्रेम के समान

| | |
|-----------------------------|--------------------------|
| १. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीकृष्णभाग० १०. २६. ४२ |
| २. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ३. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ४. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ५. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ६. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ७. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ८. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ९. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १०. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ११. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १२. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १३. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १४. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १५. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १६. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १७. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १८. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| १९. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २०. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २१. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २२. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २३. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २४. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २५. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २६. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २७. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २८. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| २९. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |
| ३०. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४२ | श्रीमद्भाग० १०. २६. ४२ |

अपवित्र होता ।^१ इस प्रकार उक्त प्रमाणाँ के आधार पर हम निर्विकल्प रूप से कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व अथवा भगवता की स्पष्ट स्वीकृति है और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का यही परमदेवत्व स्वरूप यहीन हुआ है । इसी परमदेवत्व श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति का श्रीमद्भागवत के प्रतिपद में प्रतिपादन है । इस भक्ति की श्रीमद्भागवत में जो माहात्म्य स्वीकृति है उसकी चर्चा हज़ार प्रारम्भ में संक्षेप में कर चुके हैं । यहाँ हम भागवतोक्त भक्ति के विविध पक्षों पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक समझते हैं क्योंकि यह विविधरूप भक्ति ही हिन्दो कृष्ण-भक्ति-साहित्य की प्राण-शक्ति है ।

भक्ति का माहात्म्य—श्रीकृष्ण से निष्काम और व्यवहिनारिणी भक्ति ही मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है । भक्ति से वैराग्य और श्रुत नकारदि से रहित विशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि होती है । यदि मनुष्य अनुष्ठित धर्म भगवद्भक्ति उत्कण्ठ व करे तो केवल श्रममात्र ही है । धर्म की चरम सिद्धि तो भक्ति द्वारा मगवान् की गृह्य करना ही है ।^२ भक्तियोग से ही भगवत्त्व का ज्ञान होता है, उक्त ज्ञान से जीव की हृदय-श्रैयि (प्रहृकार) क्षुब्ध जाती है, संशय छिन्न हो जाते हैं और समस्त क्षुमाशुभ कर्मों का नश हो जाता है । इन्हींलिए मनीषी जन भक्तियोग ही ग्रहण करते हैं ।^३ भक्ति की पावनकारिणी शक्ति की

१ न क्तु गोविकानन्दो भवार् अखिलदेहिनामन्तरात्महृक् ।

विस्मयार्थितो विश्वगुणवे सख उदेविधान्साधता कुल ।

श्रीमद्भाग० ५०. ३३. ५

तथा—ते त्वीत्सुखविधो राबन् मत्वा गोपास्तमश्वरम् ।

अपि नः स्वमति मृदुमासुभास्वदधीयवः ॥

श्रीमद्भाग० १०. २१. १२

नारद भक्तियुक्त में भी रोषियों की भक्ति के लिये में कहा गया है—

यथा नृजयोपिक्रानाम् ॥ तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविरुद्धपवावः ॥

उद्दिहीनं जगत्सामिव ॥ नारदभक्तियुक्त, सूत्र २१, २२, २३

२ ध्यावानेव लोकेशरिमन्नुंसां धर्मः परः स्तुतः ।

भक्तियोगो भगवति तन्नामप्रदशादिभिः ॥

श्रीमद्भाग० ५. ४. २२

स वै पुंसां परोधर्मो बलो भक्तिरभोजने ।

अहैतुकप्रतिष्ठता मयात्मा संप्रसीदति ।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयन्वाशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥

धर्मः स्वनुष्ठितपुंसां विष्णुस्तेन कथाशु वः ।

नात्पादवेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

x x x

स्वतुष्टितस्य धर्मस्य संनिद्धिर्हरितोषखम् ॥

श्रीमद्भाग० १. २. ३. ७, ८, १३

तन्कर्म हरितोषं वत्सा विद्या तन्मतिर्दयाः ।

श्रीमद्भाग० ४. २१. ५४

३ श्रीमद्भाग० १. २. २०

मिथी इदम अक्षिप्रकृष्टन्ते सर्वतंशवाः ।

सोयन्ते चरस्य कर्माणि वृष्ट ध्यातमनीश्वरे ॥

अतो वै क्वचो नित्यं भक्तिं परममा सुदाः ।

वासुदेवे भगवति कुर्वन्ध्यात्मप्रसादिनीम् ॥

श्रीमद्भाग० १. १. २२

करते ।^१ भगवान् को अनन्यभाव से भजे ! उसके नामों का स्कीर्तन करे ! विषय में सब को भगवत्स्वरूप समझकर उन्हें प्रशान्त करे ! उसे जन्म, कर्म, बर्ण, जात्यम शक्यता ज्ञानि के कारण देह में गहंभाव नहीं होना चाहिये ।^२ धन, अनित्य गृह, पृथु, कुटुम्ब, पशु आदि भौतिक पदार्थों में उसे आगमक नहीं होना चाहिये । तत्पश्चात् पुनः की शरण्य लेकर उसमें श्रेय का उपदेश ग्रहण करे । मन को सब दोग से प्रमत्त कर गृह, स्त्री, पुत्रादि को भगवत्-वर्षण कर साधु-संग, ममत्त प्रारिणो के प्रति यथोचित दया, भ्रष्टी एवं धितय, शौच, तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, मरजना, ब्रह्मचर्यं, एकाग्र नेत्रन यथा साधु संन्यास, आश्रमों में श्रद्धा, निन्दा स्तुति से गृधक रहना सत्य भाषण एवं साधु सेवा पूर्वक भगवद्गुरुआनुवाद का गायन करते रहना, भागवतधर्म के सामान्य लक्षण है । इस प्रकार साधन भक्ति (वैधी-भक्ति) का आचरण करते-करते साधक को साध्य-भक्ति (प्रेमा-भक्ति) प्राप्त हो जाती है ।^३

भक्ति के भेद—कन्तुतः एक होकर भी अविचार और प्रायभेद से भक्ति के अनेक भेद हो जाते हैं ।^४ नारदभक्तिश्रुत में कहा गया है कि एक ही प्रेमरूपाभक्ति कुछ महात्म्याभक्ति आदि भेदों में विग्रह प्रकार की हो जाती है ।^५ श्रीमद्भागवत में भी अनेक भेदोपभेदों द्वारा भक्तितत्त्व का सर्वांगीण निरूपण किया गया है । कही उसे निर्गुणभक्ति त्रिविधा (मात्वरु, राजस, तामस) भक्ति चतुर्विधाः भक्ति, पंचविधा भक्ति, षड्विधा भक्ति और कही नवधा भक्ति के रूप में विभक्त किया गया है ।

तामस-भक्ति हिंसा, दम्भ और सर्वाङ्गी भाव रखकर भगवद्भक्ति करना तामस भक्ति है । इसमें भी हिंसा से प्रेरित अधम तामस, दम्भ से प्रेरित मध्यम तामस तथा स्पर्धा से प्रेरित उत्तम तामस भक्ति है ।^६

राजस-भक्ति—विषयों की लालसा, यश अथवा ऐश्वर्य के लिए प्रतिमा आदि में

- १ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वातुष्टान्त्वभावात् ।
श्रोति यथत्मकज्ञं परस्मै चारायसावेति समर्पयेत्तद् ॥ श्रीमद्भाग० ११. २. २६
- २ न यस्व जन्मकामाभ्यां न वक्ष्याथमजातिभिः ।
सञ्जतेऽतिमन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ श्रीमद्भाग० ११. २. ५१
- ३ (क) श्रीमद्भागवत ११. ३. १८-२१
(ख) श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मपुण्यानां च तदर्थेऽस्मिन्वेष्टितम् ।
X X X X
स्मरन्तः स्मारकतश्च मिथोऽवैषहरं हरिम् ।
भक्त्या संजातया भक्त्या विभ्रत्युत्पुलकं क्तुम् ॥ श्रीमद्भाग० ११. ३. २६, २७
- ४ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्वाभिनि भाव्यते ।
स्वभावशुद्धमार्गेश्च बुभुंसां भावो विभिद्यते ॥ श्रीमद्भाग० २. १२. ७
- ५ गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्मन्यासक्ति, आत्मनिवेशनासक्ति, तन्मनासक्ति, परमगिरिहामक्तिरूपा वक्रधाप्येकादशावा भवति ॥
—नारदभक्ति सूत्र, १२
- ६ अमित्काय को हिंसां दम्भं मानसबैभवं वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मति कुर्वाणस तामसः ॥ श्रीमद्भाग० ३. २२. ८

सात्त्विकभक्ति वाग्लयाथ कर्मों का भगवदपराध करने के लिए अथवा 'यजनकरे यजन करता कनव्य हे ।' सात्त्विकभक्ति का पालन करने के लिए ही भेदभाव से की गई भक्ति सात्त्विक भक्ति है । सात्त्विक भक्ति में श्रमिया नहीं होता ।^२

निर्गुण भक्ति—यद्यपि यह शब्द कुछ वैचित्र्य लिए हुए है, तथापि भक्ति का विशुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए भागवतकार ने इसका प्रयोग किया है । निर्गुणभक्ति द्वारा भक्त सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणों से अनीत हो जाता है । निर्गुणभक्ति का लक्षण है—भगवान् में अकारण अनन्य भक्ति होना, भगवद्गुणश्रवण मात्र से मन का अविच्छिन्न सति से भगवदनुत्क हो जाना । निर्गुण भक्त कँवल्य मोक्ष भी ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता । यह निर्गुण भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है ।^३ श्री बल्लभाचार्य ने अपने 'सुप्रदाय' में इसी निर्गुण भक्ति पर जोर दिया है । इस भक्ति का प्रवाह बहुत ही तीव्र होता है ।^४ भक्त जब अपने अन्तःकरण में भगवान् का ध्यान करता है तब भगवान् 'मम पर कृतग्रह करते हैं प्रीति' वह लौकिक वैदिक कर्मों में आसक्त अपनी बुद्धि को भगवद-संस्कार की ओर ले जाता है ।^५

ऐकान्तिक भक्ति—अनन्य भक्ति ही ऐकान्तिक भक्ति है । श्रीमद्भगवद्गीता में भक्त स्वयं पर इसका उल्लेख हुआ है :^६ भगवान् के अतिरिक्त न तो किसी अन्य देवता

- १. विश्वस्य भक्तिः श्रेयः परमं श्रेयसैव वा ।
अर्थादात्मैवेत्येवं सा श्रेयसायः स राजसः ॥ श्रीमद्भाग० ३, २६, ६.
- २. अर्चितात्तु दिव्य परस्मिन्वा तदर्थं ह्यसु ।
अपि ह्यतु यन्मिदं वा श्रेयसुभावाः स सात्त्विकः ॥ श्रीमद्भाग० ३, २६, १०.
- ३. भगवत्प्राप्तियोगेन सति सर्वगुणशून्ये ।
मनो-विनिवृत्तितया यथा संवत्सरोऽन्तरी ॥
तत्कर्म भक्तियोगस्य निर्गुणस्य क्व राह्वतम् ।
अहैतुमयमभक्तिः सा भक्तिः दुर्गमोत्तमे ॥
स एव भक्तियोगस्य सात्त्विकः उदाहरः ।
येनानिबन्धे निर्गुणे भगवत्प्राप्त्युपायः ॥ श्रीमद्भाग० ३, २६, ११, १४.
- ४. सर्वदेवभक्तानां सर्वं तेषां भक्त्युदाहरः ।
कुरु भगवद्भक्तिं भगवत्प्राप्त्युपायः ।
स कुरुते सर्वं लोकं वेदे च परिनिष्ठितम् । श्रीमद्भाग० ४, २६, ४६.
- ५. यो यो भक्तो भगवत्कुरुते भक्तिर्विशुध्यते ।
स एव भक्तियोगस्य सात्त्विकः उदाहरः । गीता ७, १७.
- ६. तस्यैव भक्तिः सर्वं श्रेयसुभावा योनिः ।
स एव भक्तियोगस्य सात्त्विकः उदाहरः । गीता ८, १४.
- ७. तस्यैव भक्तिः सर्वं श्रेयसुभावा योनिः ।
स एव भक्तियोगस्य सात्त्विकः उदाहरः । गीता ९, २२, २३.
- ८. तस्यैव भक्तिः सर्वं श्रेयसुभावा योनिः ।
स एव भक्तियोगस्य सात्त्विकः उदाहरः । गीता १०, ६६.

आदि का आशय नैसा और न किसी बाह्य किय-भोग को इच्छा करना समन्वय भक्ति है। नारदभक्तिसूत्र में भी अन्वयाश्रय के त्याग का विधान बताकर गैरकालिक भक्ति की मुख्यता स्वीकार की गई है।^१ श्रीमद्भागवत में अनन्य भक्ति कथना एकान्त भक्ति को महामुक्तों के लिए भी दुष्प्राप्य बताकर उसके द्वारा केवल भगवत्प्रति ही परमप्राप्य मानी गई है बाह्य विषय नहीं।^२

पंचविधा भक्ति—जीव को किसी न किसी भाव द्वारा भगवान् में अपने विम हो जमा देना चाहिये। जीव-कीट की सीमा से बाहर होने के कारण वह काम, कंठ, अंग, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, भय आदि बाधों से निरन्तर बंधा हुआ है उनसे पीड़ा झुकाव उसके लिए नरत कार्य नहीं है। तब उसे क्या करना चाहिये? साधुमुक्त होने के लिए उसे अपने समग्र मनोविकारों को भी भगवान् की ओर मोड़ देना चाहिये। भक्ति छात्रों में ऐसा विधान है।^३

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवान् में मन लगाने के पाँच उपाय हैं। उन पाँचों उपायों में से किसी के भी द्वारा तबमें ऐसा मन लगादे कि तबमें कुछ-कुछ भी दिखाई न दे। वे पाँच उपाय हैं—(१) मुट्ठ वैर, (२) मुट्ठ राग, (३) भय, (४) स्नेह और (५) काम।^४ मुट्ठ वैरानुबन्ध से मनुष्य भगवान् में जितना तन्मय होता है उतना मुट्ठ राग से भी नहीं होता। उदाहरणतया मृङ्गी कीट अब किसी अन्य कीट को पकड़ कर बीवार पर बनाये हुए अपने छिद्र में बन्द कर देता है तो वह बन्द कीट भय और उद्वेग के कारण प्रतिकूल मृङ्गी कीट का स्मरण करते-करते तद्रूप हो जाता है। इसी प्रकार राम भगवा कृष्ण में निरन्तर वैरानुबन्ध रखने के कारण रावण, शिशुपाल, दन्तवक्र आदि तन्मय भक्त हो गये थे और इस प्रकार निष्प्राय होकर उन्होंने साकुन्ध मुक्ति प्राप्त की।^५ उपर्युक्त पाँचों उपाय अनुभूत भी हैं। मुट्ठ वैर से रावण, शिशुपालादि ने, मुट्ठ राग (भोग भक्ति) से नास्दादि मुनि जनों ने, भय से कंस ने, स्नेह से दुविष्टिद अर्जुनादि पाण्डवों ने और काम से गोपियों ने भगवत्स्वरूप की उपलब्धि की है। साधन गण तो केवल भगवत्स्वरूपसाध से तद्रूप हो गये थे।^६

१ अन्वयाश्रयाणां त्यागोऽनन्यता । भक्त्युपकान्तिनो मुखाः । नारदभक्तिसूत्र, सूत्र १०. १७

२ तं दुराराध्यमाराध्यं तत्रामपि दुरापवा ।
यकान्तभक्त्वा को वाद्रेण्यदमूलं विना बधिः ॥ श्रीमद्भाग० ४. २४. २२

३ तदर्थिताखिलाचारः सन् कामलोकाभिमानादिकं तन्मिन्नन्वेष करणीयम् ।
नारदभक्ति सूत्र, सूत्र ६३

४ तस्माद् वैरातुबन्धन निर्वैरैश्च भवेत् वा ।
स्नेहात्कामेन वा मुञ्च्यन्त्यभक्तिनेचने रमन् ॥ श्रीमद्भाग० ७. १. २५

५ श्रीमद्भाग० ७. १. २६-२८

६ कोप्यः कामाद्भवार्कमो द्वेषाच्चैवादयो नृपाः ।
सम्बन्धद्वेषाद्यः स्नेहाद्युद्धे भवत्या वर्गं विभो ॥ श्रीमद्भाग० ७. १. २७

कामं कोपं सर्वं स्नेहमैक्यं सौहार्दमेव च ।
नित्यं हरीं विदधती शान्तिं तन्नन्वतां हि ते ॥ श्रीमद्भाग० १०. २६. २५

हैं।^१ काम सबसे अधिक प्रबल राव है। क्योंकि काम में दृष्ट के सामीप्य की कल्पना अत्यन्त उत्कट रूप से विद्यमान रहती है। योगियों की भक्ति 'कामरूपा' है^२ किन्तु इनकी इस कामरूपा भक्ति में यह विशेषता है कि उन्हें निरन्तर श्रीकृष्ण के परब्रह्मरूप माहात्म्य का ज्ञान बना रहता है।^३

प्रेमाभक्ति—ब्रजगोपिकाओं की कामरूपा भक्ति ही अपने उच्चतम रूप में 'प्रेमाभक्ति' हो जाती है। शौभ्य, प्रह्लाद, उद्धव और नारद की भक्ति भी इसी प्रकार की है। चित्त की प्रतिशय कोमलता और ममत्व का अतिशय राव भाव प्रेम कहलाता है। भगवान् के प्रति ममत्व प्राप्त कर लेना भक्ति का सर्वोच्च कोपान है, यही प्रेमाभक्ति है।^४

पङ्क्तिवा अथवा षडंगी भक्ति—भगवान् ने दृष्ट प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए श्रीमद्भागवत में पङ्क्तिवा षडंगी भक्ति का भी एक स्थल पर विधान किया गया है। इस भक्ति के छे अंग ये हैं—(१) प्रसाम, (२) स्तुति, (३) सर्वकर्मवर्ज्य, (४) उपासना, (५) ध्यान तथा (६) कथाश्रवण। इन छे अंगों में युक्त षडंगी भक्ति किये बिना मनुष्य को भगवान् की प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त होना असम्भव है।^५

नववा भक्ति—एक अन्य स्थल पर श्रीमद्भागवत में भी नवखण्डों वाली भक्ति का उल्लेख हुआ है।^६ नववाभक्ति के लक्षण ये हैं—(१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन, (७) वास्य, (८) सख्य और (९) आत्मनिवेदन। इस नववा भक्ति के कुछ लक्षण तो षडंगी भक्ति में आते हैं और सख्य, धारमनिवेदनादि कुछ लक्षण रामानुगाभक्ति के अन्तर्गत। नववा भक्ति के द्वारा भी प्रेमलक्षणाभक्ति को प्राप्त करना ही भक्त का लक्ष्य होता है। उपर्युक्त लक्षणों से कुछ अन्तर के साथ नववाभक्ति का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी किया है।^७ श्रीमद्भागवत में शतशः स्थलों पर उक्त नववाभक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि प्रकारों का वर्णन

१ कामाद् द्वेषाद्भवात्स्नेहश्च भक्त्येवमेव मनः।

आवेश्य तदधं हित्वा ब्रह्मस्तद्गतिं गताः ॥

श्रीमद्भाग० उ. १. २८

२ श्रीमद्भाग०, उ. १. २०

३ यथा ब्रजगोपिकानाम्। तत्रापि न माहात्म्यहामबिस्फुरणवादः। नारदचरितस्य, सूत्र २१, २२

वत्पत्न्यस्यसुहृदामनुवृत्तिरयं खरिषां स्वधर्म इति भर्तृविदा स्वभोजम्।

अस्त्वेषमेतदुपदेशपदे त्वधीरो प्रेष्ठो नवांस्तनुगतां कियं वन्दुराज्याः श्रीमद्भाग० १०. २६, २७

४ अतन्मममता विन्वी ममता प्रेमसंगता।

भक्तिरित्युच्यते भीष्म प्रह्लादोद्धवनारदैः। नारद चरितस्य से म० २० त्रिभु के उद्धृत पृ० ११५

५ तत्तु खैरतम नमस्तुतिर्नमःपूजाः

कर्मसृष्टिस्वरक्षणेः श्रवणं कथावान्।

संसेवका त्वयि जिनेति खड्गमया किं

भक्तिं अतः परमहंसगतौ लभेत।

श्रीमद्भाग० उ. ६. ५०

६ श्रवणं कीर्तनं किञ्चोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं वास्यं सख्यमन्वनिवेदनम् ॥

श्रीमद्भाग० उ. ५. २६

७ शौभ्यं अर्पति स्तौत्रं का संयाः। दुस्तरि रति मम कथं प्रकृत्या ॥ इत्यादि

रामचरितमानस, अरण्यकखण्ड, सप्तरी मिलन, पृष्ठ १।

निष्कलित्विन इत्येव स तद्व्यासक्या की त्र सूची ग गर् है उमका आधर सम्भवत श्रीमद्भगवत ही ज्ञान ज्ञान है क्याक इन सभी की सविस्तर कथा इस पुराण म है

श्रीविद्यया श्रवणो परी क्षत्रभवत् वैयासकि कीर्तन ।
 प्रह्लादत स्मरणा नन्दसि भजन लक्ष्मी पृथु पूजन ॥
 अश्वत्थस्त्वभिवन्दने षडपिपतिर्वास्येऽथ सख्येऽर्जुनः ।
 सर्वस्वात्मनिवेदने वसिष्ठभूत् कृष्णाधितरेवं परा ॥३

भक्ति के साधन—भक्ति भगवत्कृप्यंकलम्य है. इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु भगवत्कृपा का मात्र वसने के लिए भी भक्तिप्राप्ति में कल्पित साधन बताये गये हैं। इन साधनों को करते-करते भगवान् की कृपा से उनकी प्रेमाभक्ति प्राप्त हो जाती है।^{१५} श्रीमद्भगवत में अनेक स्थलों पर भक्ति के साधनों का निरूपण किया गया है। सक्षेप में, वे निम्न ये बताये गये हैं— (१) श्रद्धापूर्वक भगवत्कथाश्रवण, (२) निरन्तर भगवन्नाम स्मरण, (३) पूजा में तत्परता, (४) स्तुतियों द्वारा भगवत्स्तवन, (५) भगवत्प्रतिमा को नमस्कार प्रणाम, (६) भगवद्भक्तों की विशेष पूजा, (७) समस्त प्राणियों में भगवद्दृष्टि, (८) सर्व कर्मपरिण एवं आत्मसमर्पण।^{१६} इनमें से अन्तिम साधन की चर्चा श्रीमद्भगवद्गीता में की विशेष रूप से की गई है।^{१७}

भक्त-लक्षण—परम भगवद्भक्त का लक्षण है सब और से निरपेक्ष होकर भगवान् से जिस लक्ष्मणक सम्बन्ध हो जाता। भगवद्भक्त भगवान् को छोड़कर योग-मिष्टि, भूमण्डल में अविषय, सार्वभौम शत्रु, इन्द्र-पद, मोक्ष और ब्रह्मपद की भी कामना नहीं करता।^{१८} भक्त स्वभावतः अक्रियत्व, द्वैतनिन्द्य, शान्त, सर्वभूतहितरत और समस्त कामनाओं से रहित होता है।^{१९} उसका मन श्रीकृष्ण के चरण कमलों में, वाली गुराणान में, कान कक्षा

१. कृष्णार्जुनै कथाः तद्वचनं सुमदा लोकप्रसवतः
 भगवत्कृतममरुतमै तमै चरितवन्सुतु ॥ श्रीमद्भाग० ११. ११. २३
- श्रीमद्भगवद्गीता, १०. २३
२. अन्तरिमाहुरतिष्ठु (श्री कुरवोस्वामे) पू० २७
- अथवा अन्तरासि शशवसावासीः - कतु विवकवाराणु संगत्यानाच्च । अन्वावृतमजनात् ।
 लोकेऽपि भगवत्पुण्यवदकी रीतान् ।
 सुवचनानु मन्त्रकुर्यैव तदभ्युपदेशाद् वा ।
 अत्रि शान्त्यासि मननीयानि । नदुर्बोधक समर्थयसि करणीयानि ॥
 —नारदभक्तिसूत्र, सूत्र. १४, १५, १६, १७, २०, ७६
३. अथाकुरुश्रवणं मे शस्त्रमवतुकीर्तनम् ।
 परिश्रमका मे पूजाया स्तुतिभिः सन्दर्शनं मम ॥ त्राति श्रीमद्भाग० ११. १६. २०-२४
४. अन्तरासेऽप्यहमर्षिः शिवात्परमो मम
 भगवत्पुण्ये श्रमार्थि कुर्वन् विष्णुमवाप्तवसि ॥ पीता १२. १०
५. कं चरिष्येऽहं कं सर्वेपि श्रवणं न म सर्वभौमं न रत्नविषयम् ।
 न शक्यते ब्रह्मपदमर्षे वा शक्यतेऽस्मिन्नुदि नर्षिनान्यत् ॥ श्रीमद्भाग० ११. १४. १४.
- श्रीमद्भगवद्गीता ११. ११. १६ तथा ११. १४. १७

श्रवण में, तब भगवत्प्रतिमा के दर्शन में, प्राणोन्मिष्य भगवत्चरणां पर कही तुलसी के संघ-
ग्रहण में, भग (स्वचा) भगवद्भक्तों का भग स्पर्श करने में, रत्नना नैवेद्य में, हाथ श्रीहरि के
मन्दिर का मार्जन करने में, गैर भगवद्दर्शनों की यात्रा में तथा फिर श्रीकृष्ण की चरणा
बन्दना में लगे रहते हैं।^१ भक्ति के सार्विक अनुभाव उदय होने पर उमकी बरखी शक्य
और चित्त द्रवीभूत हो जाता है। वह कभी काग-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी
निःसंकोच होकर उच्च स्वर से गाने लगता है और कभी नाच उठता है।^२ प्रेमाभक्ति
सम्पन्न भक्त के इस प्रकार के लक्षण श्रीमद्भागवत में अनेक स्थानों पर कहे गये हैं।

भक्तमहिमा—भक्त की अत्यन्त महिमा का इन्से बहुत कोई प्रमाण नहीं हो
सकता कि भगवान् स्वयं उसको महिमा का बधापन करें और स्वयं को पवित्र करने की
कामना से भक्त की चरण रज के लिए मरना उनके पीछे-पीछे चलें।^३ भगवान् निरन्तर अपने
भक्तों के अधीन रहते हैं, क्योंकि मक्त भगवान् के हृदय पर अधिकार कर चुके होते हैं।
भगवान् एक वाग अर्थात् आत्मा और अतर्पायिनी लक्ष्मी का भी परित्याग कर सकते हैं किन्तु
अपने भक्त को कभी नहीं छोड़ सकते; भक्त भगवान् के हृदयरूप हैं और भगवान् भक्तों
के हृदयरूप।^४ अपना अपराध करने वाले को भगवान् क्षमा कर देते हैं किन्तु भक्त का
अपराध करने वालों को वे कदापि क्षमा नहीं करते; भक्त स्वयं ही अपने अपराधों को
क्षमा करे तो करे, अन्यथा भक्त का अपराध क्षमा करने की बकिन् स्वयं भगवान् में भी नहीं
है। भक्त की इस असाधारण और भक्त का लोकोत्तर साहस्य प्रकट करने के लिए
श्रीमद्भागवत में भक्तप्रवर राजा अम्बरीष की मनोहारिणी आख्यायिका है जिसमें बताया
गया है कि भक्त का अपराध करने वाले द्वारा ऋषि को अन्त में उमरी की शरणा में जाना
पड़ा।^५ भगवान् की प्रतिज्ञा है कि उसके सक्त का निरस्कार करने की शक्ति विश्व में
किसी के पास नहीं है।^६

१ श्रीमद्भाग० ६. ४. २०-२०

२ (क) नेत्रे जलं ग्रासकहेनु हर्षः ॥

श्रीमद्भाग० २. ४. २४

(ख) वाप्यउमरा द्रव्ये यन्म भिक्तं ध्वन्यमीच्छते तमनि कश्चिन्न ।

विलडक उदरायति मृष्यते न म्दमकिपुक्तो मुननं पुनाति ॥ श्रीमद्भाग० ११. २४ - १

३ निरपेक्षं मुनिं गानं निर्वैरं समदर्शनम् ।

अनुत्तजाम्बहं नित्यं पूषेयेद्विरेणुभिः ॥

श्रीमद्भाग० ११. ६४. १२

४ अहं भक्तपराधीनो ह्यन्वत्तत्र देव विन ।

सःपुभिद्येतत्तदको भक्तं सैक्यवनप्रियः ।

सहृन्नात्मानमारोसे मद्रक्तैः सःपुभिर्विना ।

श्रियं चात्पन्तिकीं ब्रह्मन्केवां सःदिरहं परा ॥

साधवो हृदयं मद्यं सःपुनां उदयं स्वहृत् ।

सदन्वत्तं नु जानन्ति नाहं केन्दो यत्नायपि ॥

श्रीमद्भाग० ६. ४. ६३. ६४, ६५

५ श्रीमद्भागवत ६. ४. ५

६ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजस्य दशमा शिवा ।

विभूतिभिर्वीभिभवैरे कोऽपि किञ्चु वा शिबः ॥

श्रीमद्भाग० १०. ७२. २६

निरुक्ति

इस अध्याय में विवेचित विषय से हम निम्नांकित ।

१—परमेश्वरः निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए भी सगुण ब्रह्म की उपासना का विधान किया है और माना है ।

२—नामः सगुण विग्रहवारी विष्णु ही श्रीकृष्ण है । श्रीकृ

३—श्रीकृष्ण की श्रेयसा भक्ति मुक्तरा है । भक्ति साध

४—निर्गुण प्रेमाभक्ति प्राप्त करना पुरुष का चरम पुरुषार्थ

द्वितीय अध्याय

भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का स्थान

दृष्टिकोण—भारतवर्ष के दर्शन में सर्वप्रथम मानव को आध्यात्मिक श्रेष्ठ निष्पत्ति का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। इन प्रयत्न को ही 'धर्म' नाम से अभिहित किया गया है। इस धर्म के नाशक रूप में ब्रह्म-ज्ञान, कर्म तथा उपासना की विधियों ज्ञानात्मक ज्ञान से प्रवहमान हैं। इन विधियों का उद्गम स्थल तो भारतीय नान्यज्ञान के अकारण वेद ही हैं, किन्तु उनके उपबृंहित रूप ब्राह्मण्य, धारण्यक, उपनिषद्, मूत्र, स्मृति एवं श्रुतियों में उस विवेकी का संगम हमें स्पष्ट लक्षित होता है। देवकाल की आवश्यकताओं के अनुसार भारतवर्ष में कभी तो ज्ञान-भागीरथी की द्वारा प्रसर प्रवाह प्राण कर लेती है, कभी कर्म-कानिन्दी में उत्तान तरणें उठने लगती हैं और कभी उपासना की गुप्त-सरस्वती प्रत्यक्ष हो जाती है। भारतवर्ष के वास्तविक और सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करने से इसी तथ्य का अनुभव होता है।

प्राचीन भारत के ब्राह्मण काल में बौद्धिक तत्त्व-चिन्तन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जिसका चरमोत्कर्ष हमारा उपनिषद् साहित्य है, किन्तु इस निष्किय तत्त्वचिन्तन के उपरान्त, कर्म प्रधान युग आया और कर्म-सीमाया होने लगी। किन्तु जब कर्मकाण्ड की औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर गया तो तदावन गौतम बुद्ध ने वैराग्य और ज्ञान प्रदान अपना धर्मचक्र चलाया जो कई ज्ञानविद्वानों तक भारतवर्ष के वातावरण में घुसता रहा। कालान्तर में बौद्ध धर्म जिन जटिल आचारों एवं विरूप धर्म-माधनाओं में परिवर्तित हो गया, उनका निराकरण गुवा सन्दासी संकर (वि० सं० ८४२) के अद्वैत ज्ञान-प्रधान वैदिकधर्म के द्वारा हुआ। दो ज्ञानविद्वानों तक गङ्गा के वेदान्त का गहनतम भारत में गूँजता रहा किन्तु बाद में उसकी तुमुल-स्वनि से भारतीय हृदय दहल उठा और उसने वैष्णव आचार्यों द्वारा निरारित भक्ति की मुरली की हृदयहारिणी स्वर लहरी में परमानन्द को अनुभव किया। उन्ही समय सौख्यमे में भक्ति के चरम स्वरूप और आदर्श का दिग्दर्शन कराने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का अन्तिम प्रकाश अखिल भारत-वर्ष में फैल गया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है तात्त्विक दृष्टि से श्रीमद्भागवत ने ही अद्वैत ब्रह्मवाद का ही प्रतिपादन किया है किन्तु उसने लोक जीवन के व्यावहारिक पक्ष में सर्वत्र अत्यन्त-सुख-सुगुण ब्रह्म (सुखदान) की भक्ति का ही उद्घोष किया है। भारत के

१. अतोऽबुद्धयनिश्चेत सिर्गिः स धर्मः ।

बहुत किया और विभिन्न दृष्टिकोण से उसका अध्ययन और सतक विवेचन प्रस्तुत किया यह है हम ज्ञान के प्रमुख वैष्णव आच 4^थ तथा जनन सम्प्रदायों का उल्लेख कर यह दिखाने का प्रयत्न कर कि उनमें श्रीमद्भागवत की कितना मायता है क्या कि तत्त्व सम्प्रदायों के अनुयायी केवल और भक्त के आनन्दभागवत से प्रभावित होकर परवर्तीकाल में विभिन्न प्रकार के कृष्ण काव्य का निर्माण किया है ।

भारतवर्ष के प्रासिक इतिहास से विदित होता है कि ईसा की 15वीं शताब्दी से 16^{वीं} शताब्दी ने एक व्यवस्थित शास्त्रीय रूप ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था । इसी 16^{वीं} शताब्दी तक निम्नलिखित वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हो चुकी थी—

- 1. श्री विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित सुद्धाद्वैतवादी रुद्र सम्प्रदाय (15^{वीं} शती) ।
- 2. बीरानानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैतवादी श्रीमत्प्रदाय (1537 से 1539 ई०)
- 3. श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैतद्वैतवादी सनक सम्प्रदाय (1562 ई०)
- 4. श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैतवादी सम्प्रदाय (1513 से 1566 ई०)

इन चार प्रधान आचार्यों के तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर परवर्ती अनेक आचार्यों ने अपने मौलिक प्रतिभा एवं तत्त्वचिन्तन के आधार पर और भी वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना की, जिसका समय 15^{वीं} शताब्दी से 16^{वीं} शताब्दी तक विस्तृत है । प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख नीचे किया जाता है -

- 1. —श्री रामानन्द का विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय ।
- 2. —श्रीवल्लभाचार्य का सुद्धाद्वैतवादी पृष्टि सम्प्रदाय ।
- 3. —श्री चैतन्य महाप्रभु का सच्चिन्मभेदाभेदवादी सम्प्रदाय ।
- 4. —श्री हितहरिदस का राधावल्लभीय सम्प्रदाय ।
- 5. —श्री हरिदास का सखी सम्प्रदाय ।

16^{वीं} शताब्दी से 17^{वीं} शताब्दी तक हुए सभी वैष्णव आचार्यों ने अपने सम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना संस्कृत में की । ब्रजभाषा का प्रचार होने पर भी शास्त्रीय लिपिकार का माध्यम संस्कृत भाषा ही रही, श्रीमद्भागवत को सभी ने भक्तिशास्त्र का अर्थ प्रामाणिक प्रवचनरूप ग्रंथ स्वीकार किया ।

श्रीमद्भागवत का विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत—

शक्ति श्रीगणेशानुजाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी किन्तु उनके सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यों ने श्रीमद्भागवत को अपने सम्प्रदाय में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और उसको टीका लिखी, श्री बीरराघवाचार्य की 'भागवतचन्द्रिका' टीका का अर्थ 'केशव ज्ञान मुक्त है' । श्री बीरराघवाचार्य ने लिखा है कि 'श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीमद्भागवत पुत्र से इन्द्रज सम्प्रदाय के अनुसर विश्वस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य विल्वमंगलाचार्य के शिष्य का सम्प्रदायिक मान्य है । वैश्वरूपद्वैतवाद और बल्लभसम्प्रदाय, प्रथम संस्कृत (15^{वीं} शती) किन्तु शक्ति ने विश्वपुराणों को 15^{वीं} शताब्दी का माना है (देखिये—A History of Sanskrit Literature, chapter on Philosophy and Religion, p. 476)

की व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है। एतद्विषय श्रीरामानुज ने अपने शिष्याओं से मुक्त मन्त्रमति को भी जो प्रकृत मार्ग दिया दिया है उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए मैं (श्रीमद्भागवत व्याख्या रूप) इस दुष्कर कार्य को पूर्ण करने का अभिलाषी हूँ। कृपया सुधीज्जद मेरा साहस क्षमा करें। सत्यवती मुक्त वादनायक श्याम ने रम्य, अम्म, जमा, मरुत आदि सांसारिक वृत्तों से उग्रहृत् और वेदार्थ को न जानने वाले प्राकृत जनों की देखकर दयालुता वश उनका उद्धार करने के हेतु वेद की दो प्रकार से व्याख्या की। अपने शिष्य महर्षि जैमिनि से उन्होंने पूर्वनीमत्ता की रचना कराई तथा स्वयं प्राचीनक सूत्रों से उत्तर मीमांसा की रचना की। पूर्वभाग के उपग्रहण के लिए, या उन्होंने पञ्चम वेद की भाँति प्रसिद्ध महाभारत का निर्माण किया और मुख्यतया उत्तरभाग का उपग्रहण करने वाले श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की।^१ इस कथन में स्पष्ट है कि रामानुज मत में श्रीमद्भागवत को ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या के रूप में स्वीकार किया गया है।^२ श्रीरामानुज मत का अन्तरण अध्ययन करने से अनुभव होना है कि उसमें अवधारण पक्ष में श्रीमद्भागवत की भक्ति या प्रपत्ति तथा अव्यात्म पक्ष में उसका अद्वैत दर्शन कुछ विधिष्टता के साथ ग्रहण किया गया है। इसीलिए मैत्रेयान्तिक दृष्टि से इस मत का नाम 'विधिष्टाद्वैत मत' है। श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत मत एवं श्रीमद्भागवत—

श्री निम्बार्काचार्य भारतवर्ष के कई नामों से प्रसिद्ध हैं—यथा निम्बार्कदित्य, भास्कराचार्य, नियमानन्द आदि। इनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर विद्वान् उन्हें श्री रामानुजाचार्य (मृत १०३० से ११३५ ई०) का पदचानुवर्ती तथा आनन्दतीर्थ (श्रीमद्व्याचार्य) का समकालीन मानते हैं। डॉ० भण्डारकर के मतानुसार इनका समय ११६२ ई० है।^३ निन्द अथवा तीर्थ के वृक्ष पर विष्णु के सुदर्शन चक्र का आवाहन कर सूर्य के प्रकाश का चमत्कार इन्होंने जन मायुषी को दिखाया और उन्हें मोक्षन कराया था। ऐसी चमत्कार-कथा निम्बार्क मन्त्रप्रदाय में प्रचलित है। तभी से इनका नाम निम्बार्क अथवा निम्बार्कदित्य रहा। इस मन्त्रप्रदाय की आचार्य-परम्परा में निम्बार्क चौथे स्थान पर आते हैं—(१) हस्ताक्षर भगवान् नारायण, (२) सनक-सनन्दन सनातन-सनत्कुमार, (३) देवर्षि नारद तथा (४) श्री निम्बार्काचार्य। हस्त, सनकादि तथा

१ श्रीमद्भागवत पुराणमन्त्रिण व्याख्यातृनिम्बार्क

व्याप्तार्थैर्वात्तत्र भास्करवत्सामहं कुपानां मुने ।

मन्दासामपि साद्वरामवगमाच्चार्हणया दर्शितं

पन्थानं सनुपाश्रितं विशुद्धया मन्दाइस्तं सम्यतात् ।

तथैज्ज्वरामरसादि सांसारिकदुःखोपहताननवगतकेदारार्थं जनानवलोकायानुक्रमितनवास्तुशिव-
ज्योतिषा × × वेदं व्याचिख्यास्तुलात्तत्परिस्थेयं भगवतः वैनिमित्तं महर्षिणा पूर्वभागे व्याप्तव्याप्त
स्वयमुत्तरभागं समीचीनैः सारारकनवैश्यास्वयं प्रकृतः पूर्वभागोपष्टं इत्याचार्यं पञ्चमवेदस्वेन
प्रसिद्धं श्रीमदाभारतस्वमित्रिणसं निम्बार्क प्रथम्येन वेदान्तार्थोपेष्टं इत्याचार्यं श्रीमद्भागवतारु-
पुराणमर्जचिकीर्षुः × × ×

श्रीमद्भागवत की बीरराजवद्धत टीका का उपोद्घात ३०० (विन्दावन सं० १९६०)

२ Vaishnavism, shaivism.....Page 63 (foot note , Poona 1928.

में साय =। श्रीमद्भागवन में ब्रह्म के प्रति श्रीकृष्ण ने हमारे नारायण और सनकादि का सारा भविष्य करान किया है ३ भावार्थ के अन्वयानुसार के समय उनसे उक्त चरों श्रुति ने सबप्रथम ब्रह्म शिवा नीचे । सनकादि श्रुतियों के नाम पर द्वैताद्वैत सम्प्रदाय 'अनुभव सम्प्रदाय' और 'श्रुति सम्प्रदाय' भी कहलाता है ।

सिद्धान्त—द्वैताद्वैत (भेदाभेद) मत में द्वैत और अद्वैत दोनों का सामंजस्य स्थापित किया है । इस मत का सारांश यह है कि इष्टयमान् जगत् और जीव दोनों का सारंश ब्रह्म ही सत्ता जगत् और जीव तक ही सीमित नहीं है वह असीम है । अतः जगत् और जीव ब्रह्म का उपादान कारण है । अतः जगत् और जीव ब्रह्म के साथ अंगी का जैसा भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सम्बन्ध है, वैसा ही जगत् और जीव के साथ भी । अथ समस्त भवभावों से अंगी का ही अगभूत है अतः श्रुति से अद्वैत है । परन्तु अंगी अंग को अतिक्रमण करके भी स्थित रहता है । अतः अंगी अंग से भिन्न भी है । अतः अंगी अंग सम्बन्ध 'भेदाभेदसम्बन्ध' अथवा 'द्वैताद्वैतसम्बन्ध' कहलाता है । अतः अद्वैतसम्बन्ध है । जब ब्रह्म जगत् से अतीत रूप में विद्यमान रहता है तब वह अतीत ही रहता है और जब परिणत होता है तब सगुण हो जाता है । ब्रह्म का सगुण रूप ही जगत् है । अतः जीव जगत् को और स्वयं को ब्रह्म में अभिन्न अनुभव करने लगता है तब तन्मयी भी हो जाती है । नुक्त होने का एकमात्र साधन सगुण ब्रह्म की उपस्थापना है । श्री निम्बार्काचार्य ने देवालयों में राधाकृष्ण की प्रतिमाओं की स्थापना करके प्रत्येक उनका अर्चन करने का उपदेश दिया । उनके मत में श्रीमद्भागवत ही सारंश है । अतः सर्व स्वीकार किया गया है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है ।

- १. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- २. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ३. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ४. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ५. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ६. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ७. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ८. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- ९. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।
- १०. अतः सगुण ब्रह्म ही सत्ता है ।

—नारदो पुराणे, उदरखण्ड चरभाष्या श्रीमद्भागवत ११, १३, १४

निम्बार्कविरचितश्लोकी पर श्रीहरिवंशसूत्र का भाष्य ।

लिए महाभारत की रचना की। इसके उपरान्त उन्होंने वेदान्त का उपबृंहण (अर्थ विस्तार और पुष्टि) करने के लिए नारद को आज्ञा दे सुसुष्टुको पर प्रसुष्टु कहने के लिए तीन सौ पैंतीस अध्याय और बार्हस्पत्य युक्त कण्वबुध के समाप्त कहीष्ट पत्र पठान करने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण किया। श्रीमद्भागवत का अर्थ-विषय 'अथवाच' है, (जो एहैस्वर्य सम्पन्न है।) 'उत्तमः, उत्तमः' आदि 76 श्लो भगवान के वाचन हैं। और प्रथकार ने प्रारम्भ में उन्हीं के लक्षण बताकर पत्र-पत्र का विवरण प्रस्तुत किया है।¹

श्रीमद्भागवत में जिस योगलक्षण की मर्म लीलाओं का विवरण वर्णन है और हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में जिसका विशाल वर्णन प्रचलित है, निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य मुकुन्द ने उस योगवेद्योक्त श्रोत्रिय की सम्प्रदाय माना है। श्रीकृष्ण अमल्य दिव्य गुणों के धाम हैं। अरागाज के लक्षण प्रकृत है और मर्मन्त लौकिक के निदान हैं। वे चराचर जगत् के कान्त हैं। उनका लक्षण प्रकृत है। वे वेद से ज्ञातव्य पद्म है। भक्त प्रीयानार्थ योगवेद्योक्त श्रोत्रिय ही लक्षण प्रकृत है।²

'श्रीमद्भागवत के उपक्रम श्लोक में जन्माद्ययमः' वेदान्त सूत्र के उद्धारण से वेदान्तशास्त्रों का तथा श्रीमद्भि सायत्री पद के उद्धारण से यमार्थ के अर्थितार्थ का प्रकाश किया गया है तथा श्रीमद्भागवत का लक्ष्य यही है—

उपक्रमश्लोकं जन्माद्ययम इति वेदान्तशुभोच्यमानो वेदान्तात्मा तथा श्रीमद्भि-सायत्री पदोच्यमानस्य सायन्याः फलितार्थप्रकाशकं श्रीमद्भागवतमिति होनमिति।³

उपरोक्त उद्धारण से स्पष्ट हो जाना है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

श्रीमद्भागवत का द्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत—

श्रीमद्भागवत (११२५ ई०)⁴ कर्नाटक प्रान्त के प्रसूत वैष्णव आचार्य थे। इनका जन्म-नाम 'वामुदेव' था और आगे चलकर इन्होंने का नाम 'सूर्यप्रकाश' और 'श्रीमद्भागवत' और

१ श्री मुकुन्दवाचार्थ ने सम्भवन कहने इस शब्द का अर्थ श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को माना है—

वदन्ति तत्परवतिवन्द्यं यज्जानमप्रयम् ।

वदन्ति परमात्मनि भगवान्नि शुद्धमेव । श्रीकृष्णार्क १. १. ११

२ प्रथ वेदान्तोपबृंहणार्थ श्रीमन्नादाचार्या सुसुष्टुप्रपञ्च पञ्चविंशत्यधिकशतिकाध्यायविक्रमं द्वादशतन्त्रयुक्तं कण्वरुचरमीष्टाद्यैर्परं श्रीमद्भागवतमहापुराणं प्रारम्भितुमैवनिवचनम् च, पाण्ड्य परमात्मादि परदाबन्ध भगवतो मन्त्रकण्ठसम्भवेन लज्जतं क्वम् परमात्मान्कर्तव्यं जन्माद्ययमेति—सिद्धान्त प्रदीप, कुल्लुक्क से १९६० वि० में प्रकाशित श्रीमद्भागवत पृ० ३६ ।

३ कर्मविवृत्यासि—स्वप्रपन्नैः क्वच्युतः स्वप्रपन्नैः स्वप्रपन्नैः । विमलम्कवद्रोपो वेदवेद्यः प्रथमं भगवतु लक्षणम् । श्री सायन्याः वही पृ० २३

४ श्रीमद्भागवत, श्री मुकुन्दवाचार्थ द्वारा सिद्धान्त प्रदीप, टीका, कुल्लुक्क से १९६० वि० में प्रकाशित पृ० २३ ।

५ 'Life and teachings of Madhva'—By Sri Padmasabhacharya. Nateson Maaras.

उपदेश दिया। इन्होंने रामेश्वरम् से लेकर बदरिकाश्रम तक और पूव मे नवद्वीप बयाल तक पयटन किया था। इन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रख्यान किया निम्नमें श्रीलातात्पर्यनिखय भागवतनात्मनिखय महाभारततात्पर्यनिखय ब्रह्मसुत्र भाष्य तथा दशोपनिषद् भाष्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत को लक्ष्य कर रचित 'श्रीभागवततात्पर्यनिर्णय' नामक ग्रन्थ में इन्होंने वल्लभ सङ्गपुराण का दार्शनिक सिद्धान्त बड़े ही प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ प्रतिपादित किया है।

इसज्ञान-साधक-जीव-ब्रह्म-विद्याका-ज्ञान-के-प्रवृत्ति-से-प्रायः-विपरीत-ही-हो-गया-।-साधक-के-अनुभव-में-जीव-प्रकृत-ब्रह्म-मान-गै-।-जीव-की-पृथक्-सत्ता-मानने-से-उत्पन्न-माय-का-कारण-जीव-जगत्-में-अवस्था-को-सांसारिक-वटित-ही-जाता-है-।-एक-दृष्टि-से-माय-का-कारण-ही-है-।-दूसरी-दृष्टि-से-माय-प्रायः-अन्य-सब-भागवत-मतों-का-कारण-ही-हो-गया-है-।-जीव-का-विशेष-सम्बन्ध-सम्प्रदाय-तो-एक-प्रकार-से-माय-सम्प्रदाय-के-अन्तर्गत-ही-है-।-भगवद्गुरु-पर-माय-सम्प्रदाय-में-उसी-प्रकार-हृद्-विश्वास-किया-जाता-है-जैसे-दृष्टि-सम्प्रदाय-में-।-सञ्जय-ने-जीव-की-मुक्ति-का-कारण-ज्ञान-न-मानकर-भगवद्गुरु-ही-मानते-हैं-।

इसबाद 'अप्यत्र-सृष्टि-प्रकृतं-जीव-सांसार-इह-है-कि-जीव-और-ब्रह्म-दो-नित्य-पृथक्-सत्तार-है-।-जीव-जागृत-है-।-वह-दाम-है-।-ब्रह्म-अधुस-सविशेष-और-स्वतंत्र-है-।-जीव-का-पुनः-पुनः-सृष्टि-है-कि-वह-माय-को-क्या-दि-सृष्टिकर्ता-से-से-किसी-को-प्राप्त-करे-।-जीव-और-ब्रह्म-के-सांसारिक-सह-जन्म-ही-एक-प्रकार-से-।-दृश्य-जगत्-सत्य-है-।-विकार-माय-को-परिचरित-ही-हो-गया-है-।-माय-जगत्-ही-ही-है-।-कारण-यह-है-कि-असत्य-का-अन-वर्ण-ही-।-ज्ञान-प्राप्त-ही-ही-के-अर्थ-ही-है-।-चन्तन-से-भिन्न-ज्ञान-की-स्थिति-का-अर्थ-ही-।-एक-ज्ञान-सत्-समिप-सत्-ही-ही-है-।-ज्ञान-ही-अपे-का-प्रतिपादक-एवं-असत्य-ही-।-ब्रह्म-सृष्टिक-द्वारा-का-विद्य-सृष्टि-ही-माना-वह-सांसारिक-सत्य-है-।-विष्यु-की-उत्पत्ति-ही-ही-।-जीव-की-मुक्ति-का-कारण-ही-है-।- (१) भक्ति, (२) त्याग और (३) ध्यान ।

संस्कृत-साधक-के-प्रति-विशेष-विचार-ही-है-।-इस-सम्प्रदाय-का-सारांश-बड़ी-सुन्दर-से-सूचित-किया-गया-है-।-

श्रीमद्भागवत-ही-।-सांसारिक-सत्त्व-ही-।-
 जगत्-सत्य-है-।-ब्रह्म-अधुस-सविशेष-और-स्वतंत्र-है-।-
 जीव-का-पुनः-पुनः-सृष्टि-है-कि-वह-माय-को-क्या-दि-सृष्टिकर्ता-से-से-किसी-को-प्राप्त-करे-।-
 जीव-और-ब्रह्म-के-सांसारिक-सह-जन्म-ही-एक-प्रकार-से-।-दृश्य-जगत्-सत्य-है-।-विकार-माय-को-परिचरित-ही-हो-गया-है-।-माय-जगत्-ही-ही-है-।-कारण-यह-है-कि-असत्य-का-अन-वर्ण-ही-।-ज्ञान-प्राप्त-ही-ही-के-अर्थ-ही-है-।-चन्तन-से-भिन्न-ज्ञान-की-स्थिति-का-अर्थ-ही-।-एक-ज्ञान-सत्-समिप-सत्-ही-ही-है-।-ज्ञान-ही-अपे-का-प्रतिपादक-एवं-असत्य-ही-।-ब्रह्म-सृष्टिक-द्वारा-का-विद्य-सृष्टि-ही-माना-वह-सांसारिक-सत्य-है-।-विष्यु-की-उत्पत्ति-ही-ही-।-जीव-की-मुक्ति-का-कारण-ही-है-।- (१) भक्ति, (२) त्याग और (३) ध्यान ।

इस-ही-श्रीमद्भागवत-के-सांसारिक-सत्त्व-ही-।-जगत्-सत्य-है-।-ब्रह्म-अधुस-सविशेष-और-स्वतंत्र-है-।-जीव-का-पुनः-पुनः-सृष्टि-है-कि-वह-माय-को-क्या-दि-सृष्टिकर्ता-से-से-किसी-को-प्राप्त-करे-।-जीव-और-ब्रह्म-के-सांसारिक-सह-जन्म-ही-एक-प्रकार-से-।-दृश्य-जगत्-सत्य-है-।-विकार-माय-को-परिचरित-ही-हो-गया-है-।-माय-जगत्-ही-ही-है-।-कारण-यह-है-कि-असत्य-का-अन-वर्ण-ही-।-ज्ञान-प्राप्त-ही-ही-के-अर्थ-ही-है-।-चन्तन-से-भिन्न-ज्ञान-की-स्थिति-का-अर्थ-ही-।-एक-ज्ञान-सत्-समिप-सत्-ही-ही-है-।-ज्ञान-ही-अपे-का-प्रतिपादक-एवं-असत्य-ही-।-ब्रह्म-सृष्टिक-द्वारा-का-विद्य-सृष्टि-ही-माना-वह-सांसारिक-सत्य-है-।-विष्यु-की-उत्पत्ति-ही-ही-।-जीव-की-मुक्ति-का-कारण-ही-है-।- (१) भक्ति, (२) त्याग और (३) ध्यान ।

तंत्र है प्रत्यक्ष अनुमान और अनुभव । इति कवत वेदशास्त्रों द्वारा ही ज्ञय है ।

भागवत-तार्पय निर्णय—श्रीमद्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के महत्व का स्वीकार करते हुए उसके गूढ़ रहस्य के उद्घाटन के लिये भागवतनाम्ननिश्चय नामक एक विन्तून विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ की रचना की । उनका विद्वान्त है कि श्रीमद्भागवत महापुराण ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गायत्री और वेद से सम्बद्ध है ।^१ इसके प्रसार में उन्होंने बहूँ पुराण के श्लोक उद्धृत किये हैं ।^२ जिनका सारांश यह है कि श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत के अर्थ का निर्णय, गायत्री का भाष्यरूप और वेदार्थ से परिपूष्ट है । यह पुराणों का सार रूप और साक्षात् भगवन्मुख से कथित है । श्रीमद्वाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पुराण के उद्धरणों से भी बताया है कि वेद एक विशाल वृक्ष है जिसमें धर्म रूपी पुष्प, अर्थ रूपी पत्ते, काम रूपी पल्लव और मोक्ष रूपी फल लगते हैं । इन फलों की महार्थ रूपसहजायन व्यास ने नोक में महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि के रूप में तोड़कर वितरित कर दिया है । उन्हीं फलों को शुक (तोते अथवा शुकदेव मुनि) ने अपनी रत्नमयी वाणी से आर्द्र कर दिया है, ग्रंथ में मुष्मोक्त उक्त वेदार्थों की व्याख्या करदी है । कुछ फलों को वेदार्थ की व्याख्या करने वाले व्यास ने वृक्ष के आगे ही दिखा दिया है । शब्दनों को उन फलों का रसपान मोक्ष पर्यन्त करना चाहिए ।^३

भागवत-तार्पय-निर्णय से श्रीमद्भागवत के अर्थिकारी, निरय, प्रयोजन और कल का सम्यक् सविस्तर विवेचन किया गया है । इस ग्रंथ की रचना का प्रयोजन श्रीमद्भागवत के गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करना है । आचार्य ने श्रीमद्भागवत में वर्णित समस्त वस्तु का समर्थन श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, संहिता और तंत्रों के आधार पर किया है

१ ब्रह्मसूत्रमहाभारतगायत्रीवेदसम्बन्धवाचं ग्रंथः ।

—भागवत तार्पय निर्णय पृ० ७८३ : 'सर्वमूत्संग्रह' निर्णयवाचक, श्लोके १८३३)

२ अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थनिर्णयकः ।

गायत्रीभाष्यरूपोऽयौ वेदार्थपरिहृतिः ॥

पुराणानां साररूपः साक्षाद् भगवतोदितः ।

द्वादशस्कन्धसंयुक्तः शनद्विच्छेद संयुतः ।

वर्षे, पृ० ७८३

३ धर्मपुष्पस्त्वर्थपत्रः कामपल्लवसंयुतः ।

महामोक्षफलो वृक्षो वेदोऽयं समुदीरितः ॥

शांतिनामि फलानीह वृक्षैर्वाक्येन तु ।

भारतार्थानि धर्मोह तथा मयवतं भुवि ।

आर्द्राकृतानि तसोह शुकप्रभृतिभिर्जनैः ।

ख्यापवद्भिर्गुष्मोक्तान्वेदार्थान्धनिष्ठितान् ।

कानिचिद्वैश्वामस वृक्षस्वयं फलानि तु ।

व्याकृतमाद्यो वेदार्थं सर्ववैश्वोक्तपूजितः ॥

एतेषामथ तेषां वा रसं विवत सज्जनाः ।

कामोक्षान्महतीषीतिरहो मे पश्यतो भवेत् ॥

भागवततार्पयनिर्णय पृ० ७८३

समर्थन किया और विखरी हुए :^१ निराकार मायावाद का खण्डन और लंकार मुक्त
 ब्रह्मवाद का प्रतिपादन एवं प्रचार इनके जीवन का लक्ष्य था। वल्लभ ने भारत की कई
 यात्राएँ कीं और भक्तिमार्ग का प्रचार किया। अपनी तृतीय यात्रा (सं० १३६३) में उन्होंने
 विद्यानगर में हुए एक प्रसिद्ध साक्षात्कार में विजय प्राप्त की थी। इस साक्षात्कार में एक और
 रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी और मध्व सम्प्रदायों के बड़े गुरु वि.
 सांकर मतानुयायी श्रद्धावादी तथा मन्मथादि श्रद्धावादी पंडितों के बीच प्रकाश
 प्रकाश पाण्डित्य से घिरते हुए वैष्णव-पक्ष को विजय-वैजयन्ती प्राप्त की। इस साक्षात्कार
 राजा कृष्णदेवराय ने उनका 'कनकाभूषण' किया था।

वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त 'मुक्ताहृतवाद' है। उनसे यह सिद्धान्त प्राप्त हुआ कि
 सिद्धान्त का प्रवर्तन कर चुके थे, किन्तु वल्लभ के समय में वह शीघ्र ही प्रवर्तित हुआ।
 वल्लभ ने उसे पुनः सवल बना दिया। हाँ, विष्णुस्वामी के उपसना मार्ग में उपसना का
 उपसना मार्ग अवश्य ही भिन्न है। इसी से मूलतः विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में उपसना का
 भी वल्लभाचार्य वैष्णव धर्म की एक पृथक् शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। यह शाखा
 'पुष्टि सम्प्रदाय' कहलाती है। विष्णुस्वामी ने सगुण एवं लामस शक्ति का प्रचार किया
 था किन्तु वल्लभ ने निर्गुण, प्रेमलसत्सामक्ति को अपनाया। उपासी मन्त्र-प्रयोगों में
 बाल, सख्य, कान्त एवं ब्रह्म-भावना का सामञ्जस्य है। इसके बीज उन्ने श्रीमद्भागवत में
 प्राप्त हुए हैं। श्रीमद्भागवत में नात्रिक-उपासना-पद्धति का भी उल्लेख है। विष्णु
 अनुसार अधिवैक, पंचासूत-स्तानादि भी वल्लभ ने अपने सेवामार्ग में उल्लेख किये हैं।

श्रीमद्भागवत वल्लभ का सर्वाधिक प्रिय स्वाध्याय-ग्रंथ था। उनकी यात्राओं में
 उन्होंने चौरासी स्थानों पर श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। मद्रास में 'श्रीमद्भा
 की बैठक' कहलाते हैं। प्रथम बैठक गोकुल में गोविन्द घाट पर है। दूसरी बैठक १३५० में
 उन्होंने श्रीमद्भागवत का पारायण किया था।

पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का स्थान—प्रायः मद्रास में वल्लभ आचार्यों
 अपने मत को वेद, ब्रह्मसूत्रों और गीता से प्रमाणित कर उनका प्रचार किया है। इस प्रकार
 उक्त ग्रंथ प्रमाणग्रन्थ अथवा 'प्रस्थानग्रन्थ' हैं। किन्तु श्री वल्लभाचार्य ने इन ग्रन्थों के साथ
 श्रीमद्भागवत को भी प्रमाणकोटि में रखकर सम्मिलित कर दिया, और 'प्रमाणग्रन्थ' का
 की स्थापना की^२। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र भोत्वामी विद्वत्सना जी ने श्रीमद्भागवत
 में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के ३०८ नामों का उल्लेख किया है। उनमें एक नाम
 'श्रीभागवतपूढार्वप्रकाशनपरायण' है।^३ एक अन्य नाम है, श्रीमद्भागवतपूढार्व

१ वैष्णव मत पृ० १
 २ श्रीमद्भागवत—स्क० ११, अध्याय २७
 ३ वेदः श्रीकृष्णवाक्यानि व्यामसूत्राणि चैव हि ।
 समाधिभावा व्यामसूत्र प्रमाखं तच्चतुष्टयम् ॥
 श्रीमद्भागवतपूढार्वप्रकाशनपरायण ।
 साकारब्रह्मवैकल्याणको वेदपारमः ॥
 उल्लेख—श्रीमद्भागवत, पृ. १११
 —श्री सच्चिदानन्द, श्रीमद्भागवत, पृ. १११

द्वारा समस्त कृत्याक्त ज्ञान श्रीमद्भागवत में आक्षेप न्त कहा है।^१

सत्वदापासवन्ध के भागवताद्य प्रकारस्य से श्री कृष्णभाष्याय ने श्रीमद्भागवत का विषय में लिखा है कि यज्ञ या वा दण्ड मन्त्रि-सवर्द्धन के लिए और प्रतिपाद्य ईश्वर की विशेषता का ध्यान करने के लिए होता है। श्रीमद्भागवत को वेद इसलिए नहीं कहा गया कि वेद में आक्षेप न्त मन्त्रि के लिए है। ब्रह्म-निरूपण में भेदि-भेदि कहने के कारण महात्मा शत्रुघ्न ने इसका निर्वाह करने में समर्थ नहीं हैं। जब प्राणी इस लोक में धर्म-व्यभिचर करते हैं - भगवान् ने व्यास रूप से भागवत की रचना की। कलियुग में धर्म का अन्त होने का है, अतः श्रीमद्भागवत उनकी अपेक्षा नहीं रखता और इससे भागवत को ईश्वर-वन्दन मुक्त हो जाता है। इस समय वेद, स्मृति और पुराणों में अर्थ भ्रंश हो गये हैं किन्तु श्रीमद्भागवत सर्वथा फल साधक है।^२ 'भागवतोद्देशः' में लिखते हैं 'पुराणो विधासः।' इस व्याय से आचार्य ने श्री व्यास की रचना समर्थ-भाष्य का भ्रंशना पुराणों में की। शास्त्र उपासना विधायक है किन्तु यह पुराण में भक्ति साधनाभिधायक होने के कारण महान् गौरवशाली है। सर्गादि रूप भगवन्-विद्या का उपासना प्रतिपादन है, अतः सत्तत्त्वापासना श्रोता का कर्मक्षय होकर अन्तः परम भक्त्यात्मिका होती है। चूँकि इस पुराण में वेद का सार उद्धृत किया गया है, अतः इसका उपासना सिद्ध है, किन्तु बुद्धावतार में भगवान् ने वेद का निराकरण किया है इसका भागवत को वेद नहीं कहा। श्री बुद्धयोत्तमाचार्य जी ने कहा है कि बुद्धावतार में भगवान् ने वेद निन्दा-वक्तृत्व के लिए की है।^३ अतः वेदार्थ के अनुष्ठान से वेद की शक्ति ही तब ही भागवत द्वारा सिद्ध होती है, अतः वेद से भी अधिक भागवत का उपासना किन्तु अन्तः परम भक्त्यात्मिका (कालादि) साधन नहीं है।^४ इसलिये उससे

१. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

२. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

तत्त्वदीय विद्यम्, प्र० २

३. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

४. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

विद्यया दण्डेन धर्म-वन्दन-सूक्तम् ।

२० दी० नि० प्र० २

५. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

तत्त्वदीय विद्यम्, प्र० २ आवरणसंग ।

६. भागवत-विद्या-वन्दन-सूक्तम् ।

शतप्रकरण सुकोविदी में उद्धृत पृ० १४

धर्मनिन्द्य रूप से निःश्रेयस की सिद्धि होती है। किन्तु श्रीमद्भागवत का अनुष्ठान आध्यात्मिकता के लिए कदापि न करना चाहिये।^१

इस प्रकार वेद रूप कल्पवृक्ष का भागवत एक उन्मात्मक फल है।^२ यज्ञः प्रमादः, प्रमेयः, माधन और फल से भी यह श्रेष्ठ है, क्योंकि यह वेदादि प्रमाणों का समुद्धारक है।^३ श्री बल्लभाचार्य ने सुदीचिनी के फलप्रकरण में श्रीमद्भागवत को समस्त वेदों का प्राभरण रूप बताया है, क्योंकि यह प्राज्ञ भगवत्कीर्ति प्रतिपादक है।^४

श्री बल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को पुरीय (बसुंध) प्रत्याप्त मानकर ही समर्पण नहीं किया, अपितु इसे लीलापुत्र्योत्तम श्रीकृष्ण का साक्षात् विषय ही माना और मेढगाट (मेवाड़) स्थित अपने सेव्यस्वरूप श्री गिरिराजधारी (श्रीनाथ जी) के वाङ्मय श्रंगों में श्रीमद्भागवत के वाङ्मय स्कन्धों की स्थिति स्वीकार की है। श्रुतियों में भगवान् का 'द्वादशावधव' वाला कहा गया है।^५ श्रीमद्भागवत भी द्वादशस्कन्धात्मक होने के कारण पूर्ण पुत्र्योत्तम रूप है, ऐसा सिद्ध करके श्रीबल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत में श्रीमद्भद्रास्वद बना दिया है।^६ श्रीनाथ जी के द्वादशाङ्ग और श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्धों की समति इस प्रकार है—

प्रथम, द्वितीय स्कन्ध—

राज-युगल ।

१ नःपदं परमेष्ठि श्रीभागवतमादरात् ।

पठनीयं प्रयत्नेन निर्वहेतुकमदम्भतः ॥

अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात् ।

पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविद्विजित् ।

श्रुत्यर्थं नैव सुधीतं प्रायैः कंठगतैरपि ॥

त० श्री० लि० ३० २

२ यत्राधिकृत्य गायत्रीं वक्ष्यते वेदविस्तरः ।

कुत्रासुरवोदेतं लक्ष्मणवतमिच्छते ॥

इस वचन से गायत्री कीज है; वेद वृक्ष है और श्रीमद्भागवत फल है। श्रीमद्भागवत में ही इतने वेद वृक्ष का फल ही कहा गया है—

निगमकल्पतरुर्गलितं फलम् ।

शुकमुखाय मुत्तद्रवसंयुतम् ।

पिवन् भागवतं रत्नमालवम् ।

मुहुरहो रसिका सुविभाजकः ॥

श्रीमद्भाग० १. १. ३

३ "उत्तरं पूर्वमन्देहवारकं परिकीर्तितम् ॥"

त० श्री० लि० ३० १

४ "सगवत्कीर्तिप्रतिपादकभागवदादिशास्त्रं सर्ववेदेष्वामररूपम् ॥" फलप्रकरण सुदीचिनी, १०० १५

५ 'द्वादशो ह वै पुरुषः'

" १० १६ पर उद्धृत

६ शोतुर्वकुलस्य लक्ष्मणो दितीये स्वमनिर्ययः ।

इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराखं हरिरेव नः ॥

पुरणे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहूशिरोन्तगम् ।

हस्तौ फलादी लक्ष्मणौ नैव पूर्वपादौ इतः ततः ॥

सक्थौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशस्कन्धपरः रसतः ।

वदिससहस्रं पुरुषो मन्त्रमाकाशयतदुत ।

स्तनौ मध्यं शिरसेति द्वादशाङ्गमनुवर्तिः ॥

त० श्री० लि० ३० ३

| | |
|--------------------------|----------------------|
| तृतीय, चतुर्व्यं स्कन्ध— | बाह्ययुगल । |
| पंचम, षष्ठ स्कन्ध — | मक्षि (जंघा) द्वय । |
| सप्तम स्कन्ध — | दक्षिण हस्त । |
| द्वादशस्कन्ध — | उत्क्षिप्त वामहस्त । |
| अष्टम, नवम स्कन्ध— | स्तनयुगल । |
| दशम स्कन्ध — | मध्यभाग (हृदय) । |
| एकदशस्कन्ध — | शिरोभाग । |

उपरोक्त प्रकार से भागवत के स्वरूप का निरूपण करने के अतिरिक्त श्रीवल्लभाचार्य ने भागवत के अर्थ को सात प्रकार से समझने का आदेश दिया है, जिससे एक ही अर्थ को सात प्रकार से समझने में विरोध नहीं रहता ।^१ ये सात प्रकार के अर्थ हैं—(१) शास्त्रार्थ (२) श्लोकार्थ, (३) अर्थार्थ, (४) अध्यायार्थ, (५) श्लोकार्थ, (६) शब्दार्थ और (७) अर्थार्थ । इन अर्थों में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीहरि की लीला को शास्त्रार्थ कहा गया है और वह अर्थ ही भागवत का अर्थ है । उसमें अतिकारी और साधन इन दो को और सम्मिलित करके ही भागवत का अर्थ हो जाता है ।^२ इसी प्रकार अन्य अर्थों का भी अर्थार्थ ही आशय रखा है जिन्हें विस्तार-भय से वहाँ नहीं दिया जा रहा है ।

श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत का इस प्रकार निरूपण करने का कारण यह दिया है कि भागवत के अर्थों में श्रीमद्भागवत को धारण करने से स्वयं श्रीकृष्ण घृत् हो जाते हैं । अतः भागवत का अर्थ ही भागवत प्राप्त हो जाती है ।^३

श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को एक अत्यन्त निरूपण और दुर्लभ ग्रन्थ समझते हैं जो कि भागवत के अर्थों में भागवत अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं । इसलिये इस ग्रन्थ पर अनेकानेक अर्थों में भागवत का अर्थ टोका होने पर भी उन्होंने 'सुबोधिनो' की रचना की । इन्होंने कहा है कि श्रीमद्भागवत अत्यन्त दुर्लभ है । उसका अर्थ विवेचन करने में वाक्पति अत्यन्त अर्थार्थ (अर्थार्थ) अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं है ।^४ अतः श्रीहरि ने मुझे व्यास के

१. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ ।
 २. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
 ३. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
 ४. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
 ५. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
 ६. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
 ७. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
१. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
२. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
३. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
४. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
५. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
६. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
७. भागवत के अर्थों में भागवत का अर्थ अर्थार्थ । तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३

समान मात्रा शरीर देकर कृपा पूर्वक भाजा की है। इसी में मैं बड़ी उत्तमता से व्यास रूप विष्णु के प्रिय बहुत से शूद्रों को प्रकट कर रहा हूँ।" बल्मभाटक में भी कहा गया है कि बल्मभाचार्य ही श्रीमद्भागवत का अर्थ स्वल्प प्रकट करने में समर्थ हो गये हैं। वागीश के अनिर्गुण वाक् (श्रुति) का भाव समझने में कोई सदर्थ नहीं हो सकता क्योंकि प्रतिबन्ध को अपने पति के मामले ही अपना स्वभाव प्रकट करती है।^१

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री बल्मभाचार्य श्रीमद्भागवत को अलौकिक रूप मानते हैं और तर्क में इसकी अर्थ संगति जगाना अनुचित समझते हैं।^२ इसीलिए उन्होंने अपनी भागवत टीका मूकान्द्वारा में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है कि "मैंने श्रीमद्भागवत का लक्षणा द्वारा अर्थ करके उसे जड़ जीवसाधनरूप लिख नहीं किया है और न न्यून अर्थ से अर्थ की पूर्ति की है। मैंने परोक्ष अर्थ के बिना इसका अर्थ किया है और उपर्युक्त सातों अर्थों की संगति बिना विशेष के बिछोड़ है। अर्थ के अर्थों में जो अर्थ निकलना है उसी का प्रतिपादन किया है।" इस प्रकार भाचार्य ने अपने अपनी कल्पना का भी प्रवेश वर्जित कर दिया है। शास्त्र में स्वल्प प्रकरणा आदि उत्तरोत्तर दुर्बल है वही संगति यहाँ रखी गई है।^३ श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार की भाषा है—(१) ममाधि भाषा, (२) मतान्तर भाषा और (३) लौकिकी भाषा। इनका भेद विभिन्न स्थलों पर लक्षणा में जात हो जायगा।^४

श्रीबल्मभाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर पर्याप्त माहृत्य सज्जन किया है। यहाँ संक्षेप में उक्तका विवरण दिया जाता है।

- १ अर्थ तस्य विवेचितुं नहि विसुवैस्वानरादाकर्णे ।
अन्वस्तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवच्छीवति ।
दत्वाक्षां च ह्यपाकलोकनपटुर्वैरनादतोऽर्ष मुदा ।
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम् ॥ सुबोधिनी, ३
- २ न ह्यन्यो नामधीमाच्छु निगखवचनां भावमाशादुकीष्टे ।
वस्मात् माञ्जी स्वभावं प्रकटयति तत्पूरयतः पत्तुरेव ॥ —श्री विदुनेराहुतं पल्लभाटकम् ४
- ३ अलौकिकास्तु ये मादा न तौस्तर्कैश्च बोधयेत् ।
म० भा० मीमंषये ग्रन्थसूत्रे विनिर्माख पूर्व १, २२
- ४ लक्षणां नैव वक्ष्यामि न न्यूनादन्वपूरकम् ।
आर्थिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्षकथनादृते ।
अधिकेनैव नमस्तान्भाषासाभिह संशयिः ।
उत्तरोत्तरदौर्बल्यं वाच्यं संकोचतः परम् ।
माशान्त्रयविरोधस्य कल्पभेदान्नमाहितः ।
भाषा त्रय विभेदस्य लक्षसैर्ज्ञाप्यते पुनः ।
अर्थत्रयं तु वक्ष्यामि निबन्धेऽस्ति चतुष्टयम् ॥ सुबोधिनी, १
- ५ एषा ममाधिभाषा हि व्यासस्यामितनेजसः ।
लौकिकी चान्यभाषा च समाधिः पौष्टिके तु वै ।
ने प्रमाद्यमभिप्रायात् सर्वथा पूर्ववन्नाहि ।
न वदन्तिरोक्तो दोषाश्च न वक्ष्येऽवसरे स्वप्ने ॥ त० दौ० वि०, पृ० ३

१. श्रीभागवतम् गुणोच्चिती ।
२. श्रीभागवतम् सूत्रटीका ।
३. श्रीभागवतम् आर्थप्रकरणम् ।
४. श्रीभागवतम् आनुक्रमिका ।
५. श्रीभागवतम् मन्त्रसहस्रम् ।
६. श्रीभागवतम् तामावलिः ।

उक्तं च तेषां अथवा खण्डनाः प्राप्तं हैं ।

(१) श्रीभागवतम् गुणोच्चिती टीका—प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं दशम स्कन्ध का अन्तर्गत श्रीभागवतम् नाम के प्रथम चार अध्यायों पर ही उपलब्ध है, सम्पूर्ण श्रीभागवतम् का ही अन्तर्गत अन्तर्गत लिखित निरोध स्कन्ध (दशम स्कन्ध) की टीका पढ़ लेने पर यह अन्तर्गत अन्तर्गत है ।

(२) श्रीभागवतम् सूत्रटीका—यह केवल श्रीभागवत के प्रथम श्लोक (जन्माद्यस्य) का ही अन्तर्गत है : मुना जाता है कि समस्त टीका श्रीभागवत के मन्त्रसहस्रम् नाम के अन्तर्गत अन्तर्गत नहीं गई है ।

(३) श्रीभागवतम् आर्थप्रकरणम्—यह आचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ तत्त्वदीपनिबन्ध का अन्तर्गत अन्तर्गत है : श्रीभागवत ने श्रीभागवत के अर्थ का बड़ी ही निपुणता से अन्तर्गत अन्तर्गत का परिहार कर पूर्ण समन्वय स्थापित किया है ।

(४) श्रीभागवतम् आनुक्रमिका—यह ग्रन्थ बहुत सूक्ष्म कारिकाओं में समाप्त किया गया है : अन्तर्गत अन्तर्गत है । अन्तर्गत के दो महाकवि मूर और परमा-
हत्या के आचार्य ने श्रीभागवत अन्तर्गत अन्तर्गत का स्वरूप कराया था । यह ग्रन्थ श्रीभागवतम् आनुक्रमिका पर अन्तर्गत भाग में अन्तर्गत हो चुका है ।

(५) श्रीभागवतम् मन्त्रसहस्रम्—बल्लभ मन्त्रवाय में यह स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध एवं अन्तर्गत है । श्रीभागवतम् में श्रीभागवत का जो पुरुषोत्तमत्व प्रतिपादित है, उसी का अन्तर्गत अन्तर्गत के अन्तर्गत है । प्रथम स्कन्ध से लेकर द्वादश स्कन्ध की समाप्ति तक श्रीभागवतम् के अन्तर्गत अन्तर्गत का वर्णन है, उनका उल्लेख करते हुए आचार्य ने अन्तर्गत अन्तर्गत है । श्रीभागवतम् में यह मान्यता है कि एक बार पुरुषोत्तम नाम अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत के पाठ का पुण्यफल प्राप्त हो जाता है ।

(६) श्रीभागवतम् तामावलि—इस ग्रन्थ में निरोधस्कन्धीय (दशमस्कन्ध की) आचार्य के अन्तर्गत अन्तर्गत नामों का प्रकारभेद से अन्तर्गत किया गया है । जैसा कि अन्तर्गत अन्तर्गत है—अन्तर्गत अन्तर्गत के लिए अन्तर्गत ने निरोध श्लोक के आधार पर त्रिविध अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है । प्रथम वाल्मीकि के आचार्य के पाठ से श्रीकृष्ण में अन्तर्गत अन्तर्गत है । अन्तर्गत, श्रीकृष्ण के आचार्य के पाठ से श्रीकृष्ण में आसक्ति और

वचन्याय का प्रयत्न सफल हो। यद्यपि इस ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य भागवताथ का निरूपण है तथापि पहले उसका कथन न कर शास्त्राय (गीताथ) का वर्णन किया गया है क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदादि समस्त शास्त्रों का निष्कर्षिक है। श्रीमद्भागवत ही तत्त्वदीप है। अतनुत कृपया पस्ततर्दीप पुराणम् (श्रामद्भा० १२. १२. ६८) उसी के आचार पर आचार्य ने अपने ग्रन्थ का नामकरण किया है। तत्त्वार्थदीपनिबन्ध में आचार्य ने तीन प्रकार से

- १- शास्त्रार्थ प्रकरण (गीताथ प्रकरण)
- २- सर्व निरूप्य प्रकरण और
- ३- भागवतार्थ प्रकरण।

इस तीसरे प्रकरण में ही आचार्य ने श्रीमद्भागवत का अर्थ-प्रतिपादन किया है। किन्तु प्रथम (१-६) प्रकरण तीसरे का ही प्रतिपादक है। इसका प्रमाण शास्त्रार्थ प्रकरण के आचार्य नन्द-की उल्लेखों से मिलता है। इसमें कहा गया है कि 'ईश्वर' वाचक नाम के अन्वय में तत्त्वार्थ में 'ब्रह्म' स्तुतियों में 'परमात्मा' और भागवत में 'भगवान्' शब्द का अन्वय है। अतः ने अपने तीन प्रकरणों में क्रमशः तीनों नाम प्रयुक्त किये हैं।^१ अर्थात् प्रकरण-आचार्य का स्वरूप निर्धारण करते हुए भी कहा गया है कि वेद के पूर्वकाण्ड (अथर्ववेद) में श्रीहरि क्रियाशक्ति विशिष्ट यज्ञरूप है। दूसरे, अर्थात् ज्ञानकाण्ड में श्रीहरि (अथर्ववेद) ब्रह्मरूप है और क्रिया एवं ज्ञान उभयविशिष्ट अवतारी कृष्ण का निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है।^२

श्रीचैतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेदादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

प्रभुश्रुत श्रीचैतन्य—श्री चैतन्य अथवा गौराङ्ग का जन्म नवद्वीप बंगाल में सं० १५०२ ई० (सं० १४८५) में हुआ था। उस समय बंगाल की धार्मिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। लोग 'मत्तवादी' और 'मनसादेवी' की स्तुति पूजा को ही धर्म का सर्वस्व मानते थे। भक्तिक विद्वान् जगन्नाथ पर भी धारण का प्रभाव न था। बंगाल का तत्कालीन सबसे बड़ा विद्वान् श्री चैतन्य का जन्म स्थान नवद्वीप भौतिकता का शिकार बना हुआ था। अतः सारा के अर्थ में इतिहास ही थे।^३

१. इतिहास में श्रीचैतन्य के सर्वनिर्णयः।

गीता, भागवत, आदि अर्थ-प्रकरण

त० दी० नि० प्र० १, ५

२. अथर्ववेद में श्रीहरि का अर्थ-प्रकरण

अथर्ववेद में श्रीहरि का अर्थ-प्रकरण

त० दी० नि० प्र० १, ६

३. श्रीचैतन्य के अर्थ-प्रकरण

श्रीचैतन्य के अर्थ-प्रकरण

त० दी० नि० प्र० १, १२

४. श्रीचैतन्य के अर्थ-प्रकरण

श्रीचैतन्य के अर्थ-प्रकरण

इस समय बाईस वर्ष के युवक चैतन्य की अपारि एक प्रकार से पण्डित के रूप में फैल चुकी थी। जब वे अपने स्वर्गीय पिता का निष्ठ करने गया जयें तो वहाँ उन्हें 'ईश्वर-पुरी' नामक एक वैष्णव विद्वान का साक्षात्कार हुआ, वही ने चैतन्य की जीवन काग पघट गई। ईश्वरपुरी से चैतन्य ने भक्ति-धर्म की रीशा ले ली, उन्हें रसेदा श्रीकृष्ण की अनन्त मधुरिया के दर्शन हुए, यह वे भक्त्यदर्शित में दार्शनिक पण्डित रहने लगे। वे श्रुतिमान संकीर्तन करते हुए मन्दीरों में विद्यमान करने लगे। निन्दक पण्डितों के कारण उन्हें कपटी ब्रह्मा माना और तहसी पत्नी को घर छोड़कर पुरी जाकर रहना पड़ा। तन्हीने १ वर्ष तक भारतवर्ष का पर्यटन किया। श्री रामेश्वर, हुन्दावन तथा रामकेनि (गौड़ ब्याज) तक गए। पर्यटन काल में ही भारतवर्ष के दो दुग्धर विद्वान, जिनसे सत्रनों शिक्षण सांकर वेदान्त पढा करते थे, चैतन्य के भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। ये थे प्रकाशानन्द मरस्वती तथा वासुदेव मार्चभौस। इनके कारण चैतन्य सम्प्रदाय का प्रचार बड़ी तीव्रता से हुआ। इनके अतिरिक्त बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री कृष्णोन्दासी, श्रीसदानन्दोत्तमाओ तथा उनके भतीजे श्री जीवगोस्वामी भी चैतन्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। इन तीनों आचार्यों ने श्री चैतन्य के दार्शनिक मत तथा भक्ति सिद्धान्त पर अपूर्व साहित्य की सृष्टि की है। चैतन्य का मत अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और इनका कारण यह था कि चैतन्य ने लोक-मानस का स्वर्ण किया था। मोन्दर्यं, प्रेम, माधुर्य और आनन्द की ओर मनुष्य को स्वाभाविक प्रवृत्ति है ही। चैतन्य ने लोगों को भगवान् का यही मधुर रूप दिखावा और आश्वासन दिया कि ईश्वर के इस रूप का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की समस्त काननाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

चैतन्य का दार्शनिक सिद्धान्त—परब्रह्म श्रीकृष्ण—ब्रह्म अनादि और अनन्त है। वह सर्वव्यापक है। ब्रह्म में अपारिध सक्तियों और गुण अपनी चरमावस्था में विद्यमान हैं। ब्रह्म का अर्थ है, 'सबसे बड़ा'। 'बृहन्नोमुखा अस्मिन्निति ब्रह्म'। ब्रह्म अपने आकार गुणों और शक्तियों में सबसे बड़ा है।^१ यह पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण ही है। वासुदेव, विष्णु, नारायण, शिव तथा अन्य देव जिनके नाम रूपों तथा शक्तियों का बर्णन शास्त्रों में है, श्रीकृष्ण के ही विभिन्न रूप हैं। ये शक्ति श्री-गुणों में श्रीकृष्ण से न्यून हैं।^२ श्रीकृष्ण अद्वितीय है। वह सर्वतत्त्वस्वतंत्र है। वह विश्व का आदिकारण है। वह प्रत्येक वस्तु में तथा प्रत्येक वस्तु उसमें विद्यमान है। किन्तु श्रीकृष्ण एक मानव देहधारी है।^३ यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखें तो वह एक प्राकृत मानव धरीर से ही सीमित है, किन्तु बस्तुतः वह अनन्त और सर्वव्यापक है।^४ वह सर्वथा परिपूर्ण, आञ्जन्त-रहित, अपारिध, चिरनाश्व-युक्त तथा परम सुन्दर है।^५ यह श्रीकृष्ण का निज रूप है और अपनी इस अचिन्त्य शक्ति

१ श्री चैतन्यचरितामृत २. ४. ५३ तथा विश्वपुराण १. २२. २७

२ श्री लक्ष्मणवतामृतम् १. ३. ८६ से ९० तक

३ श्रीमद्भागवतम् ३. २. १२

४ श्रीचैतन्यचरितामृत १. ५. १५

५ वही २. २१. ८३

के कारण ही वह... सिद्ध करने का आशय है। वह दिव्यकाल-
 ... और मातृव्य के सम्बन्ध सम्भव रूप
 ... इसीलिए उसे 'रम' कहते हैं—
 ... 'कृष्ण' कहना है। 'कृष्ण' ही उसके
 ... नाम को सर्वोच्च
 ... है इन्द्रावर, वज्र अथवा दीकुल।

... का उदाहरण है, अन्त्य-प्रेम। प्रेम का
 ... और प्रेमात्मक
 ... की भावा और उदात्तता पद्धति के
 ... के अन्त का सामान्य लक्षण है
 ... लिए प्रेममय सेवा। वे स्वयं को

... की और स्वयं को सर्वोच्च मानते हैं।
 ... समकक्षक हैं उनके महत्त्वात्।
 ... होने के कारण परब्रह्म श्रीकृष्ण
 ... महत्त्वर तन्त्र और यद्यपि अपने को
 ... अपने अर्चित आशिक और पक्षगुण

... राजा प्रकृत है। तब उनकी भविष्य
 ... विकास हुआ है। शरीरिय शक्त्यावली
 ... के सम्बन्ध ब्यवहार, यहाँ तक कि
 ... और आस्था है। श्रीकृष्ण
 ... का भी वनगत अथवा नकाच नहीं
 ... गरी है।

... में सामाजिक हितों के सम्बन्ध
 ... श्रीकृष्ण और गोपियाँ
 ... श्रीकृष्णों को अपने-अपने तत्त्वलिखित

का भाग रहता है किन्तु महाभाव में श्रीकृष्ण और गोपियों को मन्मथिणादि का अनुसंधान नहीं रहता। दाम्पत्य ही सब से अधिक प्रसिद्ध और प्रबल सम्बन्ध है और यदि हममें से कुछ इन्द्रिय मुख की वासना को निकाल दिया जाय तो वह सम्बन्ध पवित्रताक बल जाता है। कृष्ण और गोपियों का प्रेम ऐसा ही है। इसका उद्देश्य प्रेम के शक्तिमत्त फल नहीं—विशुद्ध प्रेम।

महाभाव का चरम रूप भावत है। यह आनन्दवादी उन्मत्तभाव है एकमात्र राधा ही इसकी अधिकारिणी है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी नहीं। जब राधा में भावत भाव प्राप्त होता है तो श्रीकृष्ण के विषय और नैक्य के आनन्द के साथ ही विराह की अत्यन्त तीव्र वेदना भी उसमें मिली रहती है।

मानवजीवन का उद्देश्य—आनन्द की कामना मनुष्यमात्र में रहती है। उसकी समस्त क्रियाएँ आनन्द सम्पादन के लिये ही होती हैं किन्तु प्राणिक वस्तुओं में अभाव आनन्द की प्राप्ति व्यर्थ है। अतः आनन्द, माधुर्य और प्रेम के एकमात्र निधान श्रीकृष्ण ही हमें अभाव और वास्तविक आनन्द दान दे सकते हैं। अतः श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य होना चाहिये। इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए चैतन्य सम्प्रदाय में निम्नांकित पाँच साधनों पर जोर दिया गया है।

- १—श्रीकृष्ण भक्तों का संग
- २—श्रीकृष्ण-नाम का अखण्ड कीर्तन
- ३—श्रीकृष्ण की प्रेम लीलाओं का अवलोकन
- ४—श्रीकृष्ण की प्रकटलीला के नाम वृन्दावन में निकाल (यदि शरीर में न हो तो मानसिक रूप से ही)
- ५—श्रीकृष्ण की प्रतिमा का प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण-भाव में प्रवेश

उक्त साधनों पर दृष्टिपात करने से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है उक्त पाँचों साधनों का सविस्तर विवेचन और साहाय्य श्रीमद्भागवत में है। इन साधनों की सफलता के अर्थात्, साधु-संग, आचार-पालन, आदि जिन बातों सोचानों का चैतन्य सम्प्रदाय में सविस्तर बर्णन है उनका बहुत ही मुक्तिवृत्त और वैज्ञानिक विवेचन श्रीमद्भागवत में किया गया है।^१ अतः यह कहना अशुभ न होगा कि चैतन्य-सम्प्रदाय की आचार भूमि तत्त्वतः और व्यवहारतः श्रीमद्भागवत ही है। अतः आगे हम चैतन्य सम्प्रदाय के आगवत सम्बन्धी साहित्य का विवेचन करेंगे।

चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का महत्त्व

भक्ति के समस्त आचार्यों का लक्ष्य भक्ति सिद्धान्त को स्थापित कर शंकर के सायावांश का उन्मूलन करना था। चैतन्य सम्प्रदाय मध्य सम्प्रदाय के ही सम्बन्धित है। अतः चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्यों ने मध्वाचार्य (आनन्दतीर्थ) की स्तुति भक्ति प्रवर्धक के

१ उज्ज्वलनीलमणि (स्थापिनाम) २५५

२ श्रीमद्भागवत २, ३५, ३२-४५

यहाँ उनका निवरण दिया जाता है। साथ ही यह भी दिखाया जाता कि उनके सम्प्रदाय में भागवत को कितना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

श्रीभागवत सन्दर्भ—इसका प्रसिद्ध नाम 'मत् सन्दर्भ' है। इसके रचयिता श्री जीवगोस्वामी हैं। इस ग्रन्थ को सैन्य सन्प्रदाय में बहुत मान्यता है। इसमें श्रीमद्-भागवत का सांगोपांग अर्थ और रहस्योद्घाटन किया गया है। इसका 'सन्दर्भ' नाम ही बहुत उपयुक्त है। सन्दर्भ का लक्षण आचार्यों ने यह किया है कि जिसमें किसी ग्रन्थ के मुख्य अर्थ का प्रकाश, उसकी सारोक्तियों की श्रेष्ठता, उसकी सारांशिकता और उसके अर्थों का प्रतिपादन हो, वह 'सन्दर्भ' कहलाता है।^१ श्रीभागवतसन्दर्भ में ६ सन्दर्भों द्वारा श्रीमद्भागवत की उक्त रूप में वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। इन सन्दर्भों में श्रीजीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत को अपने मतानुसार किम मतक मूलरत्न के साथ व्याख्यात किया है। श्रीभागवत सन्दर्भ में छः सन्दर्भ हैं। इसीलिये इस ग्रन्थ को 'षट् सन्दर्भ' भी कहते हैं। इन सन्दर्भों के नाम क्रमशः ये हैं—

प्रथम—तत्त्वसन्दर्भः

द्वितीय—भगवत्सन्दर्भः

तृतीय—परमात्मसन्दर्भः

चतुर्थ—श्रीकृष्णसन्दर्भः

पंचम—भक्तिसन्दर्भः

षष्ठ—प्रीतिसन्दर्भः

श्रीभागवत सन्दर्भ के अनुबन्ध चतुष्टय में कहा गया है कि श्रीकृष्ण उस ग्रंथ के विषय उनका वाच्य-वाचक-प्रकाश सन्बन्ध, उनका प्रेम-लक्षणा प्रयोजन और भक्त अधिकारी हैं। किन्तु पुरुष (जीव) भ्रम, प्रमाद, विप्रतिष्ठा और करुणापादक इन दोष चतुष्टय से युक्त होने के कारण उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्ष विप्रमाण भी पक्षोप हीं और वे अत्यन्त अलौकिक अविन्य स्वभाव वस्तु (श्रीकृष्ण) को स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे। अतः अनादि-सिद्ध, समस्त लौकिकालौकिक ज्ञान के आदि कारण अज्ञात वचन लक्षण वेद ही उस अलौकिक वस्तु (श्रीकृष्ण) के परिज्ञान में प्रमाणा है। किन्तु वाच्य प्रमाणभूत वेद सम्प्रति बुरुह है और वेदार्थ का निरूपण करने वाले मुनियों में भी परस्पर विरोध है, अतः वेद के अर्थ का निर्णय करने वाले इतिहास और पुराण रूप वाच्य प्रमाण पर ही विचार करना चाहिये।^२ वेदार्थ को इतिहास पुराणों के द्वारा शुद्ध करना चाहिये।^३

१ मुहूर्त्तक प्रकाशमच मारोक्तिः श्रेष्ठता तथा ।

नानार्थवत्त्वं वेदत्वं सन्दर्भः कथ्यते इति ।

—टीकाकार वल्लभ विक्रमभूषण द्वारा जीवगोस्वामिद्वारा श्रीभागवत सन्दर्भ के अन्तर्गत उक्त सन्दर्भों की टीका में ।

२ वेदार्थनिर्णयकरवेत्तिहासपुराणप्रमकः अथ पर विकारबन्धिः । श्री भग० सं० तृथ सं० ६, पृ० ७

३ इतिहासपुराणान्तरं वेदं समुपई हवेत् ।

क व्यानादि लवणों से युक्त घर्मों को ही घर्म कहता है यह आगे स्पष्ट किया जायगा ।^१
मत्स्यपुराण में लिखा है कि त्रिसप्त गायत्री को अभिहित कर घर्म-विनाश करवाता है यह
वृत्रामुरवधोपेत प्रथम भागवत कहलाया है ।^२

श्रीमद्भागवत भगवान् और भक्त दोनों को मिला है, अर्थात् यह परमार्थग्रन्थ है ।^३
ऐसा पद्मपुराण में कहा गया है ।^४ स्कन्दपुराण में भी कहा गया है कि श्रीमद्भागवत का
महावद् विग्रह के सामने भक्ति सहित पाठ करने से कृपणशक्ति भक्तद्वारा प्राप्त होता है ।^५
श्री जीवगोस्वामी ने अनेक पुराणों के आधार पर श्रीमद्भागवत को महासुखों का भाण्ड
कहा है ।^६ और परमार्थ के इच्छुकों को एकमात्र श्रीमद्भागवत पर विचार करने की
सम्मति दी है ।^७

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत का महत्त्व प्रतिपादन करने के लिये श्रीमद्भागवत
पर अनेक आचार्यों को टीकाओं, भाष्यों और निबन्धों की रचना की है ।^८ उनमें से उल्लेखनीय
ये हैं—

१—तन्त्रभागवत - यह ह्युगोपेय पंचरात्र के शास्त्र प्रस्ताव में परिगणित है और
श्रीमद्भागवत का भाष्यरूप है ।

२—श्रीहनुमद्भाष्य

३—वासनाभाष्य

४—सम्बन्धोक्ति

५—त्रिदशकमधेनु

६—तन्त्रदीपिका

७—भावार्थदीपिका

८—परमहंसप्रिया

९—शुकहृदया, ये व्याख्यात्मक हैं और

१ श्रीभागवतसन्दर्भे प्रथमः त० सन्ध०, १६, सू० १४

२ यत्राभिक्रान्त गायत्री बहवते वेदविन्दरः । वृत्रामुरवधोपेतं तद्व्याख्यानमिच्छते ।

उद्धृत—श्रीवास० सन्ध० सू० ११

३ श्रीमद्भागवतस्य भगवत्प्रियत्वेन भागवताधीश्वरत्वेन च परमसत्त्विकत्वम् । तद्वसन्ध० सू० १४

४ पुराणं त्वं भागवतं पठन्ते पुरतो हरेः ।

चरितं दैवराजस्य प्रह्लादस्य च मूर्च्छे ।

× × राज्ञी तु कानरः कार्यः श्रोतव्या वैष्णवीक्या ।

पिता नामसहस्रं पुराणं शुकमाधिवन् ।

पठितव्यं प्रयत्नेन हरेः संतोषकारणम् ॥

उद्धृत तन्त्रदी० सू० १४

५ श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निवौ । जगद्रे नरपदं कालि कुलवृत्रसमन्वितः ।

६ पूर्वं सप्तत्वेन महत्त्याचिन्तं तदेवसंक्षिप्तं सप्तत्वेन पुनः सकथितं सत्त्वाद् विस्तारोक्तिं साधारणं
श्रीभागवतमिति ॥

तन्त्रदी० सू० १५

७ तदेवं परमार्थचिन्तितुभिः श्रीभागवतमेव सांग्रहं विचारणीयमिति लिखितम् ॥

तन्त्रदी० सू० १६

८ तन्त्रसंज्ञं सू० १७

१—मुक्ताफल

२—हरिजीला,

३—भक्ति रत्नावली । ये तीन निबन्ध ग्रंथ हैं ।

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत के ही आधार पर श्रीमद्भागवत को श्रीकृष्ण का रूप ही माना है ।^१ हेमाद्रिकार के वचन के आधार पर 'मुक्ताफल' से उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा है, 'वेद प्रभु के समान, पुराण मित्र के समान और काव्य प्रिया के समान उपदेश देते हैं । इन तीनों का सम्बन्ध श्रीमद्भागवत में मौजूद है ।'^२

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत को परम निश्चयस की प्राप्ति के लिये विचारणीय बनाया है और पौर्वापर्य के अविरोध के साथ अपने यद्सन्दर्भ में उसका विस्तृत व्याख्यान किया है ।^३ उन्होंने श्रीवर स्वामि की टीका का अनुसरण किया है । साथ ही द्रविड देश के विख्यात भक्तों, श्री (लक्ष्मी) से प्रवृत्त श्री वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामानुजाचार्य के श्रीभाष्यादि में उन्मिलित मतों का भी प्रामाण्य स्वीकार किया है ।^४ यही नहीं उन्होंने दक्षिण और गोंड देश के विख्यात माधवेन्द्रपुरी आर्य, विजयध्वज, व्यासतीर्थीदि विद्वानों के गुरु श्रीमद्वाचार्य के भागवततात्पर्यनिर्णय, भारततात्पर्यनिर्णय और ब्रह्मसूत्र के भाष्य से भी उदाहरण उद्धृत किए हैं । श्रीमद्भागवत का प्रामाण्य सिद्ध करने के लिए गरुड़, पद्म स्कन्दादि पुराण, महासंहिता, तंत्र भागवत, ब्रह्मवैवर्त तंत्र ग्रंथों से उद्धरण लिये हैं ।^५

श्री जीवगोस्वामी ने भागवत सदभं (षट् संदर्भ) में श्रीमद्भागवत का प्रयोजन भक्तवत्सलिकि जनक भगवत्प्रेम ही बतलाया है । और वह प्रेम तल्लीना श्रवणादि लक्षणा जगद्व्यञ्जन से ही उत्पन्न होता है ।^६ श्रीमद्भागवत के उन प्लोकों को श्री जीवगोस्वामी ने उद्धृत किया है जिनसे श्रीमद्भागवत का भक्तिपरकत्व सिद्ध होता है ।^७

१ अद्यो विमदुना श्रीकृष्ण प्रतिनिधिरूपमेवेदम् । न उक्तं प्रथमस्कन्धे—

कुर्वते स्वयामोपगते सर्वज्ञानादिभिः नहः ।

असौ मन्वदुशामेवः पुराणार्थोऽनुनेतिनः ॥

त० मन्दर्भ० पृ० १८

२ वेदाःपुराणं कुरुकुरु प्रमुचिंश्च शिष्येव च ।

शैश्वर्यानि हि दाहुःशिशुभ्रातृसंयुतः ॥

त० मन्दर्भ० पृ० २०

३ अदौ भक्त्याः संसम निरचक्षय श्रीमद्भागवतमेव पौर्वापर्यविरोधेन विचार्यते । तत्रास्तिन् मन्दर्भं पदप्रकारके अथे पुराणानौषमकारिणा वक्तव्यम् । विषय आक्षेप श्रीभागवतवाक्यम्..... ।

नरक संदर्भ २७, पृ० २०

४ मन्वदुशामेवः, पृ० २१

५ अदौ, पृ० १८

६ उक्तं प्रयोजनस्यः पुराणार्थेन तादृशप्रकारकित्तजनकं तत्प्रेम सुखमेव । नतोऽभिधेयमपि तादृशतत्प्रेम-
जनकं जगत्तया कथयतिरुक्तं कथं नवनमैवेत्यादात्सु । (श्रीभाग० मन्द०, त० मन्द० २१) पृ० २३

७ अतर्भेदसमं नारुद् भक्तिभोगप्रयोजके ।

शैश्वर्यानि हि दाहुःशिशुभ्रातृसंयुतः ।

असौ मन्वदुशामेवः पुराणार्थोऽनुनेतिनः ।

अदौ, पृ० १८ । शैश्वर्यानि हि दाहुः

पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया है और उसका परमसाध्य स्थापित किया है ।

भागवत सन्दर्भ क छहो मन्वन्त एक म एक अधिक मन्वन्तुः १ । प्रथम मन्वन्तुः द्रुप
 म श्री जगन्नाथस्वामी व श्रीमद्भागवत क नव मन्वन्तुः—महाविष्णुगत वा भविष्यत् कर्ण
 किया है और सर्गादि क मन्वन्तुः १) पुराणों के साथ ही हम मन्वन्तुः के आधार
 पर अल्प और महापुराण के जो मत हैं उनकी समीक्षा करते हैं, उन्होंने श्रीमद्भागवत को
 महापुराण कहा है ।^१

श्री जीव ने कहा है कि मैंने भागवत सन्दर्भ में क्रमशः विस्तार में छह मन्वन्तुः के
 श्रीमद्भागवत का तात्पर्य निर्याय किया है ;^२ प्रथम मन्वन्तुः में परमात्मतत्त्व का
 वेद्यवस्तु ब्रह्म का निरूपण है । द्वितीय मन्वन्तुः में अद्यतत्त्व, तृतीय में परमात्मतत्त्व, चतुर्थ
 में श्रीकृष्णतत्त्व, पंचम में भक्तितत्त्व और अन्तिम षष्ठ मन्वन्तुः में प्रीतितत्त्व का बहुत ही
 मार्मिक विवेचन हुआ है । वास्तव में श्री जैनस्य सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर जीवयास्वामी
 ने 'षट् मन्वन्तुः' द्वारा श्रीमद्भागवत का जो गूढ़ रहस्योद्घाटन किया है, वह अन्य सम्प्रदायों
 में दुर्लभ है ।

बृहद्भागवतामृतम्—इस विशाल ग्रन्थ के रचयिता श्री मनातनमोस्वामी हैं ।
 इस पर बलदेव विद्याभूषण की 'दिग्दर्शिनी' नामक विस्तृत टीका है । यह एक परमविद्वत्ता-
 पूर्ण विस्तृत ग्रन्थ है ; इसमें दो खण्ड हैं । प्रथमखण्ड का नाम है 'भागवत्कृपाभर-सिद्धी-
 खण्ड' । इस खण्ड में ७ अध्याय हैं । द्वितीय खण्ड का नाम है 'गोविन्द महात्म्यखण्ड' ।
 इसमें भी बड़े-बड़े ७ अध्याय हैं ।

बृहद्भागवतामृत में श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति का ही-निर्णायक गोपी प्रेम का ही—
 अत्यन्त विस्तृत विवेचन एवं प्रतिपादन किया गया है । इसमें जनमेजय और जैमिनि का
 सम्वाद है ।^३

१ तत्त्वसन्दर्भ, पृ० ४६

२ अथ श्रीभागवतस्य महापुराणस्य सर्वकालत्रयं प्रकाशनाय च यदन्तर्गते तस्यैवाध्यायस्य—
 मन्वन्तुः पृ० ४२

३ अथ क्रमेण विस्तरतस्तत्रैव तात्पर्यं निरर्थं सम्बन्धामिधेयप्रदो जनेषु यस्मिः मन्वन्तुः तेषामुक्तेषु
 प्रथमं यत्त्वं वाच्यवाचकना सम्बन्धीदं शास्त्रं, तदेव धर्मः प्रीतिरुक्तवेषादि पक्षे सान्नायकारण-
 स्तावदाह । वेद्यं वास्तवमत्र वसिष्ठति ॥

टीका च—'अथ श्रीमनि मुन्दरे भागवते कान्त्यं परमात्मतत्त्वं वस्तु वेद्यं न तु वैरीशिकादिक् इत्य-
 उखादि रूपम्' इत्येषा ॥ श्री वेद-श्यामः ॥१०॥ मन्वन्तुः पृ० ३७

४ भागवत्प्रकृतिशास्त्राख्यमयं नारस्य संग्रहः

अनुभूतस्य जैनस्यदेवे तस्मिन् रूपे नः ॥

अथान्तु वेद्येषाः शास्त्रमिदं भागवतामृतम् ।

सुगोप्यं प्राह यत् प्रेम्णा जैमिनिर्जनमेवमन् ३११-१२॥ श्रीबृहद्भागवतामृतम् खण्ड १, अध्याय १

करने के लिए अस्वीकार हुए तभी हम विद्वान् कर्मि वेद कर्मि हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का कर्म-मोक्षियों से निरपेक्ष प्रेम है अतः उनका नाम है बलवतीमनसवन्तः^१ किन्तु श्रीकृष्ण का मोक्षियों से अज्ञान प्रेम है अतः मोक्षियों का परम मातृभक्त्यन्तर्गत है। वे श्रीकृष्ण की निरपेक्ष, निकर्ण प्रेम विषया है। उदात्तिये निरपेक्ष प्रेम के अर्थ अज्ञान प्रेम का अर्थ है।^२ श्री चैतन्यदेव यद्यपि भगवदन्तार से यद्यपि विशेष रूप से प्रेक्षक के विशेष प्रकाशन करने के लिए वे भूतिमान् मोक्षिभार के अर्थ हैं।^३ उदात्तिये मोक्षियों का ही सर्वसे अधिक मातामय प्रतिपादन किया गया है। श्रीकृष्णमय से ही श्रीकृष्ण से मोक्षियों में कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यममृतम् त्वमममृतम् (कृष्ण/पुष्पादि ४) ।
या नामजन्तुं दुर्भोग्यममृतम् । अमृतं तत्रा जन्तुं वाचुम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० ३० ०२)

अन मोक्षियों का मृत्यु अतिवैचल्य है।

वृद्धभागवतामृत पूर्णतया श्रीमद्भागवत की ही आधार मानकर उसके समस्त अर्थ-मन्त्र का समीक्षा वर्तित करना है तथा अपने सिद्ध नवी प्रासादिकता के लिए श्रीमद्भागवत के अन्त ही उद्धृत करना है।

श्रीकृष्णभागवतामृतम् — इस पद्य के रचयिता श्री कृष्णोन्वासी हैं। इस पर श्रीकृष्णदेव विद्याभूषण की 'टिप्पणी' नामक किम्बदन्ती टीका है। लघुभागवतामृत में 'पूर्ववर्ण' और 'उत्तरवर्ण' नामक दो वर्ण हैं। प्रथमकार ने लघुभागवतामृत का ही अर्थ किया है—'उत्तरवर्ण और भवनामृत'।^४ श्री कृष्णोन्वासी ने कहा है कि श्री महात्मन गोष्वाधी ने वृद्धभागवतामृत में जो कुछ विचार से कहा है, मैं उस मध्ये से लूँगा।^५

लघुभागवतामृत में श्रीमद्भागवत की आधार मानकर अनेक विषयों का बहुत सुन्दर सप्रमाण निरूपण किया गया है। विशेषकर भगवत्तन्त्र और अक्षरार्थत्व का निरूपण अत्यन्त वैज्ञानिक रूप में किया गया है। इनके श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण के स्वयंरूप, लोकात्मरूप और अक्षरार्थ इन विविध रूप का निरूपण है।^६ और फिर

१ जयति निरवद्यममृतम् त्वमममृतम्
निर्विषयभुक्तिमात्रेण तेषामि ज्ञानोन्वासी ।
नानामदमान् प्रेम के अर्थ अज्ञान—
अनुभवप्रदान प्रेक्षकिये (निरपेक्ष) ।
वधा—
श्रीकृष्ण श्रीमन्मन्त्रवन्तकीपु अस्मि निरपेक्ष प्रेम अज्ञानोन्वासीकर्मवन्तः ॥ अर्थी ३० ३
= वही ३० ३
२ यद्यपि श्रीचैतन्यदेवो भगवदन्तार से यद्यपि प्रेम भक्ति विशेष प्रकाशनार्थ—
स्वयंभवतोऽर्थं वाचो न तदर्थं स्वयं मोक्षिभारोऽपि अर्थः ॥ वृद्धभागवतामृत टीका, ३० ३
३ लघुभागवतामृत, १.१.१०
४ श्रीमत्पुष्पादि-मोक्षैः श्रीमद्भागवतामृतम् :
यद् व्यक्तं तदेवं संज्ञेयं निवेद्यते ॥११॥ लघुभागवतामृत १.१.११
५ लघुभागवत १.१.१०

पुरुषावतार और लीलावतार कहे गये हैं । इनका क्रमशः विस्तृत विवचन है । पुरुषावतारों में भागवतोक्त प्रथम ऋताय और तृतीय गुणावतारों में ब्रह्मा रुद्र विष्णु धन्वतर और लीलावतारों में चतुस्र, नारद बराह मत्स्य यज्ञ नर-नारायण कपिल, दत्तात्रय हयग्रीव हंस ध्रुवप्रभा कपभ पृथु, नृसिंह कूर्म घन्वन्तरि माहिना वामन अष्टाश्व, राम, राम-बनाराम और श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का निरूपण किया गया है ।

अ. ३- १०३ के आधार पर विष्णु का सत्त्वतनुत्व और निर्गुणत्व यहाँ भी प्रतिपादित किया गया है । जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

एगिहि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतः परः ।
 ॥ सर्वदंगुपद्रष्टा त भजन्निर्गुणो भवेत् ॥

श्रीमद्भागवत (१०।८।१५)

यह गुण-महान करने से निर्गुणता प्राप्त होती है । सत्त्वतनु से सब प्रकार का मंगल सम्पन्न होता है । यह भागवत में कहा भी गया है । अतः विष्णु भक्ति की नित्यता है । श्रीमद्भागवत में निर्गुण भजन का आग्रह किया गया है । (श्रीमद्भाग० १।२।२६)

श्रीमद्भागवत-मूल में भी भागवत के आधार पर विष्णु से ब्रह्मा रुद्रादि की न्यूनता प्रतिपादन की गई है ।

समस्त अज्ञान विकृत अचिन्त्य-शक्ति के आश्रय हैं, किन्तु अचिन्त्यत्वादि दोषों के आश्रय नहीं हैं । वह भी इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत के पष्ठ स्कन्धीय गद्य के आधार पर प्रतिपादित किया है ।

शान्ति-प्रकरण-भागवतोक्त वामदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अतिरुद्र—इन चारों व्यूहों का प्रतिपादन तथा वसुधैव कुटुम्बकम् के सम्बन्ध में मतभेदों का उल्लेख करते हुए उसकी वैज्ञानिक गणना की गई है ।

१. भागवत- १०३ ।
२. विष्णु-सम्पत्- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
३. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
४. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
५. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
६. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
७. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
८. भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।
 भागवत- १०३ । शान्ति-प्रकरण- १०३ ।

और गीष्म कारक शक्रपुत्र नाम की निर्यता भादि विषय निर्धारण किय गये हैं ।

श्रीकृष्ण की माधुरा सबसे अधिक पाक्युन में प्रकट हुई है ।^१ यह माधुरी कतुम्बिका है

- १—सर्व माधुरी
- २—कीटा माधुरी
- ३—वेणु माधुरी
- ४—श्रीविग्रह माधुरी^२

लघुभागवतामृत के उत्तरखण्ड में भक्त-पूजा की आवश्यकता और भक्त की महत्ता प्रतिपादन की गई है और विष्णु की आराधना में भी वैष्णव की आराधना खेपक बताई गई है ।^३ श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है—मद्भक्तपूजाम्बुधिका । (११।१३.५१) जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद, पाण्डव, यादवगण, उद्धव और ब्रज गोपिकाओं को परम भक्तों के रूप में महत्त्व प्रदान किया गया है, उसी प्रकार लघुभागवतामृत में भी इनका महत्त्व प्रतिपादन किया गया है । गोपियों को तो भगवान् ने लक्ष्मी और अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय बताया है ।^४ श्रीमद्भागवत में उद्धव के द्वारा गोपियों का महत्त्व निरूपण कराया गया है । (श्रीमद्भागवत १०. ४७. ६१) गोपियों में भी राधा सर्वश्रेष्ठ है ।^५ गण-पुराण में आया है —

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।

मर्त्रगोपीषु सर्वैका विष्णोरत्नमन्वया ॥

लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७१

आदिपुराण में—

श्लोकं पृथिवी धन्या दत्तं मुन्दायनं पुरी ।

तत्रापि गोपिकाः पार्थं तत्र राधाभिवा मम ॥

लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७२

१ तत्रापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वमोऽविका ॥१००॥

लघुभाग० ३० २५४

२ लघुभाग० माधुरी तस्य ब्रजस्य विराजते ।

लघुभाग० ३० २५३

३ अश्वत्थीहयोर्वेणोस्तया श्रीविग्रहस्य च ॥१०३॥

४ आराधनं मुकुदत्वं भवेदावश्यकं यथा ।

लघुभाग० उत्तरखण्ड ११ १० २६१

तथा सर्वविभक्तानां नो वेदोषोऽस्ति दुस्तरः ॥

५ न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च परमेश्वर ।

लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७०

न च लक्ष्मीर्न चात्मा च यथा गोपीश्लो मम—

६ तत्रापि सर्वगोपीनां राधिकान्विद्वरीवसी ।

लघुभाग० ३० २७१

सर्वाभिव्येन कविना कतपुराणावमादिषु ॥

उज्ज्वलनीलमणि—इस ग्रंथ के रचयिता जी श्री कण्ठोन्वामी हैं। अपने ग्रंथ भक्तिरत्नामृतमिन्धु में श्री रूप गोस्वामी ने शुक्यार भक्ति रस के आतिरिक्त अन्य सभी भक्ति रसों का सविस्तर निरूपण कर दिया था किन्तु चैतन्य सम्प्रदाय में शुक्यार-भक्ति का जो उज्ज्वल रूप प्रकृत हुआ है उसका सामोपाय, मुख्यतः विष्णु-विशेषण करने के लिए उन्होंने शुक्यार भक्ति रस पर यह स्वतंत्र ग्रंथ लिखा। चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति में शुक्यार रस को 'उज्ज्वल रस' अथवा 'मधुर रस' कहा जाता है। यह सबसे मुख्य रस है, भक्तिरत्नराट है और अत्यन्त गौनीय माना गया है।^१ श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा कि भागवत प्रसंगों में अतिरिक्त संज्ञान श्री रूप ने भक्तिरत्नामृतमिन्धु में भी धर्मशिक्षण नीलमणि के समान समुज्ज्वल पदक उल्लेखन 'उज्ज्वल रस' का उद्घाटन अपने अत्यन्त अन्तरंग सुहृदजनों के लिए किया है।^२

भक्तिरत्नावली—इस भक्ति प्रतिपादक ग्रंथ के रचयिता स्वामी श्री विष्णुपुरी थे। ये श्री चैतन्य के समकालीन थे। विष्णुपुरी ने श्री चैतन्य की प्रेरणा से श्रीमद्भागवत के अनन्य भक्ति प्रतिपादक सांग्रभूत ग्रंथों को लेकर 'भक्तिरत्नावली' का ग्रंथ लिखा। उस पर अपनी मौलिक समकृत टीका लिखी। वस्तुतः श्री विष्णुपुरी जी चैतन्य सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं थे। वे विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः भक्तिरत्नावली चैतन्य सम्प्रदाय का ग्रंथ नहीं है। किन्तु इसके रचयिता के चैतन्य से धर्मविक प्रभावित होने के कारण ही यहाँ इसका उल्लेख कर दिया गया है। इस ग्रंथ में श्रीमद्भागवतदोक्त भक्ति की महिमा, नवधाभक्ति और भगवच्छरणसागति का विशद विवेचन है। श्री विष्णुपुरी ने कहा है कि जो लोग किसी कारण से समस्त श्रीमद्भागवत का अध्ययन नहीं कर सकने उनके लिए मैंने 'भक्तिरत्नावली' का ग्रंथ किया है।^३

जब हमने भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की बढ़ती मान्यता का दिग्दर्शन करते हुए तत्तत् आचार्यों एवं सम्प्रदायानुयायी विद्वानों द्वारा प्रकीर्त भागवत-साहित्य का सक्षिप्त आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। परन्तु श्री सप्तकालीन हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य के अष्टा विभिन्न कवि उपर्युक्त जिन-द्विन सम्प्रदायों के अनुयायी रहे हैं, उन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इन्हीं सम्प्रदायवाच्यों द्वारा स्थापित हुआ है।

श्रीमद्भागवत की भक्ति पद्धति में चैतन्य सम्प्रदाय, बसन्त सम्प्रदाय तथा हिसहिरि-वश का राधावल्लभ सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।^४ किन्तु तब यह है कि

^१ मुख्यरत्नेषु पुरा यः संक्षेपोदितो रहस्यत्वार।

पृथगेव भक्तिरत्नराट स विस्तरेऽबोधने न सुरः।

उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ४

^२ उज्ज्वलनीलमणि श्रीगिरिनाथ चक्रवर्तीकृत ज्ञानरत्नमिन्धु का व्याख्या, पृ० २

^३ निखिलभागवतश्रवणालया

बहु कथाभिरशानवकाशिनः

अथमर्थं ननु ताननु मार्थका-

भवतु विष्णुपुरी प्रथमप्रश्नः ४

भक्तिरत्नावली पृ० ८

^४ राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य (दो० विप्रदेवदत्त स्वामीक) पृ० १२

द्वितीय अध्याय के विषय में यह निश्चय है। अ
सा केन्द्रिक विषय में ही विज्ञान के द्वारा
यह ही सम्भव है।

चतुर्थ अध्याय

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्त्व

दूसरे अध्याय में हम कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत महापुराण का व्यावहारिक दर्शन भक्ति दर्शन है। किन्तु यह भक्ति तत्त्व इतना व्यापक और विज्ञान है कि उसके एक-दोसरे का भी सम्बन्ध निरूपण करना दुष्कर कार्य है। इसी प्रकार इस पुराण का ज्ञानपक्ष भी इतना दुरुह, सम्भरीर, विशाल और मनमन्थवी है कि 'मुह्यन्ति यत्सुगमः' की उक्ति उस पर सर्वथा चरितार्थ होती है। मूल रूप से, श्रीमद्भागवत का आचार-पक्ष और विचार-पक्ष दोनों ही प्रतिशय शक्तिशाली हैं और इन दोनों ही उकों का गहरा प्रभाव समस्त मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साहित्य पर पड़ा है। प्रस्तुत पंक्तियों में विशेषकर मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य के मन्थन में श्रीमद्भागवत के उन तत्त्वों के निरूपण की चेष्टा की गई है, जिनका स्पष्ट प्रभाव हम भक्ति-साहित्य पर प्रथम स्थूल दृष्टिगत में ही अनुभव कर सकते हैं। इन भागवतीय तत्त्वों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) सामान्य और (२) विशिष्ट। सामान्य तत्त्व न केवल हिन्दी के ही बहुत कृष्णभक्ति और रामभक्ति साहित्य को प्रभावित करते हैं, अपितु अन्य भारतीय भाषाओं के मधुल भक्ति-साहित्य के प्रतिरिक्त उनके निर्गुण भक्ति-साहित्य पर भी उनका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ नाब महिमा को लीजिए। भगवन्नाम की प्रमोद भक्ति के सम्बन्ध में निर्गुण भक्त कवीर^१, मगुण कुर्याभक्त सुर^२ और सगुण रामभक्त तुलसी^३ तीनों ही एकमत हैं। इन प्रकार 'नाब माहात्म्य' वह सामान्य भक्ति-तत्त्व सिद्ध होता है, जो समस्त मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साहित्य का एक प्रमुख वर्ण विषय है। इसी प्रकार

१ कवीर सुमरिन सार है, और नकल संशोधन

आदि अन्त सब मोधिया। दूना देखी काल ॥

—कवीर प्रभाकरी पृ० २। सं० १५०। सु० दाम, जा० प्र० पन्ना १२४७।

२ जो जो न नरवो हरिनाम लिई।

सुवा फदावन यनिकः तारी, व्याध नरवो सरप्रार लिई।

अन्तर दार जु मिली व्यास को एक चित है भावकत किई ॥

—सुरदासर (सं० प्र० सभा काशी) वर २२

३ मगुण राम के नासु बर, परदापक नरदासि।

रामचरित सतकोटि महौ, लिय सहेन विश मानि ॥

—रामचरितमानस, दालकाण्ड, (प्रथोपकाण्ड)

यत्कर्मनिर्बलपक्षा कामवैराग्यतयम् ननु ।
 योगे नदानधर्मस्य श्रेयोभिन्निरंगम् ॥
 सर्वं मद्भक्तियोगेन ननुभक्त्या नभयेऽञ्जना ।
 स्वर्गापवर्गं मद्दाम कर्षयिष्यदि दास्यन्ति ॥
 न विचिन्तायको योगि भक्ता प्रयेणान्तिमो मम ।
 दास्यन्त्यपि मया ननु श्रेयस्यस्यनर्षयम् ॥^१

अर्थ—स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'शर्म, नम, प्राण, वेदात्म्य, योग, दात-धर्म तथा अन्यान्य श्रेय साधनों से जो कुछ स्वर्ग, अण्डर्ग, शब्दा, मेरु परमधाम आदि प्राप्त होते हैं, वह सब यदि इच्छा करे तो मेरा भक्त मेरी भक्ति द्वारा ही तुलमहा मे प्राप्त कर सकता है। मेरे अनन्य भक्त मेरे देते पर भी भक्ति के प्रतिनिष्ठ लैकन्य की भी कामना नहीं करते।' हिन्दी-भक्ति-साहित्य में सर्वत्र इस त्रिसाराधार का समर्थन प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है।

२—स्तुति—भगवन्-स्तवन भक्ति का ही एक प्रमुख अंग है। आर्त होकर भगवान् की अमीम भक्ति, अपनी अत्यन्त शक्तिहीनता, भगवान् की अकल्पितता और अपनी कल्पपरता का ऋजुभाव से कथन करने से जीव को परमशान्ति का अनुभव होता है। भगवान् भी परितुष्ट होते हैं—स्तोत्रं कस्य न तुष्टये, वैदिक ऋचाएँ स्तुति के प्रतिनिष्ठ और क्या हैं? आदि मानव ने सबसे पहले स्तुति की ही अपनी वाञ्छा सिद्धि का साधन बनाया। संस्कृत का स्तोत्र साहित्य कितना समृद्ध एक मनोरम है, मूर्धीजनों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्तोत्र साहित्य में कितने ही ऐसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं जो भक्तों को महाकाव्यों के रसास्वादन से भी अधिक करने भक्तिरस के आस्वादन की ओर आकर्षित करते हैं। स्तुति की महती शक्ति का उल्लेख करने हुए उपमन्यु ने अपनी पिछ स्तुति में कहा है कि हे प्रभो! तुम्हारी तो स्मृति ही पतितपावनी है। यदि कहीं उसमें स्तुति का योग और हो जाय तो कतना ही क्या है। दुःख तो स्वभाव से ही मधुर होता है, यदि कहीं उसमें मफेद जकड़ और मिल जाय तो उनका स्वाद कितना मधुर और हृद्य हो जाय।^२

श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि बिना स्तुति-युक्त कर्षी भक्ति के भगवान् की प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है।^३ भक्ति के साधनों में स्तुतिवान एक प्रमुख और अनिवार्य साधन बताया गया है।^४ श्रीमद्भागवत में भगवान् की कितनी अधिक संख्या में और कितनी सुन्दर स्तुतियाँ हैं बसो अन्य पुराणों में दुर्लभ हैं सम्भवतः शलम्भ हैं। एसा लगता है मानो यह पुराण भगवत्स्तुति के उद्देश्य से ही रचा गया है।

१ श्रीमद्भागवत १.१२.७३२-७४४।

२ त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतिरुक्ता नहि भक्तुर्मता सा ।
 मधुरं हि पदः स्वभावतो ननु कीदृक् कितशःश्रीर्निवतम् ॥ —उपमन्युकृत शिवस्तवन स्तोत्र २।

३ श्रीमद्भागवत ७.१२.७१।

४ परिनिष्ठा च पूजार्था स्तुतिभिः लक्ष्मं मम । —श्रीमद्भागवत १.१.१२२०।

| | |
|-------------------------------|-----------|
| वर्धमन्त्रविष्णुत भगवत्स्तुति | संख्या २१ |
| देवहृदिष्ठन कणित स्तुति | " २६ |
| जीवहृत्न भगवत्स्तुति | " ३१ |
| देवहृदिष्ठन कणित स्तुति | " ३६ |

३ स्कन्ध —

| | |
|---------------------------------|----------|
| अत्रिकृत विद्वत् स्तुति | संख्या १ |
| देवहृत्न कृत सन्नागदास्य स्तुति | " १ |
| दक्षहृत्न विद्वत्स्तुति | " ७ |
| दक्षहृत्न विष्णु स्तुति | " ७ |
| ऋत्विगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| सदस्यगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| सद्वक्त्र विष्णु स्तुति | " ७ |
| भृशुकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| उन्द्रकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| यज्ञपत्नीगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| ऋषिगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| सिद्धागणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| यजमानकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| नोकपालगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| योगेश्वरगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| वाक्त्रब्रह्मकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| अग्निकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| देवगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| गन्धर्वगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| विद्याधरगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| विप्रगणकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| ध्रुवकृत विष्णु स्तुति | " ७ |
| बन्दीप्रसक्त पृथु स्तुति | " १६ |
| पृथ्वीकृत पृथु स्तुति | " १७ |
| पृथुकृत विष्णु स्तुति | " २० |
| सद्वक्त्र विष्णु स्तुति | " २४ |
| प्रचेतागणकृत विष्णु स्तुति | " ३० |

पंचम स्कन्ध—

राजा रहरसकृत भगवत्स्तुति
 दिवङ्गत भगवत्स्तुति
 भद्रश्रवाणसकृत हृषीकेश स्तुति
 प्रह्लादकृत वृषभिह स्तुति
 जकमीकृत भगवत्स्तुति
 मनुकृत मत्स्यावतार स्तुति
 अर्षमाकृत कृपावतार स्तुति
 पृथ्वीकृत वराहावतार स्तुति
 हनुमत्कृत राम स्तुति
 नारदकृत नरनारायण स्तुति
 हंसानि चतुर्वर्णकृत सूर्य स्तुति
 श्रुतश्रवादि चतुर्वर्णकृत चन्द्र स्तुति
 कुशलादि चतुर्वर्णकृत अग्नि स्तुति
 पुष्पादिवचतुर्वर्णकृत जलदेवता स्तुति
 ऋतव्रतादि चतुर्वर्णकृत वायुदेवता स्तुति
 पुष्करद्वीपवानिकृत ब्रह्म स्तुति
 नारदकृत संकर्षण स्तुति

षष्ठ स्कन्ध

प्रजापतिदशकृत भगवत्स्तुति (हंसपुत्रस्तोत्र
 कबलाश्रवादिकृत भगवत्स्तुति
 विश्वरूपोपदिष्ट भगवत्स्तुति (नारायण कव
 देवदशकृत भगवत्स्तुति
 कृत्वासुरकृत भगवत्स्तुति
 नारदकृत संकर्षण स्तुति
 विमकेतुकृत संकर्षण स्तुति
 बुधदेवोपदिष्ट विष्णु स्तुति
 बुधदेवोपदिष्ट जकमीनारायण स्तुति

सप्तम स्कन्ध—

महाकृत वृषभिह स्तुति
 रघुकृत वृषभिह स्तुति
 दन्वकृत वृषभिह स्तुति
 ऋषियसकृत वृषभिह स्तुति

| | | |
|--------------------------------|--------|----|
| पितृगणकृत वृषिह स्तुति | अध्याय | ८ |
| सिद्धगणकृत वृषिह स्तुति | " | ९ |
| विद्याधरगणकृत वृषिह स्तुति | " | १० |
| नायगणकृत वृषिह स्तुति | " | ११ |
| मनुगणकृत वृषिह स्तुति | " | १२ |
| प्रजापतिगणकृत वृषिह स्तुति | " | १३ |
| गंधर्वगणकृत वृषिह स्तुति | " | १४ |
| चारुगणकृत वृषिह स्तुति | " | १५ |
| यक्षगणकृत वृषिह स्तुति | " | १६ |
| किम्बुद्वगणकृत वृषिह स्तुति | " | १७ |
| वैतालिकगणकृत वृषिह स्तुति | " | १८ |
| किन्दरगणकृत वृषिह स्तुति | " | १९ |
| विष्णुपार्षदगणकृत वृषिह स्तुति | " | २० |
| प्रह्लादकृत वृषिह स्तुति | " | २१ |
| ब्रह्माकृत वृषिह स्तुति | " | २२ |

टम स्कन्ध—

| | | |
|------------------------------|--------|----|
| गजेन्द्रकृत भगवत्स्तुति | अध्याय | ३ |
| ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति | " | ४ |
| ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति | " | ५ |
| प्रजापतिगणकृत भगवत्स्तुति | " | ६ |
| शिवकृत भगवत्स्तुति | " | ७ |
| कश्यपोपदिष्ट भगवत्स्तुति | " | ८ |
| भद्रिककृत भगवत्स्तुति | " | ९ |
| ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति | " | १० |
| राजा सत्यव्रतकृत भगवत्स्तुति | " | ११ |

म स्कन्ध—

| | | |
|-------------------------------|--------|---|
| सम्बरोषकृत सुदर्शनचक्र स्तुति | अध्याय | ५ |
| अशुमानकृत कपिल स्तुति | " | ६ |

स्कन्ध पूर्वोर्ध्व—

| | | |
|------------------------------------|--------|----|
| ब्रह्माशुवाकृत भगवत्स्तुति | अध्याय | २ |
| वन्दुदेवकृत भगवत्स्तुति | " | ३ |
| देवकीकृत भगवत्स्तुति | " | ४ |
| सत्यव्रत एवं भगिणीकृत कृष्ण स्तुति | " | १० |
| ब्रह्माकृत कृष्ण स्तुति | " | ११ |

नारदकृत कृष्ण स्तुति
 इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति
 सुरभिकृत कृष्ण स्तुति
 बस्यकृत कृष्ण स्तुति
 बोधीयराकृत कृष्ण स्तुति
 गोपीयराकृत कृष्ण स्तुति (गोपीगीतः)
 नारदकृत कृष्ण स्तुति
 मकरकृत कृष्ण स्तुति
 सुदामामालीकृत कृष्ण स्तुति
 मकरकृत कृष्ण स्तुति

इशम स्कन्ध उत्तरार्ध—

मुचुकुन्दकृत कृष्ण स्तुति
 जाम्बवानकृत कृष्ण स्तुति
 पृथ्वीकृत कृष्ण स्तुति
 माहेश्वरश्चरकृत कृष्ण स्तुति
 श्री रुद्रकृत कृष्ण स्तुति
 राबानुगकृत कृष्ण स्तुति
 वसुधाकृत बलराम स्तुति
 कौरवगणकृत बलराम स्तुति
 नारदकृत कृष्ण स्तुति
 गजासकृत कृष्ण स्तुति
 नारदकृत कृष्ण स्तुति
 गजागणकृत कृष्ण स्तुति
 पाण्डवगणकृत कृष्ण स्तुति
 मुनिगणकृत कृष्ण स्तुति
 वसुदेवकृत कृष्ण स्तुति
 शनिकृत कृष्ण स्तुति
 राजा बहुलाश्वकृत कृष्ण स्तुति
 धृतराष्ट्रकृत कृष्ण स्तुति
 वेदकृत कृष्ण स्तुति

एकविंश स्कन्ध—

देवसकृत नरनारायण स्तुति
 करमाजनीपदिष्ट भगवत्स्तुति
 देवसकृत कृष्ण स्तुति
 उद्धवकृत कृष्ण स्तुति

द्वादश स्कन्ध—

| | |
|------------------------------|----------|
| याज्ञवल्क्यकृत आदित्य स्तुति | अध्याय ६ |
| मार्कण्डेयकृत भगवत्स्तुति | " " |
| मार्कण्डेयकृत शिवस्तुति | " १० |
| सूतोपदिष्ट कृष्ण स्तुति | " ११ |
| सूतोपदिष्ट कृष्ण स्तुति | " १३ |

श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियों का सारांश

परब्रह्म परमेश्वर समस्त सूतग्रन्थियों के बाह्य-भीतर अत्यन्त भाव से स्थित है। वह प्रतापि, अनन्त, अलण्ड और अविनाशी है।^१ वह महामहिम्न अलक्ष्यवृत्ति परमपुरुष जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप लोका के लिए मन्त्र, रज और लय रूप तीन शक्तियों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीन रूप धारण करता है।^२ ब्रह्म का साकार नारायण रूप समस्त अवतारों का मूल उद्भव स्थान है, जिसे उसने लक्ष्मणहृदय धारण किया है। ब्रह्म का जो आनन्दमात्र निर्विकल्प और अलण्ड तैजोमय निर्गुण स्वरूप है वह साकार मण्डल रूप से किंचित भी भिन्न नहीं है। वह वस्तुतः अज्ञान होकर भी स्वनिर्मित देव, तिर्यङ्, मनुष्य आदि जीवियों में स्वेच्छा से गरीर धारण कर धर्म मर्यादा की रक्षा के लिए अनासक्त भाव से विविध क्रीडार्थ करता है।^३ समस्त जीव उसकी माया से बराबर जन्म लेकर संसार चक्र में भ्रमण कर रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान् काय भवरोध-निवृत्ति के लिए उस भगवान् की अनन्य भक्ति का आश्रय लेकर अकृतांग हो जाते हैं।^४ भगवान् की महिमा अनन्त है। उसकी माया के प्रभाव और गुणों का अन्त ब्रह्मा, सनकादि नारद और स्वयं दश-सहस्र फलावली मण्डन शेष भी नहीं जानते।^५ पृथ्वी के रज-कणों को गिनना सम्भव है किन्तु भगवान् के गुणों और पराक्रमों की गणना अशक्य है।^६ आदिपुरुष नारायण क्रीडार्थ मत्स्य, भूर्म, वराह, हृषीकेश, वृत्तिह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कर्त्तिक आदि रूप धारण करते हैं। उनके प्रभाव से समस्त लोक निःशोक होकर उनकी नीलाओं का मान करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।^७

१ श्रीमद्भागवत १।१।१००

२ नमः परस्मै पुरुषाय भूपसे ब्रह्मभूतस्थाननिरोधनीलया गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्मन्वाद्युपलक्ष्यवर्त्मने ॥

श्रीमद्भागवत १०।१२२

३ श्रीमद्भागवत ३।६

४ श्रीमद्भागवत १०।२३।३२

५ नान्तं विदाम्यहमनो मुनयोऽप्यजास्ते । मायावतस्थं पुण्यस्य कुलोऽपरं ये ।
गायन् सुखात् दशारावामन आदिदेवः शेषोऽपुनाऽपि सम्भवशक्तौ नास्ति पारम् ॥

श्रीमद्भागवत २।३।४२

६ न क्वन्तस्त्वदभिभूतीनां सोऽनन्त इति शीवसे ॥

श्रीमद्भागवत १०।१।१२

७ श्रीमद्भागवत २।३।३६, ४० तथा ११।४।२

८ श्रीमद्भागवत १०।४०

श्री भगवद्गीता उपवृत्त विचारों का ही समावेश पाया जाता है, यह स्पष्ट है।

३—नाम महिमा—समस्त भक्ति-साहित्य में भगवन्नाम की अनन्त महिमा की स्तुति के लिए में कौड़ी चर्चा पहले की जा चुकी है। यद्यपि निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप अविद्यमान है, राम रूप की प्रवेशा गजता है, तथापि मध्य युग के सभी निर्गुण साधकों ने अपने अपने अनुभूत राम परम तत्त्व का नाम द्वारा संकेत किया है। सगुण भक्त तो राम ही राम, ब्रह्म के उपनाम होने के कारण उनके नाम का माहात्म्य स्वीकार करते हैं—**श्री १००० : इतरीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—** X X X 'मध्ययुग के भक्तों में भगवान् राम का नाम ही माहात्म्य बहुत अधिक है। मध्ययुग की समस्त धर्म-साधना को नाम की भावना का ही एकता है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त ही चाहे निर्गुण मार्ग के, नाम जब भी उनके अंतर्गत ही कोई मन्त्र नहीं। इस अपार भक्त्यात्म में एकमात्र नाम ही नौका था ?' श्री गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में 'राम न सकहि नाम मुद्र गार्ड' कहा है। श्री भक्त माहात्म्य स्वीकार किया है। महाप्रभु चैतन्य के सम्प्रदाय में नाम का नाम ही अधिक बल दिया गया है। सभी वैष्णव सम्प्रदायों में नाम जब और महान् है। श्री वाङ्मय का श्लोक साधन माना गया है। किसी सम्प्रदाय में पंचाक्षर, किसी में द्वादशाक्षर, किसी में द्वादशाक्षर और किसी में द्वादशाक्षर मन्त्र के जप का विधान है। इनमें भगवन्नाम की महिमा का विस्तार वर्णन है, जिसमें श्रीमद्भागवत और अथर्ववेद का उल्लेख भी है।^१

श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम की अपार दुरितक्षयकारिणी शक्ति का कुछ आत्म्य उद्धरण है—**श्री १००० : इतरीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—** श्रीमद्भागवत का नाम मानते महा पतकी के लिए राउ ही पत है। किन्तु मज्जानवश ही (भगवद् बुद्धि से नहीं) अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेने न वह मनुष्यों के पाप से मुक्त और पवित्र हो गया। विवश होकर भी भगवान् का नाम जब यज्ञ अथवा कौड़ी जन्म के पारों का नाश कर देता है। चोर, मद्यप, मिश्र-बोही, शहराज, गुरु-हत्याशी जैसे पापी भी पाप मुक्त हो जाते हैं। श्री, राजा, भात-भिलागतस्य भी श्री नाम का जैसे महान् पापों का प्रायश्चित्त भगवन्नाम प्रहण मात्र से हो जाता है। भगवन्नाम का जप करने से भी मनुष्य जन्म मुक्त नहीं होता जितना भगवन्नामोच्चारण से। कर्तव्य में हीने से राज के राज्याप को पूर्ण करने के लिए शयवा भवहेलना से श्री लिखा

१—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

२—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

३—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

४—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

५—श्रीमद्भागवत १०.१०.१० (श्री १००० इतरीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।

गीर्जितात्म्या अथवा दण्ड आदि से आहतवस्त्रा में विवश होकर लिया हुआ भगवन्नाम की भक्षण का अन्त कर देता है।^२ पापों की नृताञ्जिता के अनुभार धृते-भृते प्रायश्चित्तों का विधान है। किन्तु तब दान और जप आदि प्रायश्चित्तों से कर्मों का पाप ही नष्ट हो पाते हैं बापी का पाप-दूषित चित्त शुद्ध नहीं होता किन्तु ज्ञान द्वारा कर्मजान किया हुआ भगवन्नाम सकीर्तन चित्त को शुद्ध कर देता है। जिस प्रकार कर्मजान और मुक्तकारी प्रोक्षण विना मुष जाने सेवन क्रिये जाने पर भी लाभ पहुँचानी ही है, उन्ही २००० २००० २००० भगवन्नाम की प्रभाव ज्ञान सहित ग्रहण किया जाय या बिना जाने, अथवा २००० २००० २००० फल अवश्य देता ही है।^३

नाम का उपयोग केवल भक्तकलाश और चित्त-शुद्धि ही नहीं किन्तु पूजा भगवन्तीलाओं का आनन्द लेने के लिए भी नाम का दायन करते हैं क्योंकि इन नामों के उच्चारण से भगवान् के अनेक दिव्य गुणों का ज्ञान होता है।^४ लौकिक-वस्तुओं के प्रवृत्त मनुष्य के हृदय में स्थित होते हुए भी भगवान् उससे बहुत दूर रहते हैं किन्तु कर्म युग ज्ञान करने वाले भक्त के अन्तर्गत निकट रहते हैं।^५ भगवन्महिमा का ज्ञान न करने वाले मनुष्य की ब्रह्मा मेढक की जिह्वा के समान है।^६ श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम की महिमा अनेक प्रसंगों एवं स्थलों पर कही गई है।^७ विस्तारभय से केवल दिव्यनाम दर्शन संभव मया है।

४—गुरु महिमा—समस्त विश्व के और विशेषतया भारतवर्ष के आर्य-समाज साहित्य में गुरु की बड़ी महिमा है। वैदिक काल से आज तक गुरु का महोच्च स्थान

- १ अथ हि कृतनिर्वेसो जन्मकोट्य हसामपि ।
वदन्त्याजहार विवशो नामस्वस्त्वयन हरेः ॥ —श्रीमद्भागवत १०.२०.१०
- माकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोत्रं हेतुमेव वा ।
वैकुण्ठनामप्रह्वमरोमाधरं चित्तः —श्रीमद्भागवत १०.२०.११
- गोस्वामी तुलसीदास ने इसे यों कहा है—
भाँव कुर्माँय अनस आनस हू । नाम जपत संकल टिकि संस हू ॥
—श्री रामचरितमानस का ३.५०.१००
- २ श्रीमद्भागवत १०.२०.१० ।
- ३ यथाभर्तुर्दीर्घतममुपयुक्तं यदुच्छ्रया ।
अज्ञानलोऽप्यनाशुखं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥ —श्रीमद्भागवत १०.२०.११
- ४ यथा हरेर्नाम पदैरुदाहृतैस्तु सप्तलोकगुणोपलम्भाकम् ।
—श्रीमद्भागवत १०.२०.१२
- ५ इतिस्वोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविशिष्टचेतसाम् ।
आत्मसक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्युपैतनुखात्मनाम् ॥ —श्रीमद्भागवत १०.२०.१३
- ६ जिह्वाततो दातुरिकेव सज न चोपकायस्वस्वायगाथाः ।
—श्रीमद्भागवत १०.२०.१४
- ७ श्रीमद्भागवत १०.२०.१२, १०.२०.१३, १०.२०.१४ आदि ।

होने वाले भोगों की तो बख्तरा ही क्या है ! भगवद्भक्ति कर्मों के बगलों से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं । भव-भव से मुक्त होने के लिए सत्संग रामबाण कोषधि है ।^१ जिसे जन्म-मरण रूप प्रति दुःसाध्य रोग के सर्वश्रेष्ठ वैद्य (भगवान्) के पास पहुँचना ही उसे सत्संग के मार्ग से जाना चाहिए ।^२ यदि बुद्धिमान् साधक भगवान् से कुछ बाह्य है तो यही कि यदि भगवन्माया में प्रेरित होकर स्वकर्मानुसार बहू मत्कार में भटकना उसे तब भी जन्मजन्मान्तर तक उसे सत्संग प्राप्त ही ।^३ क्योंकि माधुर्यों का समारम्भ श्रेयः शौर्य वक्ता दोनों ही को अभिमान होता है, उनके प्रयत्नों पर सभी प्राणियों का कल्याण करता है ।^४ विगुह भक्तिदानन्दधन वासुदेवात्मक ब्रह्म का ज्ञान महापुरुषों की अरुण शक्ति की शिरोधार्य किए बिना यज्ञ, तप, वेदाध्ययनादि अनेक साधनों से भी प्राप्त करना असम्भव है ।^५ वेदोक्त कर्मों में आसक्त-पुरुष जब तक महापुरुषों की अरुण शक्ति का लेख नहीं कर लेते तब तक उनको बुद्धि चरम श्रेय (भगवान्) तक पहुँच ही नहीं सकती ।^६ इस प्रकार श्रेयोमार्ग के पथिक के लिए श्रीमद्भागवत में सत्संग की अनिवार्यता का उल्लेख किया गया है । सत्संग से जो और भी बड़ी बात होने है, वह है भक्त का भगवान् से भी अधिक प्रिय भगवद्भक्ति की ध्रुव प्राप्ति । भक्ति की प्राप्ति में चाहे अन्य साधन घसकन हो जाएँ, किन्तु सत्संग माँष नहीं हो सकता ।^७ सत्संग में सबसे बड़ी विशेषता है उसका सर्वसंगनिवारकत्व । सत्संग हो जाने पर फिर अन्य सग की इच्छा नहीं रहती । सत्संग के द्वारा ही विभिन्न युगों में दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, मयूरा, नाग, पिंड, चारुण, गृहक, विद्याधर, स्त्री, वंश्य, सुद और अन्यत्रों ने भगवत्प्राप्ति की । सर्वसाधनहीन, निःशरणा शोषियों ने केवल सत्संग अनित भक्तिभाव से ही परमपद प्राप्त कर लिया था ।^८

६—**वैराग्य**—अध्यात्म पथ के पथिक को हृद् वैराग्यवान् होना चाहिए । अपनी मनोपगत समस्त कामनाओं का प्रामाणिकता से परित्याग करके जब साधक अपने से अपने में ही तृप्त होकर—आत्माराग होकर—स्थित होता है तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं । किन्तु स्थितप्रज्ञ होने के लिए पहले अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेना अनिवार्य

- १ तुल्यम लवेनापि न स्वर्गं नरपुनर्यवम् ।
भगवत्संगिसंगरय मत्यानां किनुशशिषः ।
तेषां विचरतां पदभ्यां तीर्थानां पावलेच्छया ।
मीनस्य किं न रोचेत तावत्कायां समग्रामः ॥
—श्रीमद्भागवत ४.३०.१५
- २ श्रीमद्भागवत ४.३०.१६ ।
- ३ श्रीमद्भागवत ४.३०.१७ ।
- ४ श्रीमद्भागवत ४.२१.१६ ।
- ५ न च्छन्दसा नैव जलाग्निस्त्वैदिना महत्पारजोऽभिषिक्तः ।
—श्रीमद्भागवत ५.१२.१२
- ६ श्रीमद्भागवत ७.५.१३ ।
- ७ महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽनोषरव ।
सत्संगलब्धया भक्त्या मन्त्रि मां स उपासिता ॥
—श्रीमद्भागवत १.१२.१२
- ८ श्रीमद्भागवत १.१.२२

१. 'जन्तुः इन्द्रियां बद्धं मनी है वही वास्तव में स्थितप्रज्ञ कहलाने का अधिकारी है ।^१
 २. 'वैराग्य ही वैराग्य है । भारतीय अध्यात्म विद्या में वैराग्य के द्वारा मन जैसी महान्
 यत्न शक्ति का निग्रह भी संभव बताया गया है ।^२ योगदर्शन में भी अध्यात्म और वैराग्य
 के अविच्छेदता स्वीकार की गई है ।^३ भक्ति शास्त्रों में तो भक्ति की साधना के लिए
 विना ही वैराग्य का प्रथम साधन ही बताया गया है ।^४

श्रीमद्भागवत के पद्युरासोक्त साहान्य में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के दो
 पक्षों के रूप में बताया गया है ।^५ इनमें ज्ञान ही है कि भारतीय अध्यात्म साधना में
 ज्ञान और वैराग्य को साधन भी माना गया है और साध्य भी ।^६ किन्तु श्रीमद्भागवत में
 ज्ञान और वैराग्य का अधिकतर भक्ति के साधन रूप में ही उद्धृत किया गया है । इनके
 द्वारा साध्य फल प्रेमा भक्ति ही है ।

श्रीमद्भागवत में वैराग्योत्पादन के लिए विविध उपायानों का वर्णन एवं विषयो
 का विवरण किया गया है । इनमें पुरज्जनोंकारण, भवाटवी दर्शन, ययाति-चरित, प्रकृति-
 गुण-विवेक, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, वराश्रम धर्म वर्णन और देह-गेह में आसक्त
 दुर्गमों की अशोभित के वर्णन प्रमुख विषय हैं ।^७

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि यह दुर्मति जीव अपने नाशवान् शरीर से
 अभ्युत्पन्न करने वाले यह घन आदि को मोहक नित्य मानता है । जिस-जिस योनि में
 जन्म लेता है, उसी-उसी में आनन्द मानने लगता है और उससे इसे वैराग्य नहीं होता ।
 यह वह जीव अपने स्त्री पृथ, गृह, पशु, घन और वनस्पतियों में अत्यन्त आसक्त होकर
 अपने ही बड़ा भाग्यशाली समझता है । इनके पालन-पोषण की चिन्ता से अहनिश इसके
 मन अन्त रहते हैं फिर भी दुर्वासनाओं से युक्त होकर यह निरन्तर इन्हीं के लिए नाना
 दुर्गम करता ही रहता है । कुलटा और मायाचित्री स्त्रियों की चिकनी-तुपड़ी बातों और
 छोटे-छोटे वस्तुओं के लाल-भावरों से आश्रित मन वाला यह प्राणी रहस्य के कति दुःखदायी

- १. 'जन्तुः इन्द्रियां बद्धं मनी है वही वास्तव में स्थितप्रज्ञ कहलाने का अधिकारी है । — श्रीमद्भागवत १.२.१
- २. 'वैराग्य ही वैराग्य है । — श्रीमद्भागवत १.२.१
- ३. योगदर्शन में भी अध्यात्म और वैराग्य के अविच्छेदता स्वीकार की गई है । — योगदर्शन १.२.१
- ४. भक्ति शास्त्रों में तो भक्ति की साधना के लिए विना ही वैराग्य का प्रथम साधन ही बताया गया है । — श्रीमद्भागवत १.२.१
- ५. श्रीमद्भागवत के पद्युरासोक्त साहान्य में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के दो पक्षों के रूप में बताया गया है । — श्रीमद्भागवत १.२.१
- ६. किन्तु श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य का अधिकतर भक्ति के साधन रूप में ही उद्धृत किया गया है । — श्रीमद्भागवत १.२.१
- ७. इनमें पुरज्जनोंकारण, भवाटवी दर्शन, ययाति-चरित, प्रकृति-गुण-विवेक, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, वराश्रम धर्म वर्णन और देह-गेह में आसक्त दुर्गमों की अशोभित के वर्णन प्रमुख विषय हैं । — श्रीमद्भागवत १.२.१

हो जाता है तो कुटुम्ब के भरण-पोषण में असमर्थ यह पुरुष अत्यन्त हीन होकर हीरे निःस्वाम छोड़ने लगता है। कुटुम्ब-भरण में असमर्थ इस पुरुष का स्त्री पुत्रादि भी पक्ष में की भाँति आदर नहीं करते जैसे किसान बड़े बैल का। दुःख-वस्था के कारण उसके काम नष्ट हो जाता है। रोग के कारण पुत्रार्थ का जय हो जाता है किन्तु फिर भी अपने पुत्रादि द्वारा अयमानपूर्वक दिये गए नोटी के टुकड़ों पर हल-रक्षक कृती की भाँति पड़ा-पड़ा मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहता है।^१ इस प्रकार श्रीमद्भागवत में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ में आशय मनुष्य की दयनीय दशा का वर्णन कर भूमिपु पुत्र के हृदय में वैराग्य का संस्कार करने का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। वैराग्य के अनेक साधनों में श्रीमद्भागवत में प्रमुखतया ह्य निम्नांकित तीन विषयों का निरूपण पाते हैं—

(क) रमणी के मोहक रूप की निन्दा।

(ख) अर्थ-निन्दा।

(ग) मनुष्य शरीर की दुर्लभता।

(क) नारी—जहाँ भारतीय साहित्य में नारी को अत्यन्त हीन रूप में अस्वर्चनीय बताया गया है,^२ वहीं इन्द्रियधाम को अष्ट-विध रूप में उल्लेख कर अद्वितीय रूप यौवन को अध्यात्म मार्ग का एक साधन माना गया है।^३ हिन्दी भक्ति-साहित्य में नारी के इस साधक रूप को उल्लेख करने का प्रयत्न अनेक पुत्र-निन्दन सचेत रहने का जो आदेश दिया गया है। उल्लेख अनेक साधक-साधिका ही है। भक्ति के जन्म लक्ष्य को लेकर अनेक अर्थ-निन्दन पुत्र-निन्दन वैराग्य का निरूपण अनेक स्थानों पर है और नारी के अर्थ-निन्दन की अनेक उल्लेख प्रबल शब्दों में किया गया है। नारी ही अत्यन्त मनुष्य की अत्यन्त दुर्लभता हिन्दी भक्ति-साहित्य में नारी के प्रति किमी दर्शन ने नारी-निन्दन का प्रयत्न करने के लिए एक साधन रूप में पृथीत है। श्रीमद्भागवत में अनेक उल्लेखों से सबसे बड़ा बन्धन स्त्री है। विश्व में कोई भी पुरुष अथवा स्त्री अथवा बालक

१ आत्म शायामुतागारपशुद्विखरन्धुहु।

निरुद्धमूलहृदय आत्मानं बहु मन्वते ॥

सन्दहमानिस्वर्गं यथासुदहनाभिना।

करोत्यविरलं नूढो दुरितानि दुराश्रयः ॥

विरोधं दृष्टव्य—श्रीमद्भागवत स्कन्ध २, अध्या १०, श्लोक १००

२ श्रेष्ठि प्रपन्नान्ति हरे प्रसीद, प्रसीद सतर्कगतोर्द्वि-मन्वते ॥ १० ॥

३ (क) किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।

(ख) शारं किमेकं नरकत्व नारी।

४ श्रीपरिशिष्टा क्षम बुवति क्व, मन जति होसि क्व ॥

अतः योग के परम पद पर आरुह्य पुरुष को स्त्री-सग का सर्वथा त्याग
 वातः ... । यह स्त्री रूपिणी भगवन्मया अन्यत्त प्रबल है । योगी के लिए तो यह नरक
 ... से आच्छादित मृत्यु कृप ही है ।¹

शुद्ध अर्थ-निन्द्या — 'घन दुर्महाश्च पुरुष कभी भी भगवत्प्राप्ति नहीं कर सकता', इस
 ... की वृष्टि श्रीनिधुभागवत में अनेक स्थलों पर हुई है । घन नाश से ही
 ... का संघार होता है और वैराग्य से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, यह कम
 ... में एक निनिधु ब्राह्मण के उपाख्यान में अर्थ की अनर्थता और अर्थ
 ... की बात कही गई । वैराग्य के लिए घन नाश प्रथम सोपान है ।²
 ... अर्थों का भिंकार होता है । अतः कल्याण-कामी पुरुष को
 ... करना चाहिए । वे पत्रह अनर्थ हैं—चोरी हिंसा, मिथ्या-
 ... , क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार, भेदबुद्धि, बैर अविश्वास स्पर्धा, स्त्री, दूत,
 ... । घन के कारण ही मनुष्य का अपने प्रियजनों से वैमनस्य होता
 ... ही मनुष्य की सात्विकता नष्ट हो जाती है और वह पूर्णतया
 ... अतः साधक को अर्थों के आश्रम रूप घन में आसक्ति नहीं
 ...

मनुष्यवदेह की दुर्लभता—विधाता की इस विशाल सृष्टि में मनुष्य प्राणी को
 ... का सौभाग्य प्राप्त है—न 'मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्' ।

- 1. ... अन्वेषणं इत्यर्थान्यप्रसंगतः ।
- 2. ... यथा तत्प्रसिद्धम् ।
- 3. ... श्रीनिधुसिद्धन्धीः पुमान् ।
- 4. ... योषिन्मथ्येह सावयम् ॥
- 5. ... स्त्रीमय्या जदिनो दिशाम् ।
- 6. ... क्रान्तान्त्र विबुधेषु केवलम् ॥
- 7. ... मदासु अतु योगस्य पारं परमाकुरुतः ।
- 8. ... शक्तिर्यथावत्तद्विनिर्वाहो वदन्ति वा निरयद्वारनस्थ ॥
- 9. ... योषिर्हो वदन्तिनिर्वाहः ।
- 10. ... वृष्टुं गृह्येः कथमिवावृत्तम् ॥ —श्रीमद्भागवत ३।३१, ३५, ३७, ३८, ३९, ४०
 अन्यत्र भी—दा.१.८.३९-४२ ।
- 11. ... १।२३ ।
- 12. ... कटरायस्तपस्विनः ।
- 13. ... अन्वेषणं इत्यर्थान्यप्रसंगतः ॥ —श्रीनिधुभागवत १।१०।१।१३
- 14. ... कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
- 15. ... संसृज्यते स्वसमानि च ॥
- 16. ... मता नृषाम् ।
- 17. ... दूरत्वमेव ॥ —श्रीमद्भागवत १।१२।३।३-१८-१९ ।
- 18. ... आयुः सौख्यमिह पुमान् ।
- 19. ... अन्वेषणं इत्यर्थान्यप्रसंगतः ॥ —श्रीनिधुभागवत १।१२।३।३

अन्य प्राणियों को जहाँ केवल इन्द्रिय-प्रेरणा से अज्ञान जोड़कर ही कर्म करने पड़ते हैं व मानव-प्राणी इन्द्रिय-जयी होकर उत्तम ज्ञान और बुद्धिबल से अपने कर्मों को समीचीन विद्या की ओर मोड़ सकता है। जहाँ अन्य योनियाँ भोग भूमि हैं, वहाँ मानव योगि कर्मभूमि है। मानव के कर्मों का ही शुभाशुभ फल होता है। मानव का यह ब्रह्मोपाधिकार ही उसके सर्व-श्रेष्ठत्व का कारण है। धर्माचरण के द्वारा मानव अपने परम पुरुषार्थ लोभ को अपने अधिक सुविधापूर्वक प्राप्त कर सकता है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए भारत के प्राचीन तत्त्व-विन्तकी ने मानवदेह को बहुत दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण बताया है। वेदान्त में विवेक और वैराग्य का हेतु मानवदेह ही है। किसी अन्य देहुवारी ये वैराग्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।^१ अद्यत्म प्रधान संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर मानव देह को सुदुर्लभ बताया गया है।^२ सूर, तुलसी आदि के द्वारा विरचित हिन्दी भक्ति-साहित्य में यह विचार पुरातन संस्कृत साहित्य ने ही आया है।^३ श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परमेश्वर ने अपनी अजेय माया शक्ति में विविध स्थावर-अंगम सृष्टि ही रचना की, किन्तु उसे सन्तोष न हुआ और जब ब्रह्मदर्शन की योग्यता रखने वाले पुरुष शरीर की रचना की तभी उसे प्रसन्नता हुई। अतः सिद्ध होता है कि परमेश्वर को भी प्रसन्नता अर्जन करने वाला यह मानव देह ही सर्वश्रेष्ठ है। यह देह भी अनित्य है, किन्तु परम पुरुषार्थ का साधन है। अतः अनेक जन्मों के अनन्तर इस दुर्लभ नर देह को पाकर बुद्धिमान् पुरुष पुनः मृत्यु-पुनः में जाने से पूर्व निःश्रेयस का प्रयत्न कर ले। विषय सुखों को प्राप्त करने में इस अमूल्य वस्तु (नर देह) का उपयोग न करे। क्योंकि विषय-सुख ने कभी योनियों में प्राप्त हो जाने हैं।^४

इस प्रकार पूर्वोक्त तीन विषयों के निरूपण में श्रीमद्भागवत में वैराग्य का उपदेश दिया गया है और यहाँ तक कहा गया है कि बिना अव्यवसायिक के वैराग्य-प्राप्ति नहीं होती। वैराग्य तो संसार से पर जानने के लिए तोका रूप है।^५

- १ देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुः ।
—श्रीमद्भागवत ११.६.२४
- २ नृदेहमात्रं सुलभं सुदुर्लभं जगत् पुरुषार्थं गुरुकर्मधारिणम् ।
सर्वानुकूलेन नभस्वनेरितं पुमान् भवाच्छिष्यं न तस्मै ज्ञानमहा ।
—श्रीमद्भागवत ११.२०.२७
- ३ (क) परम माय सुकृति के फल में सुन्दर देह बनी ।
—पुरमावत प्र० खं० पृष्ठ ७१ ।
(ख) बड़े भाग मानुष तनु पाया । सूर दुर्लभ सब अर्थनिधि साया ।
—राजसूयसामय उपनिषद्
- ४ सद्वा पुराणि विविधान्यशवात्मशक्त्या बुधान्परीत्युपयन्मन्वंशंशमत्वशम् ।
नैरतैरतुषड्दवः पुरुषं विधातुं तन्नात्मोदधिदत्तं नृदमाय देवः ॥
लक्षां पुराणानि २५५-५५५ भाग्य-विधातुं नृदमाय देवः ।
[१०] इति नृदमाय-विधातुं नृदमाय देवः ॥ १० ॥ —श्रीमद्भागवत ११.२०.२७
- ५ श्रीमद्भागवत ११.२०.२७
- ६ श्रीमद्भागवत ११.२०.२७

निष्कर्ष

इस विवेचन में हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

1. वैराग्यिक ब्रह्मसूत्र धर्म ने भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति को प्राधान्य दिया और भक्ति का वैदिक प्रचार, महत्त्व-व्यपन एवं परमार्थ-साधन में उसका सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राग्भाक्तावत पुराण द्वारा हुआ।

2. प्रवृत्तों से एवं स्वात्मना शरणागत होकर स्तुतिमान करना परमेश्वर की पूजा का उचित साधन है। श्रीमद्भागवत में इन भगवद् स्तुतियों का उत्कृष्टतम प्रतिपादन परवर्ती भक्ति-साहित्य ने उसमें अक्षय प्रेरणा ग्रहण की है।

3. अन्यायम मार्ग में मृत्यु के जिन महनीय और अतिव्यर्थ पद की प्रतिष्ठा भारतीय धर्म-परम्परा में हुई है, श्रीमद्भागवत ने उस परम्परा को और सशक्त बनाया है और भक्ति मार्ग में हित्य को प्रेरणा प्रदान की है।

4. भक्ति के सर्व सामान्य साधनों—यथा भगवन्नाम संकीर्तन, सत्संग, वैराग्य आदि का श्रीमद्भागवत में जो वर्णन है, वह परवर्ती हिन्दी भक्ति साहित्य में सादर प्रतिपादित है।

5. श्रीमद्भागवत प्रमुखतया कृष्णभक्ति परक ग्रंथ होने के कारण उपर्युक्त सामान्य भक्ति-साधनों के लिए भी कृष्णभक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य है।

पंचम अध्याय

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोक्त तत्व (विशेष)

रसिक शिरोमणि, रसात्मक, रसैक्यर श्रीकृष्ण ही वह विभिन्नतत्त्व है जिसका अन्तर्गत धनुमंथान और समाराधन मध्यकालीन मधुर भक्तों के एक विशाल वर्ग का आत्म-सादन है। 'रसो वै सः', 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दो भवति' आदि श्रुतियों का प्रयोग न केवल इनमें श्रीकृष्ण ही हो गया। इन 'अखिलरसामृतमूर्ति',^१ वही विभूति, 'रस-नी-द-स', कृष्णतत्त्व अथवा शतदान विद्युत्लताओं (गोपीजनो) के आवेष्टित काव्य-रसों की ही अन्तर्-ध्वंस, भोग, श्रेय और प्रेय माना गया। उनके अनिरीकत किसी अन्य तत्त्व के अन्तर्गत की आवश्यकता स्वीकार नहीं की गई।^२ श्रीमद्भागवत ने पहले ही से मधुर साधनता की प्रतिष्ठा कर रखी थी। राम चंचाध्यायी में यही कृष्ण अपनी स्वरूपभूता अन्तर्गत अन्तर्गत के साथ आत्म-रमण में प्रवृत्त दिखाया गया है।^३ श्रीमद्भागवत में इस काव्य-रस का विकास वयःक्रम से दिखाया गया है। प्रारम्भ में जो कृष्ण शैशव की मन्दिर-शैशवों के कारण अन्तर्गत वात्सल्य, और सद्यः का केन्द्र होता है, केशोर में यही मधुर का अन्तर्गत बय ज्ञाता है, और तारुण्य एवं प्रौढावस्था में यही प्रेम एवं श्रद्धा के सीमा-रस दिखाई देता है। हिन्दी कृष्ण-काव्य में इन श्रीकृष्ण के इन सभी रूपों के प्रयोग कर सकते हैं।

- १ अखिलरसामृतमूर्तिः प्रसूमरकचिरुद्धतारकावलिः ।
कलितरसामालसितो रावात्रेयान् विधुर्जयति ॥ श्रीहरिभक्तिरस-... ५५
- २ स्मृताऽपि तरुणातपं करुणया हरन्ती मृगा-
मनंगुरतनुतिषां बलविता शत्रुविषिताम् ।
कलिन्दगिरिसन्दिनीतदपुरम् मातृस्विनी,
मदोय मन्त्रिचुम्बिनी भवतु काऽपि कादम्बिनी ॥ पठितराव बन्नाथ—रसगो... ५५
चंद्रोपिभूषित इरान्नवनीरदाभ्याम् । योऽन्वारादहृदयिन्फलाशरोऽप्यम् ।
पूर्वोऽनुभवं मुञ्जदरविन्दनेत्रम् । कृष्णोत्पलं किमपि तदवमर्ह ज जाने ॥
- ३ बाहुप्रमत्तपरैरन्धकारालकोरु-
नीदीलनसलमलजमैवखाप्रपातैः ।
ध्वजेन्वायलां कदसितैर्जमुन्दरीषा-
मुत्तम्भदवसिषति रसवांचकार । श्रीमद्भागवत १०. १२. ४६

दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण अपनी समस्त विभूति और शक्ति के विस्तार के लिए 'लीलाधरत्व' और पुरुषोत्तमत्व का पुरातनया ख्यापन करने का प्रयत्न करती है जो कृष्णभक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य है। दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण की कृष्णचरित और कृष्ण-लीला हिन्दी कवियों का प्रियतम वर्ण्य विषय है। दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण भक्त कवियों को कृष्णलीला सम्बन्धी कृतियों का प्रयत्न करने पर पूर्वाह्व है जो अनुचित न होगा। अष्टछाप के कवियों के लिए यह प्रयत्न ही ज्ञान में कही जा सकती है। साधारणतया दशमस्कन्ध के जिन विशिष्टतत्त्वों को कवियों ने ग्रहण किया है। उन्हें हम स्थूल रूप में चार शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं—

- १—श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ।
- २—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी।
- ३—श्रीकृष्ण का परब्रह्मपरमेस्वरत्व।
- ४—श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अलौकिक प्रेम।

उपरोक्त चार प्रमुख तत्त्वों में अनेक अवाच्य तत्त्वों का समावेश है, यथा— श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के जनकर्म, नामकरणगादि संस्कार, बाल्य, युवावस्था, गौ, शोकूच, वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन आदि विषयों का समावेश है। श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी में उनका वर्ण, अंग-विन्यास, ललितविभंगीमुद्रा एवं अनेक शरीर-रस-वेषरूप्यादि का विवेचन करना समीचीन है। श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व के अर्थ में अद्वैत और अलौकिक कर्म-क्षमता की ओर संकेत पाया जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अलौकिक प्रेम में गोपियों की विरहभावना, अमरगीत, रासलीला आदि माधुरीय विषयों की कृष्ण के प्रति माहात्म्य-ज्ञान-पूर्ण प्रेमलक्षणाभक्ति आदि विशेष प्रासंगिक होंगे। अतः निम्न पंक्तियों में उपर्युक्त चारों तत्त्वों का संक्षेप में विवरण किया जायगा।

१—श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ

(अ) दशमस्कन्ध पूर्वाह्व—(अजलीला)

ज्ञान—लीला सगुण ब्रह्म-भावान् का अचिन्त्य चरित है। निर्गुण और निर्गुणकार एतत् तत्त्व में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु भक्तों का भगवान् भक्तों का अनुसंधान करने का प्रयत्न ही ज्ञान है। भक्तवत्सल भी ठसकी श्रेया में सम्मिलित होते हैं। भक्तों का भगवान् में आन लेना और भगवन्लीलाओं का ज्ञान करना अत्यन्त प्रिय कृत्य है। भगवान् की श्रेयाओं का ज्ञान हो जाने पर भक्त का पुनर्भव नहीं होता। अतः लीलाओं के ज्ञान द्वारा भक्त जो सबसे बड़ी वस्तु प्राप्त करता है वह है भगवान् का

१—दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अलौकिक प्रेम का विवरण।

२—दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप माधुरी का विवरण।

गीता, ४. ६

वसुदेव ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे। वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे। वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे। वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे। वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।

संकुल में कृष्ण का जन्मोत्सव—पुत्रोत्पत्ति जानकर नन्द ने गोकुल में महाव्रत स्थापित किया। ब्राह्मणों को बुलवाया। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर विष्णुसूक्त पढ़ाया। यदुकुल के पुरोहित गर्ग से यथा समय नाम-जप कराया। ब्राह्मणों को पूसंतया अलंकृत वीस लाख गौएँ दान की। ब्राह्मण, गुरु, नायक श्री-पुत्रोत्पत्ति महाव्रत आशीर्वाद देने और स्तुति मान करने लगे। गायनवादन शुरू किया। अदम्यरुद्र ने मन्त्र गृहीत चन्द्रतादि का लिङ्गाव किया गया। उन्हें विश्वविचित्र

- १. कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- २. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ३. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ४. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ५. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ६. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ७. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ८. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- ९. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।
- १०. वसुदेव देवकी ने कन्या रूप में अवतरित हुए थे।

श्रीमद्भागवत १०. २. ५-८
 श्रीमद्भागवत १०. २. ५६, ५७
 श्रीमद्भागवत १०. २. ५४

११—भाण्डों में छिद्र कर देना । (८. ३०)

१२—शेपियों के घरों में मल-सूत्रादि कर देना । (८. ३१)

१३—दृष्टिका-भक्षण । (८. ३२)

१४—यशोदा को नुख में ब्रह्माण्ड-दर्शन कराना और पूर्ववत् मातृस्नेह प्राप्त कराना । (८. ३३-३६)

१५—रत्न-पान-हठ (६. ४) यशोदा के दधिपान के समय बालकृष्ण उनके पान करने के लिए आते हैं । यशोदा जब कृष्ण को अतृप्त छोड़कर अंगीठी से उफनता हुआ पान पीने के लिए चली जाती है तो कृष्ण क्रुद्ध होकर दधि भाण्ड फोड़ देते हैं । रत्न-पान की शक्ति निकालते हैं ; घर के एकान्त में माखन खाते हैं, (६. ६) । किन्तु जब रत्न-पान की शक्ति ही और पात्र को फूटा हुआ पाती है, तब भी कुछ नहीं कहती, हँस देती हैं । (६. ६)

१६—रत्न-पान की शक्ति की शक्ति पर का माखन बानरों को भक्षण । (६. ६)

१७—उलूखल-बन्धन दधि मथते यशोदा ने देखा कि कृष्ण माखन की चोरी करके बानरों को भूटा रहे हैं । यशोदा ने चुपके से उन्हें पकड़ लिया और छड़ी से धमकाया । फिर रत्न-पान के लिए उन्हें उलूखल से बाँधने लगी किन्तु रस्ती हर बार दो अंगुल छोटी पड़ जाती । रत्न-पान की शक्तियों को जोड़ने पर भी छोटी पड़ती रही । जब यशोदा परिश्रम से रत्न-पान के लयबद्ध हो गई तो कृष्ण माता की दयावश स्वयं बँध गये । इससे कृष्ण ने अपनी भक्त-व्यक्त-व्यक्त की । (६. ६-१२)

१८—यमलाक्षु भोद्वार—यक्षपति कृबेर के मदोन्मत्त पुत्र नलकृबेर और मणि-पुत्र को मरने के नाप से यमलाक्षु न वृक्ष हो गये थे, कृष्ण ने उनका उद्धार किया । रस्ती-बंदे लगने का दर्शन के बीच में फँसकर वृक्षों को समूज उखाड़ दिया और उससे यक्षपुत्र प्रकट हो गये । (१०. १-२७)

१९—शेपियों के कथन पर तृप्य करने लगना । (१२. ७)

२०—मल्लों के समान ताल ठोककर कुश्ती लड़ना । (११. ८)

२१—रत्न-पान के लयबद्ध होने से अन्न देकर फल मोललेना और उसे रत्न-पान देना । (१२. १०-१२)

२२—शुशुभन के भ्राता बलराम और अन्य गोप कुमारों के साथ खेलते हुए उलूखल बंधना । (११. ३८)

२३—कनी बजाना, बैले फेंकना, पंरों के धुँधरु बजाना, कृत्रिम पाय बँल बनना । (११. ३८)

२४—बलराम और कृष्ण का लड़ाई बनकर लड़ाई का अभिनय करना । (११. ४०)

२५—मदुर आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करना । (११. ४०)

कर अनरिक्त में घुमाकर एक कथित्य वृक्ष पर दे मारा । (११. ४१-४४)

२८—प्रातराग (कलवा) लेकर वृन्दावन में बन्धुचारण करता । (११. ४५)

२९—शकासुर बध बकरूप धारण करके प्राई हुए एक बन्धु के कृष्ण को निगल लिया । किन्तु कृष्ण ने उस कोच चीर कर मार डाला । (११. ४६-४९)

३०—शाल मिचोनी, पुन बाँधना, कानर की भाँति उड़ना, हूँदा आदि शीकाई में कृमाराधना व्यतीत करना । (११. ५६)

३१—वत्सचारण के समय गोप बालकों के छीके आदि चुराना । छीके बाले को पना लय जाना तो चुराने वाला उसे दूसरे के पास भरी दूसा, तीसरे के पास फेंक देता । जब छीके वाला लंग हो जाता तो हंस कर लौटा देते हैं । (१२. ५)

३२—कृष्ण को घाई मानकर गोप बालकों का उन्हें छुकर आनन्दित होना । (१२. ६)

३३—बाँसुरी बजाना तरमिहा (सिमी) बजाना, भ्रमरो के साथ गाना, कोकिल के साथ कृजना और आनन्दित होना । (१२. ७)

३४—आकाश में बढ़ते हुए पक्षियों को छाया के साथ बौढ़ना, हंसों के साथ उनकी गति का अनुकरण करते हुए चलना, बच्चुओं के पास उड़ने के समान ध्यानस्थ के समान बैठना, मयूगों के साथ मिलकर नाचना । (१२. ८)

३५—बन्दर के बच्चों को गकड़कर खीचना, उनके साथ स्वयं भी वृक्षों पर चढ़ना, उनकी ओर बुड़कना, एक बाखा में दूसरी बाखा पर उछलना । (१२. ९)

३६—किमी नदी के कछार में पीढ़े से जल में गोने लपाना, जलमें छुड़कने हुए मेढके के साथ कुपना जल में अना प्रनितिकर लेपना लेपना, कानों से शक्तिवर्षि को मला घुरा लपना । (१२. १०)

३७—शकासुर-बध—शकासुर बधानी देता का पना । यह पुरा और शकासुर का छोटा भाई था । यह पुरा के समान काम करे इन का से मारा था । शकासुर के समान गोप बालक उसके मृत्यु से दुःख मारा है । शकासुर से उसके मृत्यु से प्रदश कर उसको मार दिया । (१२. ३१)

३८—ब्रह्मा द्वारा नरकहरण—ब्रह्मा को शीकासुरीका का पना, ब्रह्मा ने उस को बन्धी और गोप बालकों का हरण कर लिया । का कृष्ण ने भय को था । उन उनके शकासुर और बालकों के साथ में लड़ित कर लिया । इसका उद्देश ब्रह्मा के शिष्य-वाद्य हान का बध-दुर्ग करना था । अध्याय १२)

३९—घरले बन्धुभूत शीकासुरी और शीकासुरी के बन्धुभूत, अलसम शरीर शकासुरी का आनन्दित प्रेश उल्लस करना । (१३. २०-२६)

१५. निरवध-नीरवध-लीलाएँ एवं दैत्यवध (वृन्दावन लीला)

१५.१—नीरवध (गण वर्य से अधिक) भवस्था में प्रवेश करने पर बछड़ों के स्थान पर बाल बराने से ही नीरवध शीप बालकों से घिरे वन में विहार की इच्छा से बलराम सहित बालराम वन में प्रवेश कर गिरिराज गोवर्धन के समीपवर्ती यमुना तट पर प्रवेश करता है (१५. १-६)

१५.२—नीरवध वृक्षों के साथ कूबना, दूरस्थ पशुओं को मेघ-गम्भीर स्वर में वृत्तान्त कराने का प्रयत्न करता है। भारद्वाज और मथर आदि पक्षियों की सी बोली बोलना, शब्दों, मिथ्यादि विषय-शुद्धि के शब्दों से डरे हुए जीवों के समान स्वयं भी भयभीत का भाव व्यक्त करता है। कभी कभी बलराम के हाथ में हाथ डालकर खड़े होना, नाचना, गाना, नाच-गाना, हँस-हँसकर साथियों की प्रशंसा करना, स्वयं भी कभी-कभी बलराम के साथ जाते-जाते किसी वृक्ष की जड़ के सहारे कीमल पत्तों की अय्या पर विह्वल बनना (१५. ६-१०)

१५.३—चेतुकासुर-वध—श्रीदामा, सुवल, स्त्रीकृष्णादि मित्रों के आग्रह से कृष्ण-बलराम एक तालफल खाने में गए। पक्व तालफल खाने के लिए सभी सखा लावायित थे। किन्तु वह वन में दुर्लभ गर्दभ रूपधारी दैत्य चेतुकासुर के अधिकार में था। जब बलराम ने गर्दभ का दूध पी तो वह दैत्य दौड़ता हुआ वहाँ आया और उसने बलराम के बल-बल पर दुर्लभ गर्दभ का दूध पी लिया। किन्तु बलराम ने उसके पैर पकड़कर अन्तरिक्ष में घुसाकर ताड़क बनाई। उसने उसका अल्प भाई गर्दभों का अन्त कर दिया। (१५. २१-३०)

१५.४—कालिय नाग द्वारा यमुना के विषाक्त हुए जल के पान से मरे हुए गो-मोषों को जन्तित करना। (१५. ४७-५२)

१५.५—कालियवध—कृष्ण एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष से यमुना स्थित विषाक्त वाकिरहृद नाग का दूध पीने पर उसे। कालिय ने उन पर आक्रमण कर उन्हें लपेट लिया किन्तु कृष्ण ने अपने पैरों को फुलाया जिससे कालियनाग का शरीर फटने लगा और उसने बलराम की मदद से उसे पीट दिया। कृष्ण ने उसके फल मण्डल पर नृत्य किया। उसके तलमो एक फल पीकर बलराम और उनकी पत्निका कृष्ण की शरणा में आये और नृत्य करने लगे। कृष्ण ने बलराम को यमुना छोड़कर समुद्र स्थित रमणक द्वीप में चले जाने की आज्ञा दी। उसने वंदन भी किया। (अध्याय १६)

१५.६—दाशवतारान—यस दिन कालियवध हुआ उस रात्रि को सुस्वप्न, वाकिरहृद वृक्षधारी और नीरवध यमुना तट पर ही रह गए थे। किन्तु रात में श्रीधम से सूखे हुए वन में आग लग गई और उस दाशवतार में वे गो-मोषपशु चलने लगे। तब कृष्ण ने दाशवतार वध कर दिया। (१५. २०-२३)

सामग्री लेकर कृष्ण के समीप आई और उनकी शरण हा गई। इस घटना से ब्राह्मणों ने अपने आत्मिक अधिकार और भगवत्ताक्षात्कार न कर सकने के कारण पश्चात्ताप किया। (अध्याय - २)

११ इन्द्र यज्ञ भंग—ब्रज में पहल्य नन्दादि सातगण विविध पक्वान्नादि द्वारा इन्द्र की पूजा करने लगे। श्रीकृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गिरिराज गोवर्धन, गौश्रीं और ब्रह्मगणों का पठन कराया। (अध्याय २४)

१२ - गोवर्धन धारण—जब ब्रह्मवासियों ने इन्द्रयाग नहीं किया तो इन्द्र को तब ही तब प्रलयकालीन सावर्तक मेघ-मण्डल को ब्रज पर घोर वर्षा कर देने लगे, उन-के-संग-में-सूनावाधार वर्षा, वज्रपात एवं उपल वृष्टि होने लगी। इन्द्रगणों को इसकी शरण की जरूरत में आई। श्रीकृष्ण ने उनकी रक्षा और इन्द्र का प्रतिहन करने का उपाय उद्योग पुष्प की भाँति गोवर्धन को एक हाथ से ही उठा लिया। इन्द्रगणों ने उसकी रक्षा में अपनी रक्षा की। गोवर्धन-धारण के समय कृष्ण की अवस्था का वर्णन है (अध्याय २५)

१३ सुराभि (कामधेनु) द्वारा श्रीकृष्ण का अभियेक और इन्द्रकृत स्तुति-परिचय-वर्णन ने ब्रज की रक्षा कर लेने पर इन्द्र का मद नष्ट हो गया। उसने लज्जित होकर इन्द्र ने अपने भाँगे और कामधेनु ने अपने दुग्ध से तथा ऐरावत ने आकाश गंगा के जल से इन्द्र का प्रतिनिधि किया। (अध्याय २७)

१४ -दशरु के बन्धन से नन्द की मुक्ति -एक बार नन्द ने एकादशी के व्रत के उपवास भूख में लगने के लिए ज्योंही प्रवेश किया, वरुण का एक अनुचर उन्हें पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गया। जब कृष्ण को पता लगा तो वे तुरन्त वरुण के समीप पहुँचे। वरुण ने इन्द्र से भयानक स्तुति की और नन्द महित कृष्ण ब्रज लौट आये।

१५ - राक्षसजीवः - दुर्योधन ज्योत्सना ने धवल शरद्वधु की रमणीय रात्रियों में इन्द्र के आ-परमण को इच्छा की। उन्होंने अत्यन्त मधुरगान आरंभ किया। गोपियाँ इस मधुर गान से खींचकर उनके पास दौड़ आईं। उनके पति, पिता, भाई बन्धुओं का मन उन वदुह रीति, किन्तु कृष्णकृष्टमन्य के गोपियाँ किसी के रोके नहीं सकी। जब वे खींचकर के निकल पड़े तो उन्होंने उनका स्वागत कर वहाँ आने का कारण पूछा, जिनके शय भोगों पर सु-सु-सु तो कृष्णने उनसे कहा कि पतिव्रता स्त्रियों का रात्रि में

१. अमुकानि रात्रिं सुखं रात्रिंवाचनम् ।

दशरु नन्दं दृष्ट्वाशुभं चक बभूवुः ॥

श्रीमद्भाग० १०. २५. १६

२. यो मन्वन्तमन्वादात् रात्रिं बीजया ।

यथा विद्यानि विद्यात् सुखं रात्रिंवाचनम् ॥

श्रीमद्भाग० १०. २३. ३

३. अन्वन्तमन्वादात् रात्रिं बीजया ।

यथा विद्यानि विद्यात् सुखं रात्रिंवाचनम् ॥ अत्रि

श्रीमद्भागवत १०. २६-२३ रामर्षाध्यायी ।

सवात्मा कृष्ण की अनन्य शरण न आ गई है। तब आन्साराम परमेश्वर कृष्ण न उनके साथ रहस्य किया। तब गोपियों को अपना सौभाग्य बन मद कृष्ण ता उसे कान्त कर्म के लिए कृष्ण उनके वाच स अन्तर्वास हो गया। सब कायर्षी अत्यन्त आकृष्ट होकर उनकी खोज करने लगी। उन्मत्त होकर स्वच्छोष, पक्ष गौर, पक्षवध, चरि दूर्ध्व, सत, गौ और मुषियों में इनका पना पूछने लगी। कृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगी। इधर कृष्ण एक अन्तरंग गोपी (सम्भवतः राधा) के साथ एकान्त में बसे बसे है। गोपियों ने खोज में कृष्ण के चरण चिह्नों के साथ उन गोपी-चरणों की देखकर उसके भाण्ड की सराहा जिसको कृष्ण एकान्त में ले गए थे।^१ उक्त इन प्रेमप्रतिभा गोपीगमा ने भी कृष्ण में स्वयं को कंधे पर चढ़ाने का आग्रह किया तो कृष्ण वहाँ से भी अन्तर्धान हो गये। सब गोपियाँ मिलकर उस गोपी के समीप पहुँची। उसने सम्पूर्ण वृत्तन्त कह सुनाया। तब सब प्रेम-विह्वलता गोपियों ने आर्त होकर श्रीकृष्ण को पुकारा।^२ श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उन्होंने गोपियों को मानवना दी और उनके निष्काम, पवित्र एवं अनन्य प्रेम का उल्लेख किया।^३ अब श्रीकृष्ण महाराज ने प्रवृत्त हुए। चम्बल, परिरम्भण आदि के साथ श्रीकृष्ण ने अपना चरित्र ताम्बूल भी गोपियों को दिया। दो-दो गोपियों के बीच में कृष्ण उनके गले में हाथ डालकर मण्डलाकार वृत्त करने लगे। विविध वाद्यों के साथ संगीत की स्वर लहरी बूँज उठी। कान्त, गुरु और शिवाजी की सुन्दर प्रतिमा भी लगे लगे। इससे रास से अति आन्त सम्पन्न होकरा स कृष्ण के साथ रहना स सब प्रियतम विद्व।

६०—सुदर्शन उद्धार। सुदर्शन नामक गोदानम अतिशय ही अमूल्य वस्तु है। मर्ष होगया था। विशालतः अतिशय अमूल्य वस्तु के होते ही वे सब से मे दास माने हुए सन्त को पकड़ लिया। गोपी ने उसे उलटने लगे लगे वे पाप से मुक्त करने के लक्ष्य को छोड़ा। तब श्रीकृष्ण के लक्ष्य में सन्त को मुक्त करने का प्रयत्न हुआ। (सम्भवतः १४५)

६१—शंखचूड़। यद्यपि शंखचूड़ नामक वस्तु अत्यन्त ही अमूल्य वस्तु है। तब गोपियों के साथ वन में विहार कर रहे थे। तब श्रीकृष्ण ने शंखचूड़ नामक वस्तु को गोपियों को दे दिया। गोपियों ने शंखचूड़ को पहना और वे सब से अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। (सम्भवतः १४६)

१. गति मिलनिकित वाच अन्तर्वास
२. अत्यन्त मद्धम गोपी
३. अन्तर्धान
४. गोपिकादीप
५. न परपेज निरवका
६. सानक
७. श्रीकृष्णवचन

१०—**अरिष्टासुर वध**—एक दिन कंस प्रेषित अरिष्टासुर नामक दैत्य विशालकाय वृद्ध व हथ धारणकर ब्रज में घुम आया। अपने भयंकर उत्पत्तों से उसने ब्रज में बड़ा नुकसान कर दिया था। कृष्ण ने उसके सींग उखाड़कर पैरों से कुचलकर मार डाला। इसी वृद्ध पर नारद ने कंस को कृष्ण का पता बताया। कंस ने रामकृष्ण की वृद्ध से वृद्ध को मारने के लिए अक्रूर को आज्ञा दी। (अध्याय ३६)

११—**केशि-वध**—कंस ने केशी नामक दैत्य को कृष्ण को मारने के लिए ब्रज में भेजा। यह एक विकराल घोड़े का वेष धारण करके आया। कृष्ण ने उसके मुँह में दूध डालकर मुँहासा बुसाकर मार डाला। (अध्याय ३७)

१२—**व्योमासुर वध**—केशी को मारकर एक दिन कृष्ण गोपों के साथ गोचारण करने पर अर्जुन पर चौर और सिपाही बनकर लुका छिपी का खेल खेल रहे थे। कुछ चौर इन वृद्ध भेड़ चराने वाले और कुछ भेड़ बने। इतने में मयासुर का पुत्र व्योमासुर एक दिन व्योमासुर का वेष धारण कर उनमें मिला गया और चौर बनकर बहुत से भेड़ बने हुए वृद्धों को चुसकर पर्वत गुहा में घेर आया। कृष्ण ने उसका कुकर्ष ताड़ लिया और दमका देव कर दिया। (अध्याय ३७)

१३—**मथुरा मगन**—कंस की आज्ञा से स्वफल्क-पुत्र अक्रूर रामकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए नन्द के गोकुल में आए। जब गोपियों ने यह समाचार सुना तो वे अक्रूर को कुल ही गईं। हृत्ताप जनित उष्ण श्वास से उनके मुख मुरझ गये। कृष्ण ने अक्रूर को उनको देहानुसंधान नहीं रहा। कभी वे विधाता को कोसतीं और कभी अक्रूर को अक्रूर पर कुंभलतीं।^१ कृष्ण के जाते समय वे लोक-लज्जा का त्याग कर उच्च स्वर से रो उठीं।^२ श्रीकृष्ण ने उन्हें पुनः लौट आने का आश्वासन दिया। श्रीकृष्ण और अक्रूर के साथ की ध्वजा और पहियों से सड़ती हुई धूल जब तक दीखती रही, तब तक वे अक्रूर-विन्द ही वहीं खड़ी रहीं। किन्तु उनका मन कृष्ण के साथ ही चला गया था। अन्त में गोपियाँ निराश होकर अपने घर लौट आयीं और कृष्ण-लीलाओं का भान करती हुई अपने किर मिलने की आशा में अहोरात्र भ्यतीत करने लगीं। अक्रूर ने मार्ग में यमुना नदी के किनारे और यमुना के कुण्ड (अनन्त तीर्थ) में सहज गिर युक्त जेष के क्रीड में सबक करके वादल, बरु, बंदों, पश्चादि विमुक्ति, देव, ऋषि विप्र यत्नों में स्तूयमान नारायण-देव के स्तूति किए। तदनन्तर अक्रूर ने परम भक्तिभाव से उनकी स्तुति की। (अध्याय ३८-४०) इसके अतिरिक्त अक्रूरामो गोप-मग्न राम और कृष्ण के पहुँचने से पूर्व ही मथुरा

१. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा ।
 २. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा । श्रीमद्भागवत १०. ३६. १३
 ३. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा । श्रीमद्भागवत १०. ३६. १६
 ४. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा । श्रीमद्भागवत १०. ३६. १६
 ५. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा । श्रीमद्भागवत १०. ३६. १६
 ६. अक्रूर-विन्द कर्म-वर्द्धिता मथुरा । श्रीमद्भागवत १०. ३६. १६

राम कृष्ण ने मदान् 'व स दिगाद्यत गृज उठे। कंस का सना न जब उन पर आक्रमण किया। कृष्ण ने मदान् से हूँ डस्का महार कर दिया। इसल मगरा पु-वासिया न उहे हाड मर मरु ममका वमक बपरान्त तगर राम बल कन करत हूँ कृष्ण सदलबल यथुरा के बानर हरवनस्थ अपने शिविर पर लौट आये। (अध्याय ४२)

४२—कुवलयापीड बध—दूसरे दिन रामकृष्ण प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर एक मन्त्रालय में कंस द्वारा आयोजित मल्लक्रीड़ा देखने गये। कंस की योजना के अनुसार कुवलयापीड अथवा चारगूर, मुष्टिक आदि मल्लो से कृष्ण को मरवा डालने की कोशिश की। रामकृष्ण रंगशाला के द्वार पर पहुँचे तो उन्हें वहाँ कुवलयापीड नामक विशाल मल्ल मिला। जब महावत अंबुष्ठ ने मार्ग न दिया तो कृष्ण ने हाथी से प्रबल युद्ध कर उन्हें मार डाला। दाँतों से ही हाथी और महावतों को मार डाला। (अध्याय ४३)

४३—मल्लनिग्रह—कुवलयापीड का बधकर रामकृष्ण रंगभूमि में प्रविष्ट हुए। दशरथ-श्रीमती-मावसाओ के अनुसार भिन्न-भिन्न नर-नारी उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में देख रहे थे। रंगशाला में कंस प्रेषित 'चारगूर' और 'मुष्टिक' नामक महामल्लों ने रामकृष्ण का बध करने के लिए आह्वान किया। तब श्रीकृष्ण ने चारगूर और बलराम ने मुष्टिक से मार डाला। इनके अतिशक्ति बलराम ने 'डूट' नामक मल्ल को बाँधे मरवा डाला। 'जल' और 'तोशल' नामक मल्ल कृष्ण के चरण प्रहार से मर गये। उनके कारण मर गये। अन्य मल्ल प्राण बचाकर भाग खड़े हुए। मल्ल निग्रह के उपरान्त रामकृष्ण ने अपने सखवयस्क योषों को अस्त्राड़े में खींचकर उनसे प्रेम-पूर्ण वार्ता की। (अध्याय ४४)

४४—कंस बध—कुवलयापीड और मल्लों के बध से कंस अत्यन्त क्रुद्ध और भय-भीत हो गया। वह उन्मत्त की भाँति जल्पना करने लगा। कृष्ण उछल कर उसके ऊँचे मरने पर लौट गये। उनके केश पकड़कर उसे रंगभूमि पर पछाड़ दिया, इस प्रकार बध ने राम-मल्ल अराति कंस का नाश हो गया। कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसके पाँच हाँड भाई 'कंक', 'व्यसोब' आदि आये। किन्तु बलराम ने उन सब को एक परिच से मार डाला। (अध्याय ४५) तदनन्तर राजमहिषियों को सांत्वना देकर कंसादि की यथोचित प्रार्थना किया करवाई। फिर अपने माता पिता देवकी और वसुदेव के पास गये, उनके हाथ में मन्त्र शिखर, विविध प्रकार के उन्हें सांत्वना दी और उनमें पुत्र स्नेह उत्पन्न किया। कंस के मरण उसकेन को युवा समस्त यादवों का अधिपति बनाया। यदु, वृष्णि, अश्वक, मद्रु, उरुहू और कूकर आदि वंशों में उत्पन्न अपने सखे सम्बन्धियों को, जो कंस के भय से विचलित हो गये थे, पुनः अपने-अपने घरों में बसाया। (अध्याय ४६)

४६—रामकृष्ण निर्यात करदरः स्त्रीणां स्तरो मूर्तिमान् ।

४७—कंसोऽसक विविधुकां खस्ता स्वपित्रोः शिशुः ।

४८—कंसोऽपि विविधुकां खस्ता स्वपित्रोः शिशुः ।

४९—कंसोऽपि विविधुकां खस्ता स्वपित्रोः शिशुः ।

नगर के लोग ही वेधभूषाधारी एक पुरुष (उदब) को देखकर उसे घेरकर लड़ी होगई।
 उदब ने जो बातें जाना हुआ वह बड़ा ही मनोरम था। (अध्याय ४६-४७)
 उदब ने 'अमरगीत' नामक प्रसंग है जिसने कृष्ण-भक्ति हिन्दी काव्य को अमर प्रेरणा
 दी। उदब का पृथक् रूप में आने सविस्तर उल्लेख किया जायगा।

२—कुब्जा-गृह-गमन—उदब के मन्द-व्रज से लौट आने पर कृष्ण उनकी साथ
 में अपने पूर्व प्रतिज्ञानुसार कुब्जा पर प्रेमानुग्रह करने के लिए कुब्जा के घर गये।
 कृष्ण ने उनका भक्तिपूर्वक स्वागत किया। कृष्ण ने कुछ दिन कुब्जा का प्रेमान्धिष्य
 किया। (अध्याय ४८)

३—अक्रूर-गृह-गमन—एक दिन श्रीकृष्ण बलराम और उदब के साथ अपने
 घर गये। अक्रूर को अनुग्रहीत करने उनके घर गये। अक्रूर ने दिव्य गन्धाक्षत पुष्पादि से
 उदब का पूजन कर चरणोदक किया और प्रेम विह्वल होकर स्तुति की। कृष्ण ने उनकी
 प्रशंसा की—उन्हें आनन्दित किया तथा युधिष्ठिरादि पाण्डवों की कुशल क्षेम जानने के लिए
 उदब को मथुरा जाने को कहा (अध्याय ४९) अक्रूर ने हस्तिनापुर जाकर मारी स्थिति का
 प्रत्यक्ष किया और मथुरा लौटकर कृष्ण को पाण्डवों के प्रति घृतराष्ट्र, दुर्योधनादि के
 द्वारा अत्याचार का नारा हाल कह सुनाया। (अध्याय ४९)

(आ) दशमस्कन्ध उत्तरार्ध (द्वारका-लीला)

१—जरासंध से युद्ध एवं द्वारका दुर्ग का निर्माण—कंस के वध के बाद
 जरासंध राज्याभिषेक अपने पिता मगधराज जरासंध के घर चली गई। जरासंध ने तेईस
 वर्षों की सेवा लेकर दासवर्ग की राजद्वारी मथुरा पर भयंकर आक्रमण किया। कृष्ण ने
 उसे नगर पराजित किया। किन्तु अठारहवीं दार कालयवन नामक यवन वीर तीन
 वर्षों की अश्व सेना लेकर आया। श्रीकृष्ण ने सुरक्षार्थ समुद्र में बारह योजन विस्तीर्ण
 दुर्ग का निर्माण कराया और मथुरा के निवासियों को योगबल से उस दुर्ग में पहुँचा
 दिया। द्वारका की रक्षार्थ वज्रमद्म को वहाँ छोड़कर स्वयं निराशुभ ही नगर के बाहर गये।
 (अध्याय ५०)

२—राजा मुचुकुन्द द्वारा कालयवन का वध कराना—कालयवन को
 श्रीकृष्ण एक साधारण मनुष्य की भाँति भयभीत होकर भागे और एक पर्वत मुहा में
 छुप गया। वहाँ मान्यता गुप्त राजा मुचुकुन्द सो गहे थे। श्रीकृष्ण ने अपना दुपट्टा उन्हें
 ओढ़ा दिया। उनके कालयवन ने श्रीकृष्ण तमझकर लात से मारा। मुचुकुन्द की क्रुद्ध
 दृष्टि पर ही कालयवन जनकर भस्म हो गया। फिर मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण ने अपना
 राजा बना दिया। मुचुकुन्द ने भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति की और तपश्चर्या के लिए बदरिका-
 शरणागति गये। (अध्याय ५१, ५२)

३—द्वारका-गमन तथा कृष्ण को रुक्मिणी का विवाह सन्देश—श्रीकृष्ण
 को मथुरा में अश्व सेना ने चित्तौ मथुरापुरी में धाये। सेना का संहार करके उसका घन
 शिकार भी छोड़ देने। इसी समय जरासंध तेईस अश्वीहिसी सेना लेकर मथुरा आ पहुँचा।

ब्रह्मसूत्र में पीछा किया। वे प्रवचन ध्वनि पर चल गये। ब्रह्मसूत्र में प्रत्येक शब्द और शक्ति लक्ष्यकारी। दोनों भाई उस पहाड़ में कूदकर द्विस्त्रीय द्वारा का अर्थ। ब्रह्मसूत्र के समकाल कि रामकृष्ण उन गुरु और बहु प्रवचन पाठ गये।

विदर्भ नरेश भीष्मदेव की कन्या लक्ष्मी की अज्ञानकार रक्षितार्थ का कृतक व पुत्रवत्ता उत्पन्न। ... [Faded text]

... [Faded text]

... [Faded text]

... [Faded text]

...

ने उसे कुछ भी समझ लिया। किन्तु श्रीकृष्ण ने लोगों को वास्तविकता बताई। कृष्ण ने समझाते वने न मरिचि नक्षत्रादीश उपसेन को भेंट करने के लिए माँगी किन्तु उसने निषेध कर दिया। कृष्ण चुप रह गये। एक दिन सत्राजित् का भाई प्रसेन उस मरिचि को गन्धे नक्षत्रादीश के पास लेतते वन से गया जहाँ उसे एक सिंह ने मार डाला। सत्राजित् ने अनुभव किया कि सम्भवतः मरिचि के लोभ से कृष्ण ने ही प्रसेन का वध कराया है। किन्तु प्रसेन ने प्रसेन की मारने वाले सिंह को भी गिरिगुहा में रहने वाले जाम्बवान् नामक जवान को मार डाला था और मरिचि अपने बच्चे को खेलने के लिए देदी थी। प्रसेन ने प्रसेन को मारने और लोगों की वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिए कृष्ण प्रसेन को गुहा में ले गये। वहाँ जाम्बवान् की गुहा में वे एकाकी ही चुस गये। अठारह दिन तक उन्होंने गुहा में खूब रोया। जब जाम्बवान् को कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ तो वह उनके सम्मुख आया। स्वयंसेवक मरिचि उन्हें अप्रति कर दिया और अपनी कन्या जाम्बवनी को प्रसन्न करने कर दिया। कृष्ण ने उपसेन के समक्ष स्वयंसेवकमरिचि सत्राजित् को लौटा दिया। मरिचि अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने अती कन्या सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ किया। स्वयंसेवक मरिचि भी कृष्ण को देना चाहता किन्तु कृष्ण ने स्वीकार नहीं किया।

२४. शतघन्वा का वध और अक्रूर को पुनः द्वारका बुलाना—पाण्डवों और कुन्ती के लाक्षाग्रह की विपत्ति का समाचार सुनकर कृष्ण और बलराम हस्तिनापुर गए। उनमें अक्रूर और कृतवर्मा के बहकाने से शतघन्वा ने सोते हुए सत्राजित् का नाम लेते प्रसेन का हाथ धक कर लिया। सत्यभामा अपने पिता के वध का समाचार सुनकर हस्तिनापुर पहुँची। कृष्ण द्वारका आये। शतघन्वा भयभीत होकर भागकर चली। कृष्ण ने मिथिलापुरी तक उसका पीछा किया और चक्र से उसका क्रिन्दन कर दिया। किन्तु शतघन्वा ने स्वयंसेवक मरिचि पहले ही अक्रूर को सौंप दिया था। कृष्ण ने अक्रूर सत्राजित् का और्ध्वदेहिक कर्म किया। अक्रूर और कृतवर्मा ने शतघन्वा के मरणात्तु ही हन्ता के लिए शतकाया था, अतः वे भयभीत होकर द्वारका से भाग गये थे। कृष्ण ने अक्रूर को द्वारका बुलवाया। सबके सामने उनके पास से स्वयंसेवक मरिचि निकलकर आया। कृष्ण ने वह मरिचि फिर अक्रूर को ही दे दिया।

२५. कृष्ण के अन्य विवाह—एक बार कृष्ण सात्यकि आदि यादवों के साथ राजस्थान के हस्तिनापुर गये और वहाँ कई महीने रहे। एक दिन कृष्ण और अर्जुन नक्षत्रादीश के पास गए। यमुना तट पर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा। वह पुत्री कालिन्दी थी और विष्णु के अवतार कृष्ण को ही पति रूप में वरसूचने के लिए आई थी। श्रीकृष्ण उसे अपने साथ ले आये और द्वारका में शुभमूर्त में उसके साथ विवाह करवाया। (यह कालिन्दी साधिभौतिक रूप में यमुना है। यमुना कृष्णपत्नी है इन्द्रियगुण का अर्थात् प्रिय है और कृष्णपति से यमुना का अन्त्य साहाय्य है) अर्जुन के साथ और अर्जुन के बहनवती सामन्त थे। उन्होंने स्वयंवर में कृष्ण

को वरदा करने की इच्छा वाली अपनी बहिन 'मित्रविन्दा' को रोक दिया था। किन्तु कृष्ण ने अपनी पुत्री 'राजाविदेवी' की बेटी 'मित्रविन्दार' को सब राजाओं के देवता-देवता हर लिया और उससे विवाह कर लिया।

कोशल देव के राजा 'नग्नजित्' की कन्या को 'नाग्नजिती' सत्त्वा। उसके स्वयंवर में कृष्ण ने सात दुर्जय बलों को नाशने की कर्त पुरी कर उससे विवाह किया। इसके उपरान्त कृष्ण ने अपनी पुत्री श्रुतकीर्ति की पुत्री केशवदेवीया भद्रा से विवाह किया। सत्यभामर कृष्ण ने मदराज की कन्या 'लक्ष्मणा' को उनके स्वयंवर में एकाकी ही दृश्य कर विवाह किया। (अध्याय ५८)

इम प्रकार पट्टमहिषी रुक्मिणी सहित कृष्ण की साठ महिषियाँ थीं—(१) रुक्मिणी, (२) जाम्बवती, (३) सत्यभामा, (४) काञ्चिन्दी, (५) मित्रविन्दा (६) नाग्नजिती सत्त्वा, (७) भद्रा और (८) लक्ष्मणा।

५७—कृष्ण द्वारा भौमासुर एवं मुरदैन्य का वध तथा सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं से विवाह—प्राञ्चोत्तपुत्र (आसाम) के राजा भौमासुर ने देवताओं का सर्वस्व हरण कर लिया था। देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर कृष्ण सत्यभामा सहित गरुड़ पर आरूढ़ हो प्राञ्जोत्तपुत्र गये। कृष्ण ने मुरदैन्य से रक्षित उनके दुर्ग को ध्वस्त कर मुर को मार डाला। (इसीलिये कृष्ण 'भुरारि' कहलाते हैं।) अन्त में भौमासुर स्वयं युद्ध में प्रवृत्त हुआ किन्तु श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र में उसका भी शिरच्छेद कर दिया। भौमासुर की माता पृथ्वी ने कृष्ण को देवताओं से सर्वस्व हरण करने की प्रशंसा की स्तुति की। भौमासुर ने अनेक राजाओं के सौतेले बच्चे को मार डाला था। कृष्ण ने उन कन्याओं को अपने यहाँ बन्दी कर रखा था। कृष्ण ने इनको मुक्त कर दिया। उन सब मन ही मन कृष्ण को पति रूप में अपना चुने। कृष्ण ने उनसे विवाह करके (इन्द्र) के साथ उन सबको द्वापरका भिखारि देवा नगरेण्डर उष्य के युद्ध में अपने साथ देव सम्पत्ति उसे सौंपी। सत्यभामा के आग्रह से कृष्ण ने सत्यभामा को अपने साथ कृष्ण के द्वारा लाकर सत्यभामा के सत्त्वान न बना दिया। कृष्ण ने कृष्ण के साथ सत्त्वान एक ही कन्याओं से विवाह करने का विचार किया। (अध्याय ५९)

५८—रुक्मिणी की प्रेम-परिक्षा—प्राञ्चोत्तपुत्र के राजा भौमासुर ने रुक्मिणी से पूछा कि अन्व अति पनाभम साकल्य पर दिव्यगुण भवती के साथ तुम की तुमने भुम्भी को पति रूप में क्यों चुना। तब भौमासुर ने सत्त्वान प्रतिक्रिया देकर परब्रह्म परमेस्वरत्व प्रतिपादन किया। तब श्रीकृष्ण ने उनसे सत्त्वान प्रदान कर दिया। (अध्याय ६०)

५९—कृष्ण की सन्तति एवं आजगुह्य के विशाल से स्वर्ग का वध—श्रीकृष्ण की पत्नियों में से प्रत्येक को इस वध हुआ। कृष्ण के स्वर्ग को उदारी पत्नी रुक्मवती (रुक्मिणी के भाई रुक्मिणी की पुत्री) के 'अग्नि' नामक पुत्र प्राप्त हुआ। यद्यपि रुक्मिणी श्रीकृष्ण से वर रखता था, तथा रुक्मवती ने अपने स्वर्ग में कामदेव-वधवार

कर्मिणी का विवाह जयवन्त कात्र म हुआ। कर्मिणी ने अत्यन्त बहिन कर्मिणी का लम्बे केश कर्मिणी को रावण का विवाह अनिरुद्ध म का लिया। विवाह क अवसर पर ही कर्मिणी का कर्मिणी को प्रणाम से कर्मिणी ने वचन म य द्युत काव का। एव प्राथम बार ... (अध्याय ६१)

— कर्मिणी का अत्यन्त सन्तानम एवं बाणासुर से कृष्ण का संग्राम इत्यराज ... कर्मिणी नाम की प्रति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में ... बाणासुर को बाणासुर की राजधानी शोशितपुर ... जब बाणासुर को पता चला तो उमने अनिरुद्ध ... बाणासुर की शोभ में कृष्ण भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण ... बाणासुर को अभयदान देने की प्रार्थना की। ... अनिरुद्ध को उसकी बधू लब्धा महित दारवा ... (अध्याय ६२)

— कर्मिणी का अत्यन्त सन्तानम एवं बाणासुर से कृष्ण का संग्राम ... कर्मिणी नाम की प्रति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में ... बाणासुर को बाणासुर की राजधानी शोशितपुर ... जब बाणासुर को पता चला तो उमने अनिरुद्ध ... बाणासुर की शोभ में कृष्ण भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण ... बाणासुर को अभयदान देने की प्रार्थना की। ... अनिरुद्ध को उसकी बधू लब्धा महित दारवा ... (अध्याय ६४)

— कर्मिणी का अत्यन्त सन्तानम एवं बाणासुर से कृष्ण का संग्राम ... कर्मिणी नाम की प्रति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में ... बाणासुर को बाणासुर की राजधानी शोशितपुर ... जब बाणासुर को पता चला तो उमने अनिरुद्ध ... बाणासुर की शोभ में कृष्ण भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण ... बाणासुर को अभयदान देने की प्रार्थना की। ... अनिरुद्ध को उसकी बधू लब्धा महित दारवा ... (अध्याय ६५)

— कर्मिणी का अत्यन्त सन्तानम एवं बाणासुर से कृष्ण का संग्राम ... कर्मिणी नाम की प्रति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में ... बाणासुर को बाणासुर की राजधानी शोशितपुर ... जब बाणासुर को पता चला तो उमने अनिरुद्ध ... बाणासुर की शोभ में कृष्ण भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण ... बाणासुर को अभयदान देने की प्रार्थना की। ... अनिरुद्ध को उसकी बधू लब्धा महित दारवा ... (अध्याय ६६)

का अभिचार किया और माहवरी कन्या को कुण्ड पर छोड़ा। किन्तु सुदकन वक्र ने तैय्य स
 यह कन्यामाल लौट पड़ा और उसने ऋत्विग-सू संहिता सुवर्णिका का ही कटाकर भस्म कर
 वाला अध्याय ६६)

६४—द्विविद्वच—नरकासुर के मित्र द्विविद नामक महादेवी कानर ने दानवों
 देव में बड़ा उत्पात मचा रखा था। एकबार जब बलराम अपने यमिनी बंधुओं से कश्चित्त
 रैवतक पर्वत पर निवास कर रहे थे, उस समय द्विविद ने साबर जंगलों रमणियों का
 अपमान करना और उनसे असभ्य व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। बलराम ने उस उत्पाती
 कानर पर अपने हल और सूसन से प्रहार किया। द्विविद ने भी साबर के वृक्ष उखाड़-उखाड़
 कर उन पर भयंकर आघात करने की चेष्टा की। अन्त में बलराम ने मृष्टि-प्रहार से उसका
 वध कर दिया। (अध्याय ६७)

६५—साम्ब का विवाह—कुण्ड की पत्नी जाम्बवती से साम्ब नामक पुत्र था।
 साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री 'लक्ष्मणा' को उसके लयनर में से हराकर लिये। दुर्योधन
 कर्ण आदि ने साम्ब का वध किया। साम्ब से पी-पी का पार जुड़ हुआ किन्तु कानर
 ने साम्ब को लयनर लक्ष्मणा सहित हस्तनागपुर लेके गये। उधर बलराम हुए।
 पहुँचा तो पादक तो बड़े योग हुआ। वे कौरवों पर आक्रमण की चेष्टा करने
 लगे। किन्तु बलराम ने उनको मसभ्य वृक्ष कर जाम किया। प्रारम्भ उदय के लक्ष
 हस्तनागपुर पहुँचे। उन्होंने उदय की कौरव सभ में प्रवेश कर 'सा' नाम का वध किया।
 किन्तु कौरवों ने साम्बमठग नतकी उण्डा और डामान दिए। यह वधनाम पुत्र होकर
 कर्ण हले की नाक में हस्तनागपुर की उखाड़ कर कानर से उदय के लिए लौटने लगे।
 तब कौरव गण नगर्भत होकर लक्ष्मणा उखाड़ कर कानर से उदय और लक्ष्मणा को
 अपने कर बलराम की मरणा से आरंभ। बलराम उदय लेकर लक्ष्मणा उखाड़ जाये।
 (अध्याय ६८)

६६—देवाय नारद द्वारा कुण्ड की दिनचर्या का अवलोकन और नारद
 का विस्मय—लक्ष्मणा की मरणाचर्या के बाद ही—नारद ने उदय के लक्ष्मणा को
 स्त्रियों से नारद के विद्वान् का नामान्तर सुनकर नारद को उपपन्न हुआ और वे लक्ष्मणा
 कुण्ड की दिनचर्या देवता द्वारा ही। नारद के लक्ष्मणा से भयानक प्रश्नों से लक्ष्मणा ने
 प्रविष्ट होगे नर नारद ने सुनाया। लक्ष्मणा ने लक्ष्मणा से लक्ष्मणा का उदय देवता
 आतिथ्य किया। जब नारद ने लक्ष्मणा से प्रश्न किया तो कुण्ड काही दूसरी कन्या
 और उदय ने लक्ष्मणा से प्रश्न किये। नारद ने एक उत्पाती प्रचलन मनुष्य की बात
 उनसे वहाँ की कृत्य प्रश्न किया। उन प्रश्नों नारद के लक्ष्मणा से लक्ष्मणा से लक्ष्मणा
 में जाते रत्न और सर्वत्र लक्ष्मणा के विद्वान् लक्ष्मणा ने लक्ष्मणा देवता। लक्ष्मणा
 कानरों का दुहार रत्न, कन्या लयन कर रहे थे, लक्ष्मणा लक्ष्मणा कर लक्ष्मणा, लक्ष्मणा विद्वान्

भीम को बताया कि जरासन्ध के शरीर के दो पृथक्-पृथक् खंड हैं जो 'जरत' नाम की दक्षिणी द्वारा उनके जन्म के समय जोड़े गये थे। कृष्ण ने एक वृक्ष की छाँटा को नीचे डुब भीम को जरासन्ध के वक्ष का उपाय बनाया। भीम ने जरासन्ध की एक टाँग अपने पैर में दबा कर दूसरी को दोनों हाथों से पकड़ कर जरासन्ध को नीचे डाला। कृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया, और त्रिन भीम कृष्ण राजार्यों को जरासन्ध ने बंदी कर रखा था, उनको मुक्त कर दिया। (अध्याय ७२)

१००—कृष्ण का चन्दी राजाओं को अभयदान तथा इन्द्रप्रस्थ-आगमन-कारावास से मुक्त हुए, नील, मलीन, क्लेशकाय राजार्यों ने शक्ति कुतूहल ही शक्ति सहदेव स्वर में कृष्ण का स्तवन किया। कृष्ण ने उन्हें सेवकों द्वारा स्नान, क्षौरादि कराकर कराकण-पुत्र सहदेव से राजोचित वस्त्राभूषण, भोजन, शकृ, चन्दनादि द्वारा सम्मानित कराकर स्वदेहों को बिदा कर दिया। भीमसेन द्वारा जरासन्ध का वध कराकर कृष्ण भीमाशुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले आये। जरासन्ध के वध से ही कृष्ण ने युधिष्ठिर का दिग् विजय कार्य पूर्ण कराया। (अध्याय ७३)

१०१—राजसूय यज्ञ में कृष्ण की अपपूजा और कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध—दिविजय के अनन्तर कृष्ण की अनुमति से युधिष्ठिर ने यज्ञ में ऋत्विजों का वरण किया और उन्होंने शास्त्र-विधि से युधिष्ठिर को यज्ञदीक्षा दी। युधिष्ठिर ने सर्व-सम्मति से यज्ञ में 'अपपूजा' के लिये श्री कृष्ण का वरण कर अतिशय भक्ति-भाव से साक्षात् ईश्वर समक कर उनकी पूजा की। कृष्ण के अत्यन्त नाहात्म्य और गुणों का अवलोक कर दमघोष-पुत्र शिशुपाल जल उठा। वह अपने आसन से उठकर नाना दुर्करियों से कृष्ण की मर्त्याना और अपमान करने लगा। तब सबके समक्ष कृष्ण ने अपने मुहसैन बक्र में शिशुपाल का शिरच्छेदन कर दिया। राजसूय यज्ञ का अवशेष-स्नान हो जाने पर कृष्ण युधिष्ठिर के शत्याग्रह पर कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ में ही रहे। (अध्याय ७४)

१०२—राजसूय के अवशेष स्नान का महोत्सव और दुर्योधन का अपमान—राजसूय में युधिष्ठिर के बान्धवों ने विभिन्न सेवा-कार्य संभाले थे। श्रीकृष्ण ने पाकसाला का, दुर्योधन ने कोषाध्यक्षता का और कृष्णाशुन ने भातिष्य का कार्य संभाला था। श्रीकृष्ण स्वयं अतिथियों के वाद प्रकालन का कार्य करते थे। अवशेष स्नान में श्री पुत्रियों की शयन-कीर्ति-दृश्य देखा जाता था। तब दुर्योधन ने शिशुपाल को दानव-दान-निमित्त अपने सम्बन्धों की विविध मन्त्र-यज्ञ में श्रीकृष्ण के अशक्त होने हुए के लिये दुर्योधन की वकी धारणा। यह मन्त्र-यज्ञ से शक्य है कि यज्ञ-यज्ञ के लिये यह अपमान में मन ही मन कातामर से उत्तरा-जुरा-समाधत्तन ने उठकर कहा गया। दुर्योधन के हृदिगत पृ-वने आगे पर-भार्य-कार्य की अज्ञानता में युधिष्ठिर प्रथमवचक हो गये। (अध्याय ७५)

१०३—शात्व और गार्ध्वी का युद्ध एवं कृष्ण द्वारा शान्त्य का वध-शिशुपाल का शिर-स्तन-संकायनी हाक के लिये शरणागति के अनन्तर राजसूय का। यह है

निरन्तर प्रतीकार की इच्छा रखते हुए शाल्व ने शिव की आराधना की और शिव की कृपा से 'सोम' नामक दुर्जेय विमान प्राप्त किया। उस विमान पर आरूढ़ होकर वह द्वारका पहुँचा। उन्हीं द्वारका पर आक्रमण किया। पादवीं और शाल्व में सत्ताईस दिन तक युद्ध हुआ। युद्ध में प्रमुख भाग प्रद्युम्न ने लिया और वे आहत हो गये। कृष्ण तब भी युद्ध-क्षेत्र में दृष्टिगौर के राक्षसीय यज्ञ से चोटे नहीं थे। अप्सरकुन्नों को देखकर क्रूर हुए। वे पादवीं को उन्होंने द्वारका को शाल्व की माया से आवेष्टित पाया। कृष्ण ने शाल्व को युद्ध करने चने। कृष्ण और शाल्व में भीषण युद्ध हुआ शाल्व ने शाल्व के विमान 'समुद्र' को श्रीकृष्ण के सामने मार डाला। शाल्व में कृष्ण ने गदा प्रहार से शाल्व का विमान 'सोम' नामक विमान खण्ड-खण्डकर डाला और सुदर्शन चक्र से शाल्व का शिरच्छेद कर दिया। (अध्याय ७७)

१०४ - कृष्ण द्वारा दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध—अपने दिवंगत मित्र योगेश्वर, मित्र, शाल्व आदि का वधला जेन के लिए कल्प नरेश 'दन्तवक्त्र' ने कृष्ण का दण्ड-प्रहार किया। किन्तु कृष्ण ने अपनी कौमोदकी गदा के सकृत् प्रहार से ही दन्तवक्त्र को मार डाला। कृष्ण ने अपनी कौमोदकी गदा के सकृत् प्रहार से ही विदूरथ को मार डाला। 'विदूरथ' खड्ग-हस्त होकर कृष्ण से युद्ध करने आया, किन्तु कृष्ण ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर दिया। (अध्याय ७८)

१०५ - बलराम की तीर्थयात्रा और बलराम द्वारा सूत का शिरच्छेदन—दन्तवक्त्र और विदूरथों के युद्ध की सम्भवता देखकर किसी भी पक्ष की ओर से भाग न लेने के विचार से तीर्थस्नान के बहाने द्वारका से चले गये। अनेक तीर्थों का पर्यटन करते हुए वे नर्मदा नदी के तट पर पहुँचे जहाँ ऋषिगण स्नान कर रहे थे। बलराम ने वहाँ व्यास-पीठ पर आसीत होकर 'श्रीमद्भागवत' सूत को देखा। सूत ने बलराम का अभ्युत्थानादि से पूछा कि तुम कौन हैं? बलराम ने क्रोध होकर कुशाग्रों से उसका शिर कट डाला। शिव ने क्रोध होकर द्वारका आने और प्रार्थना करने पर बलराम ने प्रावृत्त स्वल्प प्रार्थना करके भारतवर्ष की परिक्रमा करते हुए तीर्थस्नान करना और यज्ञ-विश्वसक बलराम ने भारतवर्ष का वध करना स्वीकार किया। (अध्याय ७९)

१०६ - बलराम द्वारा बलवत्-वध और तीर्थयात्रा—वध नैमिषारण्य के यज्ञ के दिवस रात्रि हुआ तो राक्षस बलवत् ने मलमूत्रादिक अपवित्र वस्तुओं की वर्षा प्राण-शरीर पर किया, बलराम ने अपने धनुर्बल-हस्त-मुसल का आवाहन किया और उस ने राक्षस को अपनी ओर खींचकर क्रोध से उसके सिर पर दण्ड-प्रहार से उसका प्राणान्त कर दिया। ऋषियों ने बलराम को दिव्य कमलों की देव-प्रीति-दण्ड और आनन्द-प्रदान कर उनकी स्तुति की। तदनन्तर बलराम प्रयाग, गङ्गा, गङ्गा-तट, नन्दनवृक्ष, श्रीपर्वत, केरुट पर्वत, कांचीपुरी, श्रीरंगक्षेत्र, दक्षिण मधुरा, मन्नेरुत, तन्वजुमारी, मन्नेरुत तक जाकर लौटते हुए केरल, त्रिमूर्ति, नोकर्ण नामक शिव-शक्ति-स्थानों (मन्नेरुत, आरु, का, चूरु) होते हुए तमिः, पञ्चोष्णी आदि नदियों में स्नान करने हुए, बलवत्-वध, महाविष्णुपुरी और मन्नेरुत होते हुए प्रयाग-क्षेत्र

(शारका) में लौट भाये । फिर यह सुनकर कि भीम और दुर्वाचक रसभूषण के गदा-मुद्ग कर रहे हैं, बलराम उन्हें बुद्ध दे । ... दोनों नहीं माने । तब दैत्येन्द्रक समझकर ... एक बार अपनी पत्नी रेवती सहित ... पत्र कराये । यज्ञान्त स्नान कर बलराम पुनः शारका लौट आए ।

१०७— कृष्ण द्वारा ब्राह्मण (मुद्रादायः) । कः आर्त्तित्यस्य मन्त्रादायनमद्दृष्टव्यं निवारण—एक जितेन्द्रिय, ब्रह्म ब्रह्मो, जितेन्द्रियः ... एक दिन उनकी पत्नी ने कहा कि 'मन्त्रादायनमद्दृष्टव्यं निवारण' ... उल्लस्य यादवों के स्वामी हैं । तुम बड़े हूँ, मेरी ... वन दोगे । वे शरणागत बतसख हैं।' ... जब उन्होंने स्त्री से कृष्ण के लिए कुछ ... पड़ोस में माँगकर एक कपड़े में बाँध कर ... पड़े । शारका पहुँचने पर तीन सैनिक मुद्रादायन को ... को धार कर ब्राह्मण देवता कृष्ण की मूर्ति ... ब्राह्मण को दूर से ही देख कर कृष्ण ... मित्र को सहर्ष भुजपाश में कस कर ... मित्र को पर्यंक पर बिठा कर स्वयं पूजन की ... प्रति कृष्णकाय थे । उनके वस्त्र जीर्ण ... सस्कार करते देख रुक्मिणी आदि विभिन्न ... दोनों मित्र एक दूसरे का हाथ पकड़ कर ... याद करने लगे । किम प्रकार मुद्रादायनी ने ... में भेजा था । और वहाँ किस प्रकार वे ... रातभर अंधकार में मटकते रहे और फिर ... ले गये । कृष्ण ने ब्राह्मण से प्रेम पूर्वक ... किन्तु ब्राह्मण देवता ने वह चार ... चित होकर मुँह नीचा कर लिया । किन्तु ...

१ इति संकित्य मनसा यननाय मनि वधि ।
अथस्तुपायनं किञ्चित् गृहे कल्पादि दीनान् ।
चचिन्वा जगुरे मुष्टिन् विमात् पशुकायुगलात्
जैतस्यपदेन तान् बद्ध्वा भर्जे प्रादाद्दुपायनम् ।
२ अथोषधेरिव बर्षके स्वयं सकृद्युः समर्शयन्
उपहृत्याकनिकास्य शर्षः पादाकनोद्यमीः ।

कृष्ण (जनक) भी उनका अनन्य भक्त था। कृष्ण ने उन दोनों पर ही अनुग्रह करने की इच्छा से रक्षाकूट हूकर विन्हे देण्ड में पदापण किया। अपने इष्टदेव को आभ्ये देखकर श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनों ने ही कृष्ण को दण्डवत् प्रणाम किया। कृष्ण ने उन दोनों को युगपत् विम्वरका की स्वाकार किया तथा दो रूप धारण कर उनका भक्ति पूरा आतिथ्य ग्रहण किया। उन पर अनुग्रह करते हुए कुछ दिन मिथिलापुरी में रह कर कृष्ण द्वारका आभ्ये।

१११.—वेद-स्तुति—परीक्षित ने शुकदेव से प्रश्न किया कि सदसत् से परे, निर्गुण ब्रह्म का प्रमाण गुणमयी श्रुतियाँ कैसे कर सकती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में शुक ने शिव और नारायण और नारद के संवाद रूप में एक गाथा सुनाई कि पूर्वकाल में जन-मंडल निवासी ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने ब्रह्म-मंत्र का अनुष्ठान किया। वहाँ सनन्दन को वक्ता बनाया गया। सनन्दन ने कहा कि जिस प्रकार सोये हुए सन्नाट को प्रातःकाल होने पर बन्दो जन तन्वः सुयक्ष मान कर उदबुद्ध करते हैं उन्मी प्रकार स्वरचित निखिल प्रपंच को शक्ति-मयि प्रपने में लीन करके सोये हुए परमात्मा की श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करने वाले वाद्यों द्वारा जगामी हैं। श्रुतियाँ कहती हैं कि हम कभी तो माया के साथ क्रीड़ा बन्त हैं। कभी स्वस्वरूप में स्थित परब्रह्म परमेश्वर का प्रतिपादन करती हैं। ब्रह्म ही एक दिव्य जी उत्पत्ति, स्थिति और संहार के विषय में समुण (नारायण) रूप से उत्प्रेक्षा। प्रत्येकलक्षण संकल्प) करता है। वही जगत् की मूल कारण भूतमाया का निरास करता है। दशोऽंश है। (अध्याय ८७)

११२.—शंभुसोचन (वृकासुर वध)—परीक्षित ने शुकदेव से शिव और विष्णु नन्द के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो शुक ने बताया कि शिव तो समुण एवं त्रिविध अहंकार ने अनेकशतक है किन्तु विष्णु प्रकृति से परे, निर्गुण है। विष्णु का भजन करने वाला निर्गुण हो जाता है। एक बार भगवान् शिव वृकासुर को वरदान देकर स्वयं सकट प्रस्त हो गये थे। उस समय विष्णु ने उनकी रक्षा की। नारद के उपदेश से वृकासुर ने शिव की शरण-धरणा कर उनसे यह वर ले लिया था कि मैं जिस-जिसके सिर पर हाथ रख दूँ वही मर जाय। शिव ने यह वर दे दिया तो उस असुर ने मुंदरी पावंती को हरण करने और वर की शरण-धरणा के परीक्षा के लिए शिव के सिर पर ही हाथ रखना चाहा। शिव को समस्त संसार ने जाने पर भी जब कहीं जरण नहीं मिली तो वे विष्णु के दिव्य वैकुण्ठ में पहुँचे। विष्णु ने उनको वृकासुर से बचाया। उन्होंने एक ब्रह्मचारी का वेष धारण कर वृकासुर के शरण-धरणा की इस बात का कोई विश्वास नहीं है कि उन्होंने तुम्हें जो वर दिया है

१. अथर्ववेद-अदिमन्त्रनिघन्ते षोडशकजीवित्वतो ।
 २. भृशवेद-मुनिविरस अदिस्था चक्रे पुरः शास्त्रिताः ॥
 ३. अथर्ववेद-अथर्वजापमनुशर्षी सुक्तः कुलायं यथा ।
 ४. शिव-वन्दे-सर्वकोशिनभक्तं ध्यायेद्दत्तं हरिम् ॥

काव्य के अध्ययन का कृष्ण-लीला का भागवतीय स्वरूप स्पष्ट हो सके जाता कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। कृष्ण भक्त कवियों का मन विशेष कर कृष्ण का व्रज लीला में ही गया है। पंडितवर्य-सम्पन्न वरकावीर-कृष्ण की लीलाओं का वसुदेव सूर आदि कवियों ने किया अवश्य है किन्तु केवल श्रीमद्भागवत की सही भक्ति-सरणि का सादर अनुगमन करने की श्रेयशाली को लोक-प्रणय में सर्व-मुलभ बनाने के लिए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की लीलाओं का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने से हम निम्न-लिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं -

निष्कर्ष

(1) व्रज प्रेम-लीला का उद्देश्य भक्त को दिव्य आनन्द में भग्न करना है। भक्त को प्रेम-लीला के माध्यम से प्रेम-भक्ति और नैसर्गिक बाललीलाओं से प्रमुदित होते हैं। उन लीलाओं में प्रेम-भाव लेने वाले गोप-बालक हैं।

(2) श्रीमद्भागवत का उद्देश्य प्रगाढ़ प्रेम-भक्ति का उद्रेक करना है, जिसे प्राप्त करने के लिए भक्त-पुरुषों के विषे निषेधों का अतिक्रमण कर सर्वात्मना कृष्णार्पण से काम आदिना है। इस लीला का मुख भाग लेने वाली व्रज की गोपियाँ हैं।

(3) कृष्ण की लीलाओं में कुछ प्रेम-लीलाओं को छोड़ कर बलराम प्रिय-निन्दार कृष्ण के साथ रहते हैं। श्रीमद्भागवत के वासुदेव (कृष्ण) के साथ संकषण-रजसभ) का जिवन-सम्बन्ध है। बलराम का व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से भी बहुत प्रभावशाली रूप में प्रकट है।

(4) श्रीमद्भागवत का प्रत्येक कृष्णपक्षीय पात्र कृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर मानता है, जिन्होंने अपनी भाव-शक्ति में वरलोक-मनोरम सपुण और साकार लीला-विग्रह बनाए हैं।

(5) श्रीमद्भागवत भक्त की रक्षा के लिए भगवान् सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं। वे सब-कुछ कर दिव्य लीलाएँ इसका प्रमाण हैं।

(6) श्रीमद्भागवत का अर्थ सर्वत्र प्रतिपादित है और वैष्णव-सिद्धान्त एवं महात्म्य के अन्तर्गत लीलाओं में श्रेष्ठतर बताया गया है। विशेषकर शैव-सिद्धान्त की श्रेष्ठता को वैष्णव-मन्य का अनुभव बताया गया है।

लीला के उपकरण

यद्यपि हम कृष्ण-लीलाओं का उल्लेख हो चुका है तथापि उनके अन्तर्गत कुछ विशिष्ट लीलाओं को उनके उपकरणों के स्वरूप का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। निम्न-लिखित वर्णन हिन्दी-कृष्ण-काव्य में श्रीमद्भागवत के भक्ति-परक दृष्टिकोण के अन्तर्गत हुआ है। श्रीमद्भागवत में प्रत्येक कृष्ण-लीला का एक विशिष्ट उपकरण तथा समन्वय बना जाता है और कृष्ण लीला के गोपी, यमुना आदि

उपकरणा अपने स्थूल आविर्भाविक रूप के मूल में एक सुष्ठु, रिष्य, साध्यात्मिक रूप ही रहते हैं। वास्तव में वही उनका पारमात्मिक रूप है। इस मूल बात को समझे बिना श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीला एक निरान्त प्रकृत व्यापार ही मानना होगी। यतः यज्ञ, श्रीर आवश्यकतानुसार आये भी ऐसे विशिष्ट नस्त्रों का विवेकन किया जायगा।

व्रज—(गोकुल) श्रीकृष्ण की नित्य सत्कर्म और कर्त्तव्य विहार के कारण श्रीमद्भागवत में व्रजभूमि को अत्यन्त पृनीत और स्नातनीय माना गया है।^१ व्रजभूमि को अन्य माना गया है क्योंकि वहाँ भिव और कमला के लिए भी जिनकी चरकरण प्रयत्न है के कृष्ण वेणुवादन और गोचारण करते हुए विहार करते हैं। व्रजभूमि में किसी कम में श्रीर विशेषकर गोकुल में लज्ज पाने के लिए देवता भी लाजायित रहते हैं। देवराण गोकुलवासी की चरण रज से अपने को पवित्र करना चाहते हैं, क्योंकि गोकुलवासियों के परम सुष्ठु श्रीकृष्ण वहाँ निवास करने हैं।^२ व्रज शब्द श्रीमद्भागवत में 'शायो के समूह' और 'स्थान विशेष' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।^३ कुछ स्थलों पर 'व्रज' शब्द का अर्थ 'व्रजवासियों' के अर्थ में भी हुआ है।^४ अनुमान होता है कि पहले मथुरा के मासने यमुना के दूसरे तट पर एक विशाल मघनवन और साइल-भूमि थी। वहीं पर नन्दादि गोपमण्डल अपने ही समूह (गोकुल) के साथ रहते थे। उसी वृहत् वन को कानान्तर में 'गोकुल' नाम से पुकारा गया।^५ व्रज की सीमा पहले 'गोकुल' तक ही विस्तृत थी। मथुरा नगरी ही स्पष्ट ही व्रज सीमा से बाहर थी।^६ यहाँ तक कि वृन्दावन को भी व्रज का निकटवर्ती एक 'सुन्दर नव कानन' कहा गया है।^७ जब गोकुल पर कम द्वारा नित्य नये अत्याचार होने लगे तो किसी महान् अनिष्ट के होने से पूर्व ही व्रज वासियों ने व्रज को परित्याग कर अन्धध ज्ञाने का

- १ अदो अलं स्नात्स्वत्समं वदोः कुलम् । अदो अलं पुस्थत्समं मधोर्वनम् ॥
वदेष पुं नाष्ट्वमः भिवः दिवः स्वन्नमना चक्रमखेन कादृदि ॥ श्रीमद्भाग० १. १०. २६.
- २ श्रीमद्भागवत १०. ४४. १३ तथा १०. १४. ३२:
- ३ व्रजान् स्थान्दान्ममायुज्व यन् कृदपरिक्वदः । श्रीमद्भाग० १०. ११. ३०.
स गोत्रजोऽस्वात्मपुंगवाम् । श्रीमद्भाग० १०. ११. ३०.
क्ता विदूराश्चरणो बावो वत्सान् उपजम् । श्रीमद्भाग० १०. १४. २१.
गोवर्षनादिशिरमि करन्त्यो ददुस्तुखम् ॥ श्रीमद्भाग० १०. १४. २१.
- ४ नन्दादयः समासम्ब व्रजकार्यमन्त्रणम् । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.
व्रजस्य मातमनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम बर्षते ॥ श्रीमद्भाग० १०. १४. २१.
- ५ गोपवृद्धा मधोप्याताननुपूर्व वृहदवने । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.
नन्दादयः समासम्ब व्रजकार्यमन्त्रणम् । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.
- ६ यदि कंसाद् विभेति त्वं तर्हि मां योतुः नमः । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.
- ७ वनं वृन्दावनं नाम यथाचं नवकाननम् । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.
कोपकोपीयकां देव्यं पुष्ट्यादितुल्यवोहम् । श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.

सुकोमित रहते थे। मधुर, मृदु, कोकिल, सारसदि कनकधर करते रहते थे। समस्त कृपा-
वन क्षेत्रज्ञ चन्द्रज्योत्स्ना से रंजित रहता था। उसके चर-प्रकृत्य मनुवा-जल के स्थान से
शोतल मन्द पवन की गति से हिलते रहते थे। अता-इस मन्द मन्दर ह्रासित पुष्पो से
मण्डित रहते थे।^१

अपनी उपर्युक्त विवेचनाओं के कारण वृन्दावन में योद्धा-काल से भी अत्यन्त-प्रसिद्ध हो
दिलवाई गयी थी। इसलिये श्रीकृष्ण ने कनकराम महिष गोकारकादि के लिए वृन्दावन का
सुना था।^२ श्रीकृष्ण के चरस्य चित्तों में अपूर्व सोमा प्राप्त करने के कारण श्रीकृष्ण के
विचार से तो वृन्दावन भूलोक की कीर्ति सर्वत्र फैला रहा है।^३ श्रीकृष्ण के विचार से
कारण वृन्दावन के वातावरण से क्रोध, लोभ, द्वेषादि की निर्गत हो गई थी। और
नैसर्गिक चर रहने वाले प्रसूती भी पनपर प्रेम में रहते थे।^४ वृन्दावन के प्रत्येक लोक
प्रसिद्ध कीड़ाएँ करते हुए कृष्ण और कनकराम वहाँ की लसी, पर्वत-सुन्दरा, कुंजवन और
सरोवरों में विहार करने थे।^५ उनकी मिषप-सुन्दर वृन्दावन में कृष्ण बभराय एवं अन्य
गोप बालकों के साथ गो-चारण करते हुए वैकुण्ठ-वादन करते थे।^६

यमुना—वक्र में प्रवृत्तमान कलिद-नगदा यमुना कृष्ण-नीला की प्रत्यन्त सुन्दर
उपकरण है। जन्म से ही कृष्ण और यमुना का सम्बन्ध मुटु है। कृष्ण के जन्म के लीड़ी
ही देर बाद वसुदेव उन्हें यमुना को पार करके नन्द के गोकुल में ले गये। यहाँ से वहीं हुई
यमुना ने भी उन्हें मार्ग दिया।^७ गोकुल भी यमुना तट पर ही स्थित है। कृष्ण का लीटप
यमुना के पुलिन-प्रदेश पर गोप बालकों के साथ विविध कीड़ाएँ करते हुए अत्यन्त हृष्य।
कंस के अत्याचारों से पीड़ित होकर जब गोपयज्ञ गोकुल के वृन्दावन ससे तो कनकराम और

१ श्रीमद्भागवत. १०. १८. १—८. १० २६. २२.

२ व्रजे किञ्चोद्धोरेवं गोपालच्छद्रममावसा।

ग्रीष्मो नामतुरभकन्नातिप्रैकाञ्चरोरिवात् ॥

स च वृन्दावनगुह्यैर्वसन्त इव लङ्घितः।

यत्रान्ते भगवान्साक्षाद् रामेख मद्र कैरावः ॥

श्रीमद् १० १८. ५. ६.

३ वृन्दावनं सखि भुवो विठमोनि कीर्तिं पद्मे शक्रीशुनपदाभुप्रलज्जककीर्तिम्।

शोकिन्दवेसुमनु मत्तमशूकृथं प्रेक्षयादिसन्धरगान्कमसत्तसर्वम् ॥

श्रीमद् १०. २६. १०

वृन्दाख्यं स्वपदरमखं श्रविसद् गीर्तनीनिः।

श्रीमद् १०. २६. ६.

४ वक्र वैसर्गदुर्वैराः सङ्गामन्वृत्तगदवः।

मिश्रशोभःकित्तावासद् तन्मन्वृत्तदिकम् ॥

श्रीमद् १०. २६. ३०.

५ एवं लौ लोकमिदाभिः कीर्वाभिरपेरतुर्विने।

नयत्रिप्रोमिक्कु जेषु याननेकु सरस्तु च ॥

श्रीमद् १०. २६. १०

६ कुटुमितवनराजिकुमिभृ मदिबकुसपुष्ट सरानि मः ॥

मधुपतिरवश्याङ्क सरसन्माः सख्यशुनावचउकुतु ॥

श्रीमद् १०. २६. २

७ सखोनि कर्षितसङ्कडमाकुवा कभीरतोपैप्रदके ॥

यत्रावृत्तान्तैरावकुवा नयो कर्षो ददौ मिनसुतिव ॥

श्रीमद् १०. २६. १०

को गाय बालका क साय बन्त के नवीतम स्थान क रूप मे चुता । वहा का बालुका कोमल और स्वच्छ था । वहाँ दूरे दूरे बस वे कमला क मुवास स आकर्षित भ्रमो का बुज्ज और पक्षियों का कलाव जाता रहता था ।^१ कृष्ण बलराम अपने गो वत्स का यमुना-तट पर ही नग्न स्नान करते थे ।^२ ब्रजवासियों के लिए यमुना कबल एक गमरीय जनालय ही न थी, बल्कि 'नग्न स्नान' का भावन है । कालियनाग के रहने के कारण जब यमुना का तट पर घरे जाते थे तब उनके पीले से ब्रजवासी गो-गोपगण मृतप्राय हो गये तो श्रीकृष्ण ने यमुना का जल मगाया और यमुना का जल शुद्ध किया ।^३ कृष्ण ने गोप-कुमारि-नामों को यमुना की ओला भी उन कुमारियों के यमुना में नग्न स्नान के विरोध-स्वरूप की थी ।^४ जम्भवात ने नग्न-स्नान से बछरावेव का अपमान होता है । यमुना में नग्न-स्नान का विरोध करने वाला है यमुना के प्रति अपनी पूज्यवृद्धि का प्रकाशन किया । कृष्ण की स्नान मन्त्रों में यमुना की उद्दीपन विभाव के रूप में यमुना का महत्त्व है । यमुना का जल राज-राज, राज-कशाकीर्ण मन्नेहर युजिन-प्रदेश ही रास-लीला की रंगस्थली है ।^५ यमुना यमुना का सबसे अधिक महत्त्व श्रीमद्भागवत में इसे कृष्ण-पत्नी 'कालिन्दी' कहकर देती है ।^६ इस प्रकार कृष्ण-प्रिया होने के कारण कृष्ण-भक्ति के वैष्णव मन्त्रदाय में यमुना की बड़ी भारी मान्यता है । श्रीबल्लभाचार्य के 'यमुनाष्टक' में यमुना की महती महिमा का वर्णन है ।^७

गोवर्धन गोवर्धन—ब्रजस्थित गोवर्धन पर्वत ब्रजवासियों और उनके गोधन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । श्रीमद्भागवत के इन्द्रयज्ञभंग प्रसंग में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को स्वयं अपने हाथ में उठाया ।^८ अपने 'गोवर्धन' नाम को सार्थक करते हुए यह पर्वत न केवल

१. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
२. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
३. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
४. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
५. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
६. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
७. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.
८. यमुना-तट पर गो-गोपगण का जल मगाया । श्रीमद् १०. ११. ११.

श्रीकृष्णों से नन्द और उनका पत्न्य वसुधा को आश्लेष-प्रदान करने रहे । इस बाल-लीला के यान में नन्द ने अपना काव्य-प्रतिभा का जमा चमत्कार दिखाया है उसका परिचय की तहा है :

नन्द ने अपने शोकुल में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े ही धूमधाम से मनाया । नन्द ने अपने नन्द-राने हुए अन्य गोपों को इस प्रसन्नता के अवसर पर वस्त्र, आभूषण और गोपों के नाम से श्रीकृष्ण नन्द और कृष्ण के पिता वसुदेव में परममैत्री थी और वे परस्पर मिलने रहते थे । नन्द एवं ब्रजवासी अन्य गोप श्रीकृष्ण में अत्यन्त स्नेह रखते हैं । श्रीकृष्ण उनके प्रणय-धर हैं, वे पूर्यंतया कृष्णश्रित हैं । जब श्रीकृष्ण कालियदह में सर्प-प्रलय के लिये नन्दों के संगण्ड भी उनके पीछे कुण्ड में बुसने लगे और श्रीकृष्ण की प्रणय-रक्षण पर नन्द वसुधा को गोपों । नन्दों के गोपण्ड श्रीकृष्ण के अप्राकृत, अद्भुत कर्मों को देखकर नन्द विस्मित रहते थे । अन्य गोपण्ड श्रीकृष्ण की विचित्र लीलाओं के विषय में नन्द में उत्सुकता करते । श्रीकृष्ण का गोपों के प्रति आत्यन्तिक प्रेम था किन्तु गोपण्ड उनके आगत के विषय में अनभिज्ञ थे और विस्मय-चकित रहते थे ।^१ एक बार जब नन्द वसुधा ने नन्द को नन्द के लिये वसुधा का एक दूत उन्हें पकड़ कर अपने स्वामी वसुधा के समीप ले गया । गोपण्डों के श्रद्ध से श्रीकृष्ण वास्तविकता जानकर तुरन्त वसुधा के समीप पहुँचे । वसुधा ने नन्द को प्रणय-धर की । श्रीकृष्ण तब नन्द को सकुशल ब्रज में लाये । नन्द ने वसुधा गोपों में श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व की चर्चा की । और गोपों ने उन्हें साक्षात् ईश्वर कहकर । श्रीकृष्ण ने गोपों पर अनुग्रह कर उन्हें भी अपना अज्ञानातीत धाम और किन्तु वसुधा ब्रज के लोग का हृदय दिखाया जिसे देख कर वे परमानन्दित एवं विस्मित हुए । गोपण्डों के समय भी गोपों और नन्द में श्रीकृष्ण के अतिप्राकृत ब्यक्तित्व के प्रदर्शन में शान्दीन हुई थी और नन्द ने गणार्थ के कथन के अनुसार श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व प्रमाणित कर उनकी शंका निर्मूल की थी ।^२

ब्रज के अतिप्रम भक्ता गोप-बालकों का कृष्ण की बाल-लीला में बड़ा ही महत्त्व है । इनके सहयोग ने लीला में एक विचित्र रस की सृष्टि होती है । इनके अभाव में श्रीकृष्ण

१ नन्द-वसुधा-प्रणय-धर-वसुधा-महामनाः । इत्यदि ।

२ श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

३ श्रीमद्भागवत १०. १. २२, २३

४ श्रीमद्भागवत १०. २३

५ नन्द-वसुधा-प्रणय-धर-वसुधा-महामनाः । इत्यदि ।

६ श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

७ श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

८ श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

९ श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

१० श्रीमद्भागवत १०. २. १६-१९

की वत्सचारण, गो-चारण, वन-भोजन, वन-विहार, मल-क्रीडा आदि अतिरिक्त बाल-लीलाओं की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अनेक चित्र-विशिष्ट काव्य-देहधारि कवियों का वचन श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं के साथ क्रीडा करते हुए उनके हार्मिस्त्व में ही किया है। सूर आदि कवियों ने ग्वाल-बालों को श्रीकृष्ण के साथ आत्मसात् का जिन लम्बे-लम्बे से उनको चित्रित किया है उसका प्रेरणा-स्रोत श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण-बलराम के खेल के साधियों में 'श्रीदामा', 'सुबल' तथा 'स्नोककृष्ण' का एक स्थान पर, तथा 'श्रीदामा', 'वृषभ' और 'भद्रनेन' का दूसरे स्थान पर उल्लेख है।^१ श्रीकृष्ण और बलराम इन गोप-बालकों के दो वन बना कर पीठ पर बधुई लाने-खिलाने आदि के विविध खेल खेलते थे। और स्वयं कृष्ण पराजित होते थे।^२ गोप-सखाओं के साथ श्रीकृष्ण ने गोचारण करते हुए श्रीकृष्ण वृक्षों की सघन छाया में विश्राम करते थे। इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर कृष्ण ने अपने इस सखाओं को एक साथ सम्बोधित करते हुए वृक्षों के महद्वन्द्वकार की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया है। उनके नाम हैं—

(१) स्नोककृष्ण (२) अंशु (३) श्रीदामा (४) सुबल (५) भद्रनेन
 (६) विशाल (७) ऋषभ (८) तेजस्वी (९) वेदप्रस्थ और (१०) बलराम।^३

सूर आदि कवियों ने अपने पदों में 'श्रीदामा' और 'सुबल' का उल्लेख प्रायः किया है।^४

यशोदा—कृष्ण-काव्य में वास्तव्य रस का सब से बड़ा 'आश्रय' यशोदा है। विद्वत्-साहित्य में कदाचित ही यशोदा के समकक्ष वास्तव्य के किसी अविच्छाद की कृष्टि हुई हो। यशोदा ने श्रीकृष्ण को गोप-वनों में बाल्य में पाला-पोसा। यशोदा ही यशोदा अपनी अस्मिता लेना ही ने उनके चरित्र की अस्मिता ही। यशोदा ही, श्रीमद्भागवत में यशोदा ही जो यशोदा विद्वान् है। यशोदा यशोदा ही यशोदा है।

१ श्रीमद्भागवत १०. ३३. १३-१४।
 २ श्रीमद्भागवत १०. ३३. १३-१४।
 ३ श्रीमद्भागवत १०. ३३. १३-१४।
 ४ श्रीमद्भागवत १०. ३३. १३-१४।

रहती है।¹² बहू श्रीकृष्ण भयुता म कालियनाम क पास मे प्रस्त थे तो पता पाकर यकोदा
कन्यास कहीं पहुँच गई तथा कालिय हृद में प्रवेश करते लगी। तब गोपियों ने बलात् उसे
रोक लिया।¹³ यथादा भयत पालित पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम की सबधन को
विशेष करने। उक्तन नाम भयनाभटन, कश्य, मीमान कौश करि के नाम म ही
उसने श्रीकृष्ण नाम मारकर मरने की है। उक्तना प्री ह्यक अपनी माता गोहणी
क नाम बहू की मानते मानता गयेवा है। उक्तना बहू भयान्त और उक्तना म एम
मामा के नाम श्रीकृष्ण नहीं बलराम नाम की भी पूरा खार करती है।¹⁴

श्रीकृष्ण की मरुतु क उक्तनाम भयान्त का सुशोभित है, बहुत ही पुत्र मय एह-
काय-वह प्रतीत हुए भी है। उक्तना नाम अ-उक्तना आदि सुशोभित हुए कन-काल
कौर भी मय कये है, उक्तना वह मय भयत भी भावना मारती है। श्रीकृष्ण-पुत्र म
भी व उक्तना प्रा-मोक्ष कये है। उक्तना प्रकृ श्रीकृष्ण-पुत्र के समीप का एम कये
ही म भी म क विद्वान्मने की उक्तना-अक्त किये के लिए विशेष प्रशस्त की गई है।

पद्मसुत कालेन्दर की अविन मुदि के जाल प्रेरित काला उक्तना म मय प्रती
क प्रकृष्ण नाम उक्तना की बहुत प्रभावित करती है। उक्तना नाम विद्वान्मने के वाह्यक म-
विद्वान्मने मारुतेपत विद्वान्मने (1700000 7000) के मयन मारुतेपत के माविय के उक्तना
मरुतेपत कालिय नाम मारु म मया काल है। उक्तना मरुतेपत मारुतेपत म उक्तना उक्तना
पर उक्तना नाम की है। उक्तना मरुतेपत और उक्तना दोनों विभाकी के नाम म मयी
नामो है। श्रीकृष्ण-पुत्र म हमे दोनों कये म उक्तना कालेन प्राप्त होना है। किन्तु
विद्वान्मने उक्तना उक्तना कालेन्दर की समीप मुक्तुनि प्रकृष्ण काला है।¹⁵ कये मीर

- 1. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 2. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 3. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 4. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 5. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 6. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
- 7. उक्तना नाम उक्तना मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर

8. श्रीकृष्ण-पुत्र मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
मुक्तुनि कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर
कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर

9. श्रीकृष्ण-पुत्र मारुतेपत कालेन्दर कालेन्दर
कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर
कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर

श्रीकृष्ण १० ६ ३
कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर कालेन्दर

शरद्वस्तु का तो बहुत ही मनोरम वर्णन श्रीमद्भागवतकार ने एक पृष्ठक कव्याव में किया है।^१ जिसका अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास ने किया है। शरद्वस्तु के मनोहारी कव्यावली में ही श्रीकृष्ण को रामलीला का उपक्रम होता है।^२ हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में वर्षा, शरद और वसन्तकाल में तोषियों के साथ कृष्ण की विविध प्रेम लीलाओं का आभार श्रीमद्भागवत का ऋतु वर्णन ही है।^३

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप साधुरी

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण का सर्वांग सुन्दर व्यक्तित्व कुछ ऐसी आभारभूत भावना पर चित्रित हुआ है कि कवि द्वारा सौन्दर्य की जितनी कल्पना की जा सकती है, श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप वर्णन में वह सब अभ्यन्त और प्रकृत ही सिद्ध होती है। जिसने उसे देखा है वह उसका वर्णन नहीं कर सकता—'गिरा अच्युत नयन विभु बानी' काली स्थिति है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को अनन्त सौन्दर्य के निवान रूप में चित्रित किया गया है।^४ अपनी योगमाया से परब्रह्म ने श्रीकृष्ण रूप में मानव लीला के दाय्य जो दिव्य विग्रह धारण किया था उसके सौन्दर्य से वे स्वयं ही विस्मित थे, फिर इतर प्राणियों का तो कहना ही क्या है। समस्त मोमाग्य-लक्ष्मी का आश्रय रूप उनका दिव्य विग्रह अपने एक प्रत्यक्ष से आभूषणों को भी सुशोभित करता था।^५ सौन्दर्य का इससे अधिक सारगर्भित वर्णन और क्या हो सकता है। जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा जा चुका है, श्रीकृष्ण विष्णु के ही दिव्य देहधारी रूप हैं, विष्णु के साकार रूप हैं। इन विशेषणों को वर्णन करने की जा चुकी है, वे प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण पर भी बटित होते हैं।^६ 'दिव्यं कृष्णं च न चिदपि ने कृष्ण का वह चतुर्भुज विष्णु रूप तो प्रह्लाद 'अपि' ही है किन्तु विष्णु के रूप वर्णन-धारी, वर्हापीड (मोरपक्ष का मुकुट धारण किए) नन्दर वपारी 'अपि' और 'विष्णु' रूप को चित्रित किया है उसका आभार दशमस्कन्ध पुनाय में वर्णन योग्य है ही।^७

१ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अध्याय २०

२ भगवानपि ता रानीः शरदोत्कलमलिकः ।

वीर्य रन्तु मनस्वके योगमायामुवाहितः ॥

श्रीमद्भागवत १०. २२. १

३ नाः ममादाव कातिन्या निर्विष्य पुष्टिनं विभुः ।

विकमत्कुन्दान्दारसुरम्बनिबधट् पदम् ।

शरन्वन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तरोषातमः शिवम् ।

कुश्याया इतवरलापितकोम्यवाहकम् ॥

श्रीमद्भागवत १०. २१. १२

४ का स्वरूपं ते कल्पदायतन्मूर्च्छितेन

सम्साहिनार्थं चरितान्नचतेत्रिलोकधारा

त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरोक्ष्य रूपं

वदन्नेन्द्रिजद्दुःसृगाः पुलकान्बकिभरः ।

श्रीमद्भागवत १०. २२. १०

५ यन्मत्पैलीलौपयिकं स्वकीयमावाक्यं दर्शयता गृहीतम् ।

विलसायनं स्वस्व च सौभगद्वैः वरं पर्वं मूषकभू-उपमम् ।

श्रीमद्भागवत १०. २. १२

६ त्रैलोक्ये, कव्यावली २ विष्णु का साकार रूप ।

७ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध, अध्याय ११, १२, १३, १४, १५

संगठित भ्रमराग का प्रयोग करते श्रीगिरि स्वच्छन्द चरित्र चरित्र करतु है।^१ कुम्ह सुम्ह की मायाओं से विचित्र वेप रचना करने के।^२

वर्ण, अग विन्यास एव सुद्राएँ—श्रीकृष्ण का स्वच्छोवाण नन्देह कायाएण मनुष्य-शरीर की नीति पांचमौलिक नहीं अति सुद्र मन्थमय है। अतः लस रिष्य वृह का रूप-सौन्दर्य आदि भी अचिन्त्य है।^३ उनका वरुण सखन मेघ के समान व्याप्त है। यह मर्वाण सुन्दर और दर्शनीय है। उसका मुख अत्यन्त मनोहर है जिस पर मधुर मुनिकाज मदा खेननी रहती है। उनके चरण कमलकोमल के समान आनन्द के समान हैं।^४ भ्रमराकारणों का भक्ति-साहित्य में बहुत वर्णन हुआ है। मन्थ का मनोभजन पश्चिम कायाएण के चरसारविन्दों में ही अटका रहता है। वहीं उसे विषय मिलता है, और वहीं उसकी अक्षय-वृत्ति होती है। इसी लिए भक्ति साहित्य में भ्रमराकारणों की अनेक मतिमा आई गई है। श्रीमद्भागवत में शपादिक स्वर्णों पर भ्रमराकारणों को परम श्रेष्ठ बताया गया है।^५ हिन्दी के भक्त कवियों ने भी अपने इष्टदेव के चरणों की वन्दना में नतारता दिखाई है।^६ श्रीकृष्ण के चरणों में कमल, यक, अंकुष, वज्र, ध्वजा आदि समस्त युक्त भयवहनकलु विश्रमान थे। जब रामक्रीडा के समय श्रीकृष्ण अन्नघात हो गये के भी योदियों ने इन्हीं लक्ष्मणों में युक्त चरण-विन्दनों को श्रीकृष्ण की चरण-सरणि के रूप में पहचाना था।^७

| | | |
|----|--------------------------------|-----|
| १ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| २ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ३ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ४ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ५ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ६ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ७ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ८ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ९ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १० | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| ११ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १२ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १३ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १४ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १५ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १६ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १७ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १८ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| १९ | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |
| २० | भ्रमराकारणों के चरणों का वर्णन | १०० |

व्यास पदा के समान ही आह्लाददायिनी है। श्रीकृष्ण की चारहासमयी मनोहर चितवन जो मानों शर्कों का सर्वस्व है। इस चितवन ने गोपियों का सर्वस्व हरण कर लिया है।^१ श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की इस प्रणय मुमकानमयी चितवन का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है।^२ अन्य स्थलों के विन्यास में प्रणयदायक बाहुयुगल और लक्ष्मी का श्रीडास्थल '३३' १३३, ३३३- ३३३, ३३३ के समान शुभ्र दन्तपंक्ति, अरुण कमल नयन, चार कपोल के सुन्दर चितवन के लक्षणनीय है।^३

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का बहुत सुन्दर विवरण हुआ है। भागवत में ३३३, प्राणालय के समय त्रिभुवन-कमनीय, तमाल वृक्ष के समान चितवन के लक्षण के समान तेशोवर्ण पीताम्बरधारी, सुन्दर अलकावली से आवृत्त धार कर्ण के लक्षण का ध्यान किया जा। गोपियाँ भी इसी कृष्ण की सुललित गति, '३३३' विन्यास का प्रणय मुमकान और प्रणय कटाक्षों से मुग्ध होकर प्रेमोन्मादवक्र उसकी भोग्यो का अनुकरण करने हुई नन्मय हो गई थी।^४ गोपियाँ तो कृष्ण के सौन्दर्य रस का भोग्यो का अनुकरण करने परमलाभ मानती हैं।^५

कविमित्रशंकी सुत्रा—भक्तों का परम व्येध श्रीकृष्ण का बेगुनादनरत शिभा- गीत है। वह अपनी बायीं सुजा पर बायाँ कपोल रखकर बाँकी अङ्गुलि मन्त्र के लक्षण के लक्षण को उसके छिद्रों पर कोमल अंगुलियाँ फेरते हुए बजाते हैं।^६ इस विवरण के विवेचन (श्री) व्यासमुन्दर के न जाने कितने चित्र हिन्दी के भक्त कवियों ने प्रकृत कविता के द्वारा प्रकृत हैं।^७

१. श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का बहुत सुन्दर विवरण हुआ है। भागवत में ३३३, प्राणालय के समय त्रिभुवन-कमनीय, तमाल वृक्ष के समान चितवन के लक्षण के समान तेशोवर्ण पीताम्बरधारी, सुन्दर अलकावली से आवृत्त धार कर्ण के लक्षण का ध्यान किया जा। गोपियाँ भी इसी कृष्ण की सुललित गति, '३३३' विन्यास का प्रणय मुमकान और प्रणय कटाक्षों से मुग्ध होकर प्रेमोन्मादवक्र उसकी भोग्यो का अनुकरण करने हुई नन्मय हो गई थी। गोपियाँ तो कृष्ण के सौन्दर्य रस का भोग्यो का अनुकरण करने परमलाभ मानती हैं।
२. श्रीमद्भागवत १०. २६. ३०
३. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४३
४. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४३
५. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४३
६. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४३
७. श्रीमद्भागवत १०. २६. ४३

- १ बुलाव
- २ गणभजन
- नगावन वध
- ४ सम्राज्य तोड़ना

३-ब्रह्मा द्वारा बत्सहरण के उपरान्त कृष्ण द्वारा गोवत्स और गोप बालकों की सृष्टि

- ६-सृष्टि-...
- ७-...
- ८-...
- ९-...

१०-सुर मन्त्री-विभीषण के मृत पुत्रों को जीवित करके ले आना ।

अवतारों की श्रृङ्खला में कृष्ण का नाम और नाम प्रत्येक के बीच का ही अंतर है, जो में संकेत किया जा चुका है । अवतारों में ही महान् अर्थों का प्रकाश और प्रकाश ही का है ।

श्रीकृष्ण का अर्भक—सर्वोच्च गण और वामुदेव कृष्ण का अर्भक श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित हुआ है जो कि अनेक अवतारों में अनेक कार्यों का किया जाना भी यहाँ एक ही रूप में प्रतिपादित हुआ माना जाता है । सभी अवतारों का एकत्व पुराणों में प्रतिपादित है और वही विचारधारा मध्यकालीन हिन्दू-हृदय में गहराई से पैठी हुई है । कृष्ण भक्त द्वितीय भावना में श्रीकृष्ण के परमेश्वरत्व और परमेस्वरत्व को स्वीकार किया है, वहाँ समस्त अवतारों को एकता ही की दृष्टि से मान्यता प्रदान की है । सूर ने एक ही पद में रामचन्द्र और वासुदेव का अर्थ ही कृष्ण से प्रतिपादित किया है ।^१ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^२ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^३ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^४ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^५ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^६ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^७ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^८ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^९ श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।^{१०} श्रीमद्भागवत में कृष्ण का एक अवतार उद्भवों में वामुदेव कृष्ण और दशरथ राम आदि का एकत्व अर्थ में प्रतिपादित है ।

- १ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- २ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ३ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ४ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ५ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ६ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ७ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ८ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- ९ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।
- १० श्रीमद्भागवत, स्कन्ध-१०, अर्च-१०, श्लोक-१०० ।

... र कहा है कि जिनका चित्त मृग में लग गया है, उनका काम सांसारिक मोक्ष ... नहीं हो सकता जैसे मुने या डबाले हुए वान ग्रंथुर उरान्त नहीं कर सकते ।^१ गोपियों को प्रेम की इससे अधिक महत्ता क्या हो सकती है कि स्वयं श्रीकृष्ण उनके सहस्र ... न करें। श्रीमद्भागवत में रामलीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति ... कि हे गोपियो तुमने लोक और परलोक के माये बन्धनों को काटकर मुझ से ... प्रेम किया है; यदि मैं तुममें से प्रत्येक के लिए अनन्त काल तक पृथक् जन्म लेकर ... प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं तुम्हारा श्रेणी हूँ और ... नहीं रहेगा । तुम अपने सौमन्य मे मुझे उच्छ्वास मानकर और भी श्रेणी बना दो । ... रहेगा ।" श्रीकृष्ण का यह कथन गोपियों के प्रेम की महत्ता का सीमान्त है ।

गोपियों का पूर्व स्वरूप—गोपियों के नित्यसिद्धा और सावनसिद्धा दो प्रमुख ... नित्यसिद्धा वे हैं जो भगवान् के नित्य परमधाम में अभिन्न रूप में लीला में ... भाग लेती हैं । सावनसिद्धा वे हैं जिन्होंने कृष्णवतार के समय घराघाम पर अवतीर्ण ... लीला में भाग लिया था । सावनसिद्धा गोपियों में से कुछ पूर्व जन्म की देव- ... कुछ ऋषिसस, कुछ भक्त और कुछ श्रुतिर्मा थीं । इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणों में ... हैं । जो श्रुतिर्मा गोपी रूप से अवतरित हुईं उनमें से मुख्य थी—उदगीता, सुगीता, ... कलकण्ठिका और विपस्वी । श्रीकृष्णोपनिषद् में कहा है कि रामावतार के ... दण्डकारण्यवासी मुनिजन भगवान् राम के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये थे, ... वृक्ष में गोपी रूप में अवतीर्ण होने का वरदान दिया था । पञ्चपुराण के पाताल ... सत्यतपा, हरिषामा, जाषाप्ति, सुचिभवा, सुवरां आदि अनेक ऋषियों ... द्वारा गोरीरूप में अवतरित होकर कृष्ण लीला में भाग लेने की कथा है ।^२ ... सभी वर्षों से प्राचीन श्रीमद्भागवत महापुराण में गोपियों को देवांगनाओं का ... कहा गया है जो श्रीकृष्ण के प्रिय कार्य करने के लिये अवतरित हुई थीं । नन्दादि ... उनकी स्त्रियाँ (गोपियाँ) देवता ही हैं ।^३ इस प्रकार गोपियों और कृष्ण का ... पूर्व जन्मों में जोड़कर उसे दृढ़ से दृढ़तर सिद्ध किया गया है ।

कुछ लीला में भाग—कृष्ण के जन्म से ही गोपियों का जीवन कृष्ण के साथ ... और वे यावज्जीवन कृष्णकप्राराग बनी रहीं । कृष्ण का जन्म तो मथुरा में

- १. श्रीकृष्णसिद्धा का नामः कामाक्ष कल्पते ।
- २. श्रीकृष्णसिद्धा यस्या अक्षो बोधन्य ज्ञेयते ॥ श्रीमद् १०. २२. २६
- ३. श्रीकृष्णसिद्धा (कल्याण) में श्री हनुमानप्रसाद पौदार का 'माखन चोरी और चौर हरण' शीर्षक लेख पृ० ६६, ६७, ६८
- ४. श्रीकृष्णसिद्धा भगवान् पुनः परः ।
- ५. श्रीकृष्णसिद्धा सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ श्रीमद् १०. १. २३
- ६. श्रीकृष्णसिद्धा यस्या सारस्वतीया च बोधितः ।
- ७. श्रीकृष्णसिद्धा देवतायाश्च वदन्त्रियः ॥
- ८. श्रीकृष्णसिद्धा उमचोरि भारत ।
- ९. श्रीकृष्णसिद्धा ये च कंसमनुजनाः ॥ श्रीमद् १०. १. ६२, ६३

वसुदेव-देवकी के यहाँ हुआ, किन्तु उन्हें तत्काल गोकुल पहुँचा दिया गया और बन्द-बसोदा का पुत्र घोषित कर दिया गया। जन्म महोत्सव भी गोकुल में मनाया गया। इस महोत्सव में नवमे अदिक उत्साह में भाग लेने वाली गोपियाँ ही थीं। प्रायः उनके परमराज्य का जन्म हुआ था। सौन्दर्य की नाशि ये गोपियाँ बहुभूत वस्त्राभूषण, कुञ्चन, शंख, मणिमय कुङ्कुम, हार, केयूर और गुप्ताभूत केश कलापी में भूयं शोभा विराजती हुई, नाना बहुभूत लताहार लिये, अतिशय आह्लाद और उत्सुकता से शोभा श्रेयस्वरी यशोधा के घर जा पहुँची।^१ इस समय उनके आनन्द और उत्साह की सीमा नहीं। आत्मक के पिरहीदिक की कामना कर वे उपस्थित लोगों पर हस्त्रि और नन्दमथिन बल शिष्टरूप और उच्च स्वर से (ववाई) गाने लगीं।^२

गोपियों का वात्सल्य-भाव—सद्यः श्रीमद्भागवत की गोपियों का प्रमुखभाव श्री कृष्ण के प्रति उनका मधुर वात्सल्य भाव ही है। यद्यपि वात्सल्य के दर्शन में उत्पन्न होते हैं, अन्वया भेद से श्रीमद्भागवत की इन वात्सल्यमयी गोपियों की आधुनिक अथवा वृद्धा वन्धा ही अनुमान की जा सकती है। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा चित्रित गोपियों में यशोदा के अनिर्गुण अन्य गोपियों में श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य के म्यात्त पर मधुर-भाव की ही प्राधान्य है, किन्तु श्रीमद्भागवत में यशोदा के अनिर्गुण कुछ अन्य सम्मान्य श्रेष्ठ गोपिकाओं में भी मधुर वात्सल्य का भाव पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के रचनाकाल प्रथम में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव बहुत सुन्दर ढंग में व्यक्त हुआ है। कृष्ण की प्राण रक्षा के लिए गोपियाँ माता यशोदा और रोहिणी की अवेजा भी सहक मान्य होती हैं। विशालकाय गजाली वृत्ता के बल-बल पर से कृष्ण को सहककर सबसे पहले उठाने वाली गोपियाँ ही थीं।^३ इन रत्न नाना ही हार-हारण लालन की थीं। जीवित के प्रति निवारण के लिए कृष्ण के सहक पर भी वे नाना प्रकार के उपाय करती थीं। वे सोरज और सोमय नाना प्रकार के उपाय करती थीं। गोपियों के प्रति प्रेम कर 'अज' आदि स्थान कल्पना से भी कृष्ण को प्रेम करती थीं। यशोदा कृष्ण के अंगों में भी प्रेम करती थी। यशोदा के प्रति प्रेम करती थीं। यशोदा के प्रति प्रेम करती थीं।

१ गोप्यस्त्राकर्ष्य सु. ...
 आत्मानं भूवशात्क ...
 २ गोप्यः सृष्टमन्त्रि ...
 निवृत्त ...
 नन्दालम्बं सवत्रया ...
 न्याये ...
 ता आशिवः प्रजुष्ण ...
 हरिद्र-दूर्ध्वैकादि ...
 ३ बालं च तस्या उरि- ...
 गोप्यस्तूर्णं समभ्ये ...
 ४ श्रीमद्भागवत १०. ५. १२

ही क्या है इस प्रकार कृष्ण के प्रति गोपियों का वात्सल्य भाव श्रीमद्भागवत में स्पष्टतया व्यक्त हुआ है ।

गोपियों का मधुर भाव (वत्सासक्ति) गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव है उससे वदितान्त मधुर रस का ग्रहणात्न करनी रहती है भक्ति गोपियों में मधुररस की साधना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है । यह मधुररस नितान्त दिव्य, आत्मगत है जिसका जड़ जगत् में कोई सम्बन्ध नहीं है । श्री रूपगोस्वामी ने मधुररस की परिभाषा देने हुए अपने ग्रन्थ हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है कि 'आत्मोचित भावभाविकों ने जब मधुरा रस तत्तु रूपों के हृदय में पुष्ट होनी है तब वह 'मधुर' नामक भक्ति रस कहलाता है ।^१ यह मधुर-रस 'निवृत्त' जनों के लिए अनुपयोगी है । यह दुःख है नान्यमय है और अत्यन्त विस्तृत अंगों वाला है ।' टीकाकार श्री जीवगोस्वामी ने 'निवृत्त' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—'प्राकृत (सांसारिक) शृङ्गार रस के साथ इस (दिव्य) मधुर रस की समानता को देखकर जो इस (दिव्य) भागवत रस से भी विरक्त हो गये हैं ।^२ इस प्रकार मधुर भक्तिरस नितान्त अपाथिव वस्तु है । इस रस के एकमात्र आलम्बन ही कृष्ण और उनकी प्रियाएँ व्रज गोपिकाएँ ।^३ ये व्रज गोपिकाएँ किशोरियाँ हैं । इनमें नन्दबुद्धि का नवतवोन्मेष होता रहता है । इनका हृदय सतत प्रणयान्तरगों से आन्दोलित होता रहता है । ये कृष्ण को रमणभाव से भजती हैं । ये बड़ी अद्भुत हैं । ये प्रराम्भ हैं ।^४ श्रीमद्भागवत की गोपियों में हमें ये सभी लक्षण मिलते हैं । श्रीमद्भागवत में कहा है कि नन्द-व्रज की कुमारिकाओं ने हेमन्त में कात्यायनीदेवी का यजन करके उससे नन्द-व्रज की थी कि नन्दकुमार कृष्ण को उनका पति बनाये ।^५ इस प्रकार गोपिकुमा-

पूतना लोकालम्बी राजसुतः कथिमशनाः ।
 विवासयामि हरये स्तनं दत्त्वाप मद्गतिसु ।
 किं पुनः अहसा भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
 वच्छन्निवृत्तमं किं तु रक्षास्तन्मातरो यथा ॥ श्रीमद० १०. ६. ३५, ३६

आत्मोचितविभाषणः पुष्टिं नीता मता इति ।
 मधुरासुते नन्दे भक्तिरसोऽसौ मधुररसिः ॥
 निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुःखजन्दादर्थं रसः ।
 रसव्यवधानं मध्विष्य कित्तमोऽपि विवक्ष्यते ॥

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पश्चिम विभाग ५ लहरि, श्लोक १, २ पृ० ४२६

- १ निवृत्तं शून्याकृतशृङ्गाररससंन्यहृष्ट्या भगवतादप्यस्माद्भ्रसाद्भिरक्नेषु । वही, पृ० ४२६
 - २ कश्चिन्महाशब्दः कृष्णः प्रिदास्तस्य च मुद्रुवः । वही, पृ० ४२६
 - ३ नन्दमयव्रजगोप्योऽसौ प्रखयतरंगकरन्वितान्तरंगाः ।
 - ४ निवृत्तमधुरासुते इति भक्त्याः प्रखयतः परमादनुताः किशोरीः ॥
- इ० म० २० सिन्धु में पृ० ४२६, २७ पर उद्धृत ।
- ५ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
 - नेषुर्द्विष्यं शुं प्रान्तः कात्यायन्यवर्चनं व्रतम् ।
 - कात्यायनि महात्मने महायोगिन्दधीश्वरि ।
 - नन्दगोपयुते देवि पति मे कुरु ते नमः ॥ श्रीमद० १०. २२. १ ४

रिकाश्रों ने प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण को कान्त-भाव से भजा । कान्तार्थात् के अर्थ में अनेक प्रकारों—यथा गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपसक्ति, पूजासक्ति, समासासक्ति, वास्तव्यसक्ति, आत्म-सक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, सम्पत्तिसक्ति, परमविरहासक्ति आदि का उद्देश ही श्रीकृष्ण के समावेश हो जाता है और श्रीमद्भागवत की गोपियों ने इन सबके उदाहरण राम ही हैं । कारण यह है कि मूलभूत एक वस्तु है प्रेम, जिसके लिए कहा गया है—‘यत्प्रयादेकान्ध-वा भवति’ ।^१ गोपियों के प्रेम में रूपसक्ति, सम्पत्तिसक्ति और परमविरहासक्ति का सर्वाधिक प्राधान्य है और इनमें तीन प्रेम-रसों का श्रीमद्भागवत ने सर्वाधिक अतिरिक्त ही हुआ है । हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी गोपी-प्रेम की इसी रसों का बहुत ही अधिक किया है ।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम तीन रूपों में व्यक्त हुआ है उनमें से कुछ प्रमुख रूपों के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाने हैं—

क—गुणमाहात्म्यासक्ति—

न अतु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्नरुक् ।
विखननाधितो विश्वमुत्सवे सन उदेखिवाम्नात्कलां कृते ॥
नव कथाभूतं नमकीवनं कविभिर्गीडितं कल्पवापहम् ।
श्रवणमाल श्रीमदातलं सुवि प्रशान्ति दे सुरिता जना ॥^२

(गोपियाँ कहती हैं—‘जब निश्चय है कि प्राय केवल यशोदा के पुत्र नहीं है अपितु समस्त देवगणियों के अन्न-करणों के माझी हैं । हे सबे ! शत्रु की आशंका पर अपने विश्व की रक्षार्थ यदुकुल में जन्म लिया है । जो लोग सन्तप्त जीवों को जीवन दान देने वाली, कविजन कीर्तित, पाप नाशनी, श्रवणभाव में मगन करने वाली और आत्म-दायिनी आपकी अमृतमयी कथाओं का भूनाक में कबन करते हैं वे ही सबसे बड़े प्राणी हैं ।’)

ख रूपसक्ति—

अटनि यद्मदानलि काननं वृटिभुं धाकते त्वानप्यवताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं नै जह उदीयनां यक्षकपुटनम् ॥
कास्यग ते कलपदायतपूर्कितेन सम्भोजितार्थचरितान्क कमेरिभसोत्तमाम् ।
त्रैलोक्यसौभगभिवं च निरीड्य रूपं यदगोद्विजसुमसूयाः पुनस्तान्मविश्रम् ॥^३

(गोपियाँ कहती हैं—‘जब प्राय दिन के समय वन में भिजते हैं तो आपकी स देख मकने के कारण हमें एक-एक क्षण युग के समान महसूस होता है । फिर हमारा समय जब हम बुँधराजी अन्धकादजी से मण्डित आपका मुख देखते हैं तो हमें वनों के पलक बनाने वाला कदा मुक्त मालूम होता है । हमारे मन में भी ऐसी कौन स्त्री होगी जो मधुर पदावली से मुक्त उन्मत्त होकर स्वराज्यों को मुक्त कर और इस विदुषम सुन्दर कव की स्तुति करने लगे और वृद्धों तक को रोमांच ही आता है, अपनी आर्क्ष-मयि के लिए वन के नया

^१ आनन्दविक्रम उक्तं २
^२ श्रीमद्भागवत १०-११-२६, २७
^३ श्रीमद्भागवत १०-१२-१२ तथा १०-२२-४०

ग—पूजासक्ति—

मन्त्रोच्च मन्त्रमतीति हरिष्य एता
दा नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेपम् ।
सकस्यै देव्यै न मन्त्रप्रसाराः
एतः सन्निवृत्तिं प्रणयावलोकैः ॥^१

{ योग्यां कर्ती है — "मखियो, मूढ़ बुद्धि होने पर भी ये मृगियाँ बन्ध हैं, वे मृगों की पीड़ना करने के लिये ही कृष्णसार मृगों के साथ आकर अपने प्रसन्न मन का कारण बनती हैं। उन मृगों की पूजा करती हैं।" }

घ—स्मरणसक्ति—

अप्यस्यै नभित्तकाम नदारविन्दं
सन्नेकमेतदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
मगाधकामिनिर्दिष्टस्यलम्बं
सन्नेकमेतदि मनस्युदियात्सदा नः ॥^२

{ योग्यां कर्ती है — "कल्पनात्मक अगाध ज्ञान सम्पन्न योगियों द्वारा जिसका हृदय के निम्नतम स्थान को भी जो ससार रूप में गिरे हुए प्राणियों को उससे निम्नतम के लिये सारात्मक अगाध है आपका वह चरस-कमल हम गृह-वासिनी (प्रपन्न स्मरण) चक्रवाधों में रहने में भी अकारण रहे। अर्थात् हमें निरन्तर आपका स्मरण बना रहे।" }

ङ—दास्यसक्ति—

मन्त्रः प्रदीप संज्ञासंज्ञे वेदप्रिमूलं
मन्त्रः विगुण्य वसलीस्त्वहुपासनायाः ।
त्वस्मृत्तन्निर्दिष्टस्यलम्बं
मन्त्रमन्त्रः पुरुषसूषण वेदि दास्यम् ॥
× × × ×
मन्त्र मन्त्रे अरतिं कर्तुः स्म नो
मन्त्रमन्त्रं चाह दक्षय ॥^३

{ योग्यां कर्ती है — "हे मुकुन्दलज ! आप हम पर प्रसन्न होइये। हम आपकी सेवा करने की अभिलाषा के लिये दरवार छोड़कर आपके चरणों की शरण में आयी हैं। हे मुकुन्दजी ! आपकी सुन्दर मुकुन्दमूर्ति और चितवन से हमारा चित्त अत्यन्त काम संतप्त हो रहा है। आप हमें अन्तरात्मा के अन्तः प्रदान कीजिये। हम आपकी दासियाँ हैं। हे सखे ! आप हमें अन्तरात्मा के अन्तः प्रदान को अपना मनोहर मुखकमल दिखाइये।" }

च—आत्मनिवेष्टनासक्ति—

सैव हिमोऽङ्गी भवन्त्येते नृसंसं सन्त्यव्य सर्वविषयास्तवपादमूलम् ।
मन्त्रः मन्त्रं हुपासनायाः मन्त्रजास्याद् देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षुः ॥

१. मन्त्रोच्च मन्त्रमतीति हरिष्य एता
२. मन्त्रोच्च मन्त्रमतीति हरिष्य एता
३. मन्त्रोच्च मन्त्रमतीति हरिष्य एता

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरयं स्त्रीसुं स्वधर्म इति धर्मविदा त्वबोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वधीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुमुतां किल बन्धुरात्मा ॥'

(पीपियाँ कहती हैं—'हे विभो ! आपको ऐसे कठोर अब्द न कहने चाहिए । हम सम्पूर्ण विषयों का त्याग करके एकमात्र आपके चरणों में ही अतुरत हैं अतः हे स्वामी ! इस प्रकार हमें त्यागिये मत, बल्कि जिस प्रकार आदिपुरुष नारायण मुमुक्षुओं को समझे हैं, उसी प्रकार आप भी हम अंगीकार कीजिए । हे प्रिय, धर्मदेता आपसे जो हमें शिष्यों के धर्म धर्म, पुत्र, बन्धु बान्धवों की सेवा करने का उपदेश दिया, जो उपदेश के विषयभूत आप ईश्वर में ही हमारे ये सब भाव केन्द्रित हों, क्योंकि समस्त देहधारियों के बन्धु और आत्मा तो आप ही हैं ।')

छ—तन्मयतासक्ति—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विषेष्टास्तदात्मिकाः ।

तद्गुणानेव वायन्त्यो नात्मानाराणि सन्मरुः ॥

एवंविधा भगवतो वा वृन्दावनचारिणः ।

कर्मायन्तो गिभ्यो गेभ्यः क्विदास्त्वय्युक्तं श्रुः ॥२३

(शुकदेव गीर्भिर ने कहते हैं—'वृन्दावना, वृन्दावनी, वृन्दावनी, वृन्दावनी परायणा, कृष्ण-प्रणय गीर्भिर वृष्ण का वृष्णताग करती हुई इनकी नाचक्रीडा ही यह कि उन्हें अपने देहों की मुक्त्युत्पत्ति न रहे । वृन्दावनचरिणी वृष्ण की विविध लीलाओं का परस्पर वर्णन करती हुई गीर्भिरा तन्मय हो गई ।')

ज—परमविरहासक्ति—

अहो विधातरनय न वदन्धृग मरोऽथ मरुः पालयेन विविः ।

तांस्वात्रात्राश्रित्यनृत्तश्यायार्थक विरहितं मेऽर्चयन्निदधत्त उवाच ॥

कूरस्त्वन्धनम उवाच न्य कश्चिद्द्वि वन शाने कान्तवत् ।

येनैकदेवेऽभिप्रेतः पतनं वदीयन्व्राम्भुः क्व ननुद्विः ॥

मैतद्विदधातः पतनं न भवत्यु इति श्रुत्वा उवाच ॥

योऽसावनन्दानन्दः सः पितृ सः पितृस्त्रियं मेऽसाव नः पितृः ॥

निवारयानः समुत्थेय पापवः सः सः करिणः कश्चिद्विदधत्तः ॥

मुकुन्दमनान्दमिधाः शुकः सः इति सः विदधत्तः शुकः सः ॥

अस्यानुः सः वनिर्गः सः सः सः सः सः सः सः सः सः ॥

नीताः सः नः सः सः सः सः सः सः सः सः सः ॥

योऽहं सः सः सः सः सः सः सः सः सः सः ॥

वेष्णुः सः सः सः सः सः सः सः सः सः सः ॥

१ श्रीमद्भागवत १०. २१. ११, २२
 २ श्रीमद्भागवत १०. ३०. १३ च १०. २१. २०
 ३ श्रीमद्भागवत १०. २६. १२, १३, २६

एवं कृष्णात् विरहानुरा भृशं व्रजन्त्रियः कृष्णविपक्तमानसाः ।

त्रिसुख्य लज्जां रुद्रुः स्म सुस्वर गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ १

(गोपियों कहीं हैं— अरे विधातः ! तुम्हें कभी किसी पर दया नहीं आती ! मेरी और प्रणय के द्वारा पहुँचे तो लोगों का संयोग करता है फिर उनकी कामना पूरी करने से पहुँचे ही न उनमें अकलशा विचार क्या देता है। हमें तेरा यह खेल बच्चों की तरह के समान (अज्ञत-पूरत) मालूम होता है। अरे विधातः ! तू बड़ा ही क्रूर है। तेरा नाम से तू ही कहाँ आया है और अपने ही दिये हुए हमारे नेत्रों को एक सुई की भाँति हरे ले जा रहा है। अरे ! इन्हीं नेत्रों से तो हम मधुसूदन के एक-एक अंग में तेरी तुलना का समस्त मीन्द्रयं निहारती थीं। यह 'अक्रूर' तो बड़ा ही निर्दय है। ऐसे क्रूर नाम का नाम 'अक्रूर' कभी नहीं होना चाहिए था। यह तो हम वियोगिनी अवलाओ के हृदय दिये बिना ही हमारे प्रियतम को हमारे दृष्टि-पथ से दूर ले जाना चाहता है। अयो ! चलो हम स्वयं ही जाकर माधव को रोकेंगी; कुल के बड़े बूढ़े और बन्धुजन सब उभर कर लगे। क्योंकि जिस प्रिय को आधे पलक के लिए भी छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उसका संयोग दुर्भाग्यवद विच्छिन्न हो जाने में हन अत्यन्त दीन और व्याकुल हो रही हैं, सखियों ! जिसकी प्रणयमयी मनोहर मुसकानयुक्त मधुर दालचीत, लीलामय मुसकान और आलिंगनों से युक्त राम-गोष्ठी में हमने अनेक रातों एक क्षण के समान बिताई थी, अब उसके बिना हम उसके विधम चियोग की भ्रौंचियारी को कैसे काटेंगी ? सखियों ! अयो ! तुम लोग से ऐश्वर्य-धूमरित-अलकावली और पुष्पमालाओं में नुपमित तथा अपने गोप मित्रों में प्रसरे, वेगुनाद करते हुए व्रज में प्रविष्ट होने वाले कृष्णचन्द्र के बिना हम कैसे जीवित रह सकेंगी जो अपनी मनोहर मुसकान और कटाक्ष युक्त निरीक्षक से हमारे चित्त को बेवश कर लेता है।" कुरुदेव परीक्षित से कहते हैं कि कृष्णासक्तचित्ता गोपिकाएँ जो परम प्रेमाकांक्षी होकर ऐसी बातें कर रही थीं, लोक साज छोड़कर हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! इस प्रकार पुकारती हुई जोर से रो पड़ीं ।)

ऊपर श्रीमद्भागवत के मूल अंशों से गोपियों की परमविरहासक्ति का किंचित् चित्रण कराया गया है। श्रीमद्भागवत में गोपियों की विरह भावना जैसे मर्मस्पर्शी रूप में उक्त हुई है, उसका यथार्थ व्यक्तीकरण एक दुष्कर कार्य है। उस लोकोत्तर दिव्य-भाव (प्रेम) की कुछ भासक अपने मूल रूप में मिल सके, इसी उद्देश्य से ग्रंथ के मूल अंशों में यही उद्धृत कर दिया गया है। इन अंशों के अध्ययन से यह स्पष्ट होते विलम्ब न करें, कि मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में चित्रित गोपी-प्रेम को किस प्रकार और निष्ठा के साथ हृदयवश एव आत्मसात् कर अपनी सहज प्रतिमा और भक्ति भावना से इसे और भी वितरल, गम्भीर और हृदयहारी बना दिया। गोपियों के इस प्रेम-कव्य कृष्ण-धर्म की सीकी हमें श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ज के निम्नलिखित प्रसंगों में विशेष रूप से मिलती है—

१—वेदुगीत (अध्याय २१) रूपासक्ति तथा तन्मयतासक्ति ।

२—श्रीमद्भागवत १०, २२, २३-२४

- २—वीरहरख (अध्याय २२) तन्मयतासक्तिः ।
- ३—रासलीला (रासपंचाध्यायी, अध्याय २६, ३०, ३१, ३२, ३३) रूपासक्ति, गुणमाहात्म्यासक्ति, स्मरखासक्ति, दास्यासक्ति, तस्यासक्ति, ध्यात्वविरहासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमाविरहासक्ति ।
- ४—युगलगीत (अध्याय ३५) रूपसक्ति तथा तन्मयतासक्ति ।
- ५—कृष्ण बलराम का मधुरा गमन (अध्याय ३६) रूपसक्ति, तन्मयतासक्ति एवं परमाविरहासक्ति ।
- ६—उद्धव की ब्रजयात्रा (अध्याय ४६) तन्मयतासक्ति एवं परमाविरहासक्ति ।
- ७—उद्धव-गोपी-संवाद एवं अमरसीत (अध्याय ४७) रूपसक्ति, तन्मयतासक्ति एवं परमाविरहासक्ति ।

वेणु अथवा मुरली—गोपियों को कृष्ण की ओर आकृष्ट करने में श्रीकृष्ण की मुरली का बड़ा हाथ है। अपने त्रैलोक्य विमोहन स्वर से वह सुदली समस्त जङ्गलमें जगद को अपने वश में कर लेती है। श्रीमद्भागवत में वेणु के प्रभाव का बड़ा ही विस्तार वर्णन है। परवर्ती संस्कृत कृष्णसक्ति साहित्य में भी कृष्ण के वेणुवाद के इस प्रभाव का बड़ा जोड़स्वी वर्णन पाया जाता है।^१ सम्भवतः इसका मुख्य साधार श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की वंशी अथवा मुरली के लिए सर्वत्र 'वेणु' शब्द का प्रयोग हुआ है। भागवत में ऋद्धि भी, वही वंशी मुरली शब्द ही आया है। 'तुन न मुरा' के भी मरु परवर्ती हैं, भगवत के मुरली शब्द ही आया है। मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है। मुरली का नाम नहीं है, वंशी शब्द ही आया है। मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है। मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है।

१ रूपसक्तिसम्पन्नानां च वेणुमुरलिकुण्डलपरायणम्
 "गान्" "विराजन्" "प्रसन्नान्" "स्वस्वगतान्" "विराजन्" "स्वस्वगतान्" ।
 १-मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है।
 २-मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है।
 ३-मुरली शब्द से भी मुरली शब्द ही आया है।

कृष्णभक्ति साहित्य में वशी वामुरी मुरली मुरलिया आदि स्त्रालिंग शब्दों का ही प्राधान्य है क्योंकि मूर आदि कृष्ण भक्त कवियों ने वशी को गोपिया की सपत्नी के रूप में चित्रित किया है।

वेणुमाधुरी और उसका प्रभाव मुरली श्रीकृष्ण की योगमाया है जिससे यह प्रभाव प्रकट होता है। इसकी ध्वनि सभी मूल प्राणियों के मन को हर लेती है। इसका सबसे अधिक प्रभाव गोपियों के हृदय पर पड़ता है। यह उनके हृदय में प्रवेश कर देती है।^१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के दो अध्याय^२ तो पृथक् रूप से वेणुमाधुरी और उसके लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन करने के लिए ही रचे गये हैं। इनमें वेणुमाधुरी ही वेणुमाधुरी का वर्णन करती है। इन दोनों अध्यायों में जो कहा गया है उसका निम्नलिखित सार यह है : श्रीकृष्ण की मुरली के स्वर में एक विचित्र जादू है। जनदमन्यु उर्ध्व कृष्ण की मुरली के स्वर को मेघ का मन्द-मन्द गर्जन समझकर मत्त मयूर नाचने लगते हैं। उनका दृश्य देखकर पर्वतों पर विचरण करने वाले समस्त प्राणी निश्चेष्ट होकर गड़े रह जाते हैं।

वेणुमाधुरी से मुग्ध होकर मृगियाँ कृष्णसार मृगों से साथ श्रीकृष्ण के निकट आ जाती हैं। वीर कान उठाकर मुरली की मधुरध्वनि सुनती हुई निश्चेष्ट हो जाती हैं और उनके शरीर झुकते हुए स्तनों से घूँट लेकर मुँह से टपकते हुए निश्चेष्ट खड़े रह जाते हैं।^३ वेणुमाधुरी से अपना कलरव छोड़कर निर्निमेष नेत्रों से श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के साथ एकाग्र भाव से वेणुमाधुरी का भी रसास्वादन करते रहते हैं। श्रीकृष्ण की मधुर वंशीध्वनि से आकृष्ट होकर देवाननाएँ विमान पर चढ़कर आ गये हैं। काम वेग से देवाननाओं के केशबन्धन टूटने लगे हैं, कटि-वस्त्र खिसक गये हैं, किन्तु उन्हें देहानुसन्धान कहाँ है ?^४ वेणुमाधुरी ही नहीं नदियाँ और मेघ जैसे अचेतन पदार्थों पर भी वंशी ध्वनि का प्रभाव है। भँवरों से लक्षित होने वाले काम विकार से जिनका वेग रुक गया है, वे नदियाँ अपनी

- | | |
|---|--|
| १. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| २. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ३. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ४. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ५. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ६. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ७. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ८. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ९. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १०. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| ११. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १२. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १३. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १४. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १५. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १६. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १७. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १८. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| १९. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |
| २०. वेणुमाधुरीः किमाचरयत् कुमालं मन वेणुः | |

श्रीमद्भाग० १०. २१. ६
 श्रीमद्भाग० १०. २१. ६
 श्रीमद्भाग० १०. २१. ३
 श्रीमद्भाग० १०. २१. ६२

करना है। श्रीकृष्ण के मधुर वदावली युक्त उदार वेल्लाद का सुन्दर वसुध, वसु धारि जगम प्राणी स्थिर हा जात है और वृक्षादि स्थावर प्राणी समाधि हूँ जात हैं।^१ बुद्ध और फला के भार से अवनत वन्ध जताम्रम प्रेम पुलकित होकर मनु-बाग प्रवाहित करत बधते हैं।^२ जिस समय श्रीकृष्ण स्वयं ही सीले हुए पर, श्रम, श्वाभ, श्वाभ, श्वाभ, श्वाभ, श्वाभ और निषाद— इन सप्त स्वरो की मूर्च्छामार्ग लृत्थ, श्वाभ और शीघे सेदी के शीघुरी पर अलापते हैं तब उसके स्वरो का मर्म न बात सकने के कारण श्वाभ, श्वाभ, श्वाभ प्रभुत्व दवगल नल-शिर होकर मुग्धभाव को प्राप्त हो जाते हैं।^३

उपयुक्त विवेचन श्रीकृष्ण की देसुमाधुरी के चराचर जगद्व्यापी महान् प्रभाव का कुछ आभास देने के लिए श्रीमद्भागवत के आवार पर किया गया है। कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने—विशेषकर सूरदास ने—श्रीकृष्ण की देसु माधुरी का विस्तृत वर्णन करने के लिये श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त दो अध्यायों का कितना अनुकरण किया है, वह इसके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। सूर के पद तो कहीं-कहीं भागवत के श्लोकों के अक्षानुवाद से प्रतीत होते हैं।^४

रासलीला—कृष्णभक्तिसाहित्य में जहाँ श्रीकृष्ण को कृष्ण-कल्याण-मुष्ण-वारिचि कहा गया है।^५ वहाँ उनके चौसठ गुरों की विशेष रूप से शक्ति की गई है। इन चौसठ गुरों में भी साठ गुर साधारण कौटुम्भी की चार गुर मन वरत गुरादृष्टक से आते हैं। इन चार असाधारण गुरों में प्रथम है श्रीकृष्ण का वरत-दिग्गज।^६ उन्हे भववदवतारों में श्रीकृष्ण ही 'लीलापुरुषोत्तम' है और श्रीकृष्ण की कौन-सी के ही गुरों

१ भा गोपकैरनुवनं चवनोरुदारवेष्टुत्वनैः कलापदैस्तः दण्डं सतः ।
अत्यन्दनं पतिमतां पुलकतरुखां निर्दोषासकृद्भङ्गं चरुं शीघुरं ।
२ श्रीमद्भागवत. १०. ३५-३६
३ विविधयोगचरणेषु विदम्बो देष्टुवाच लक्ष्मा सिद्धिः ।
तव सुतः सति वदाभरन्ति वे दत्तवेष्टुः नवभरतः ।
नवनशस्त्रदुपधार्यं सुरेसाः शकृत्सर्वैरभेष्टिपुरोतः ।
कवय आसतकन्धरचित्ताः कस्तलं यमुनिस्त्रिवलतः ।
अन्यत्र
सुरदर रघुनसमये मा कुह सुरलोचनं मधुगम् ।
नीरलमेधो रमतां कृतांशुरत्येनि कृशन्मृताम् ॥
४ सूरसागर, प्रथम अरण्य, दशमस्कन्ध, पद ४२०
५ समस्तकिविभारचर्यकल्याणखुखवारिणेः ।
शुष्काचारिह कृष्णस्य दिव मावमुपदेशिनम् ॥
६ सन्ति यद्यपि मे प्राञ्च्य लीलात्प्रास्ता मनोहराः ।
नहि कश्चे शूढे रासो कश्चे मे कोटुदां भवेत् ।
श्रीहरिः १:५ २० २६० वा इत्यत्रमनुवाक्ये ॥ १५५ ॥

के माथ परम पुहू और अन्तरम नीला बरौन है । श्रीकृष्ण की यह रासगीत रास श्रीकृष्ण को भी वित्तिय-मुग्ध किये रहती है । इन सनो-कृष्णकरिणी रासगीतों का कृष्ण सन हिन्दी कवियों ने बहुत विचार वर्णन किया है ।

राधा — कवियों के माथ श्रीकृष्ण की रास-गीतों में राधा एक प्रमुख गायी है । किन्तु श्रीमद्भागवत में कहीं भी राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । राधा ही वहा किसी की कौी का नामोल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं हुआ है । हाँ एक केचित् गीतों और श्रीकृष्ण तथा उसके दितीय-पुंगव का स्पष्ट संकेत नहीं है । श्रीमद्भागवत में केवल राधा का नाम है कि रास कोटा के समय श्रीकृष्ण सब कवियों को छाँड़कर अपनी किसी प्रान्तरण, श्रिय कर्त्री को एकान्त में लिवा ले गये थे ।^१ इस कथोक के काव्यगत पर साहित्य सन्दर्भ कालों की राधा की कल्पना प्रदान की और अथर्ववेद में — राधासाधाय हृदये सदाय कञ्चुकरिणी कहुकर उसे स्पष्ट कर दिया । राधा के अतिशक्ति के सम्बन्ध में उर्ल मी. मुष्णराल कृष्ण का अभिमत है कि राधा के दो पक्ष हैं, एक साहित्यिक रूप में ऐतिहासिक । सन १९वीं सन्दाब्दी के पूर्व तक राधा एक विष्णु-सक्ति-मत्त्व के रूप में थी । किन्तु साहित्य में राधा का उल्लेख बहुत पहले से ही पाया जाता है और साहित्य के आरम्भ से ही राधा का साविर्भाव और विकास हुआ । लक्ष्मणभक्त काल से वर्तमान के माथ राधा का सिक्ख १९वीं सनान्दी से हुआ और उसकी परिपूर्णता बुन्दारवन के गौडीय वैष्णवों की शक्ति-साधना में दिखलाई दी । विविध पुराणों में आबकल जो राधा का उल्लेख मिलता है, वे परवर्ती काल में जोड़े गये अंश हैं ।^२ जो कुछ हो, इनमें सन्देह नहीं कि महाकाल में राधा एक महान् शक्तिशाली शक्ति के रूप में प्रकट किये का एक सन्निवेश का रूप बन गई । सन १९वीं सनान्दी की ह्लादिनी शक्ति का नाम धर्मन पुत्र राधा गीतों में आया है ।^३ राधा गीतों में राधावक्त्रभीय नरप्रदायः सत सदा गिया ।^४ राधा गीतों में राधावक्त्रभीय महत्त्व स्वीकार किया ।^५ तदन्तरे बुद्धा अन्त कवियों ने राधावक्त्रभीय के अर्थ में पुराणों की परामर्शानुसार राधावक्त्रभीय शक्ति के अर्थ में राधा गीतों में राधावक्त्रभीय विरह-विष्णु प्रेममग्न शक्ति के अर्थ में राधा गीतों में राधावक्त्रभीय के अर्थ में राधावक्त्रभीय जयदेव के गीतगायन में प्राप्त है । राधा गीतों में राधावक्त्रभीय के अर्थ में राधावक्त्रभीय चित्रस हिन्दी कवियों ने महत्त्व प्राप्त राधावक्त्रभीय के अर्थ में राधावक्त्रभीय गौडीय वैष्णवों में प्रसिद्ध पुराणों में राधावक्त्रभीय के अर्थ में राधावक्त्रभीय के अर्थ में राधावक्त्रभीय

१ रासलीला की महत्त्व ।
२ परिस्फुरतु सुन्दरं ।
३ अन्तर्गतवित्तो ।
४ कन्वो विहाय शक्तिन्द प्रोक्तं ।
५ श्रीकृष्ण का कव्यगतः ।
६ श्रीकृष्ण का कव्यगतः ।

ने तन्द के द्वार पर एक सुवर्णमय रथ देखा । वे आपस में पूछने लगीं "यह किसका रथ है ? कहा अकर ही ता फिर नहीं आ गया जो पहले हमारे प्रियतम कृष्ण को ले गया था ? क्या अब हम ले जाकर हमारे मास के अवन मृत्युवाधो (रथ) का धोर्वैभिक्रु कर्य करेगा जब भोषियां अब लर्के बिनक कर रहू की नयी उद्यम का पर्ये ; कृष्ण के समान पीताम्बर मालादि वेषधारी उद्यम को मोषियो ने उत्पुक्त कर मेर लिया परीर स्र जानकर कि वे श्रीकृष्ण के सन्देश वाहक है, उनमे कहने लगीं—

"हम जानती है कि आपके स्वामी (कृष्ण) ने धानको यहाँ अने सन्तान-पिता का प्रिय करने के लिए ही भेजा है, नहीं तो इव गोकुल में और कौन है किने के साथ करेये ? ही स्वजनों का स्नेह-वन्धन तोड़ना तो बहुत कठिन है, इसलिए अन्त-पिता को साथ करते हुरे ; (हमें वे क्यों बाद करने लगे, हम उनकी स्वजन थोड़े ही है) स्वजनों के सिवा औरों के साथ तो किसी न किसी प्रयोजन से ही प्रेम किया जाता है । जब तक स्वार्थ रहता है तब तक प्रेम का स्वांग रचा जाता है । पुरुषों का स्त्रियों के साथ वसा ही स्वार्थ-पूर्ण सगाव होता है जसा भ्रमरों का पुष्पों के साथ । शक्ति का अपने निकसंचन प्रेमी को, अज्ञा असमर्थ राजा को, अधीतविद्व सिष्य गुरु को, लब्ध-वसिष्ठ ऋषिकणरु यजमान को, पक्षिमण नष्टफल वृक्ष को, कुतभोजन अतिथि घर को, सुरसला दग्ध-वन को और और शुक्त भोग चुकने पर अतृप्त एवं अनुरागिणी स्त्री को छोड़कर चल देते हैं ।" इस प्रकार गोपियां तन्वव हो श्रीकृष्ण पर बने बतले लगीं, दीन-बन्धु लोकरु को लगीं ; "हमें ने लगे कोषी कृष्ण के सन्देश का समर्थन कर रही हैं । उनके ने पर मने भ्रमर पुष्पों का दिखाई पड़ गया । बस उन्ही को अपने प्रियतम के साथ पुष्प का बाधकर लुकावा करवा पड़ी ।" वे लगे क वसु अकार । अन्तली से अलो ने लगीं पूछे, क्या वे अपने कृष्ण के निपत अपनी भोगों से तू इन-रे लगीं को मग लगे, वेमा अति-मद-अने लकाल-म-अवे, दुत है, वे गणुति काली म-लिंगी ; विनिकों के लगे उम ड माली को मग लगीं, सु-लिंगी हमे एक वार से अन्तरीक उम-दगर मु, लिकार-पुष्पों देल पू मग लगीं है, लगे-कुनों को छोड देना है ; न-लगे लकर लगीं जगे लगे, लगे-अन्तरी लगीं लगीं लगीं है । उनकी भिन्गी हुरी, दगाल-उम-देवारी म-लिकी लगीं लगीं लगीं लगीं लगीं लगीं

१ अन्वेषणः - लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः
 पुष्पिकाः श्लो ५० अन्वेषण-मन्त्र-श्लो ५१-५२
 २ काचिन्मन्त्र-श्लो ५३-५४ श्री-कृष्ण-वदन्तः
 प्रियप्रस्तावः - श्लो ५५-५६ श्री-कृष्ण-वदन्तः
 ३ सत्त्वः - लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः
 बहुतः - लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः
 लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः - लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः
 परिकरः - लक्ष्मी-श्री-कृष्ण-वदन्तः

यहाँ तक कि वरुण भी यकोगाया बाकर हमारी चापलूसी न कर। यह जो तू कृष्ण की प्रियता के लिये... प्रार्थनों को ही सुना। वे ही इस चातुकार से प्रसन्न होकर तेरी... प्रियता के लिये... प्रार्थनों को ही सुना। वे ही इस चातुकार से प्रसन्न होकर तेरी... प्रियता के लिये... प्रार्थनों को ही सुना। वे ही इस चातुकार से प्रसन्न होकर तेरी...

...ने प्रेम लक्ष्मी अटपटे' बचन सुनकर उद्धव स्तब्ध रह गये। वे गोपियों को देवदत्त... ने बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गोपियों की कृष्ण तन्मयता के कारण उद्धव... प्रेम-लक्ष्मी अटपटे' बचन सुनकर उद्धव स्तब्ध रह गये। वे गोपियों को देवदत्त... ने बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गोपियों की कृष्ण तन्मयता के कारण उद्धव... प्रेम-लक्ष्मी अटपटे' बचन सुनकर उद्धव स्तब्ध रह गये। वे गोपियों को देवदत्त... ने बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गोपियों की कृष्ण तन्मयता के कारण उद्धव...

उद्धव ने गोपियों को श्रीकृष्ण का जो संदेश दिया उसका सारांश यह था कि कृष्ण प्राणा... इसलिए गोपियों से उसका वियोग नहीं हो सकता। अतः उन्हें यम संहिता... का दमन कर आत्मसाक्षात्कार करना चाहिए। प्रिय का दू...

उद्धव उवाच ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ १ ॥
 अथवा ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ २ ॥
 अथवा ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ३ ॥
 अथवा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ४ ॥
 अथवा ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ५ ॥
 अथवा ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ६ ॥
 अथवा ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ७ ॥
 अथवा ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ८ ॥
 अथवा ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ९ ॥
 अथवा ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ १० ॥

श्रीमद्भागवत १०, ४७, १२-१६।
 श्रीमद्भागवत १०, ४७, २७

षष्ठ अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टशापी कवि

लीलांगान की परम्परा—जयदेव (१२वीं शती) के समय तक श्रीकृष्ण का रसिक-रूप पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था । वस्तुतः पहले ही हरिवंशपुराण (लगभग ४०० ई०) में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ बिहार 'हृत्सीम कीर्तन'^१ के रूप में चित्रित हो चुका था । कालान्तर में उनका यह रसिक-रूप आधिकारिक विकसित होता गया । श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण में हम उसका चरमविकार पाते हैं । अनुमान होता है कि भारतवर्ष में रसिक-कृष्ण की लीलाओं के वर्णन की विभिन्न परम्पराएँ रही होंगी । श्रीमद्भागवत उनमें से एक परम्परा का ग्रंथ है जिसमें श्रीकृष्ण के सरद रास^२ का वर्णन है । जयदेव का गीतगोविन्द किसी दूसरी परम्परा का अन्ध भाग्य होता है जिसमें श्रीकृष्ण के वसन्तरास^३ का उल्लेख है । आचार्य हृदयगीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'सम्भवतः दसवीं शतक की शताब्दी में भागवत-परम्परा से निम्न की कोई लीलांगान की परम्परा थी । जयदेव का गीतगोविन्द पूर्णरूप से भागवत-परम्परा का अन्ध नहीं है । उसमें रामा एक प्रमुख गोपी हैं जो भागवत में अपरिचित हैं ।' रामा के अन्धों द्वारा अति उन्नत में दोनों परम्पराएँ मिलकर एक हो गई हैं । इन दोनों में जयदेव का गीतगोविन्द और श्रीमद्भागवत दोनों से ही रसिक-कृष्ण के विचार की प्रकृति समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अनुमान किया है कि गीतगोविन्द का अन्ध भाग्य गीतगोविन्द के अनुकरण पर अपनी सरस पदावली 'गीतगोविन्द' के अन्धों की उपाधि भी मिली थी ।^४

हिन्दी कृष्ण-काव्य का मूलमूल

विद्यापति—हिन्दी में कृष्ण-काव्य का मूलमूल हिन्दु-साहित्य की अष्टादश शताब्दी के विद्यपति से ही हुआ । हिन्दी में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ पहले की शताब्दी के

- १ हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय २२
- २ नयवानधि या रासोः शारदाकुलमलिकारः ।
कीर्त्य रन्तुं मनस्वलो योगमायासुपाश्रितः ॥
- ३ विहरति हरिहरि परसवसन्ते ।
भूयति भूयतिवनेन समं सखि विरहिवसन्तु दुःखे ।
- ४ आचार्य हृदयगीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, १०, १४ ।
- ५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, १०, १४ ।
- ६ कृष्ण-काव्य जयदेव की उपाधि ।

विद्यापति की पदावली : भागवत-परम्परा के अन्धों की उपाधि : ५४, ५५ ।

करते बान्ने प्रथम उल्लेखनीय कवि विद्यापति ही हैं जिन्होंने अपनी सरस पदावली म राधा माधव के प्रथम विग्रह और विनय का वर्णन किया है। विद्यापति संस्कृत क पण्डित थे। संस्कृत क कृष्ण काव्य स उनका प्रगाढ़ परिचय था। सिक-कृष्ण क लीलागान की प्रेरणा निदधक ही उन्हें संस्कृत कृष्ण-काव्य स मिली होगी। श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन भी विद्यापति ने किया था। श्रीमद्भागवत की एक प्रतिलिपि उन्होंने स्वयं अपने हाथ से कन्नड़ में अनुवाद (मनु १४२८ ई०) में की थी। यह प्रति अद्यावधि सुरक्षित है।^१ विद्यापति केन सम्पन्न भावुक कवि का श्रीकृष्ण के भागवत वर्णित मधुर रूप पर मुग्ध हो जाना परम उचित विनय करना सहज सम्भव है। विद्यापति ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को बताने का प्रयत्न ही नहीं किया अनेक स्थलों पर किया है।^२ गोपी-विरह का यह वर्णन जो श्रीमद्भागवत के वर्णित विग्रह वर्णन से साम्य रखता है—

मधुर मोहन गेल रे, मोरा विहरत छाती ।
गोपी सकल विसरलनि रे जतछल अहिवाती ॥
गलांन छलहैं अपनं गृह रे तीवड़ गेलसँ सपनाई ।
हरनी छुटल परसमनि रे कौन गेल अपनाई ॥
का कहको कत सुभिरव रे हम भरिए बरानि ।
दानक बस सौं धनवन्ती रे कुदजा गेल राखि ॥^३

विद्यापति एक स्वच्छन्द-भावुक कवि थे। उनमें हम किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का अग्रगण्य नहीं मानते। किन्तु उनके बाद हम कृष्णकाव्य को अधिकतर पूर्वलोचित वैष्णव सम्प्रदायों की शक्ति से आकाश पाते हैं। हमारे आलोच्य काल के अधिकतर समर्थ कवि या तो किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे या स्वामी हितहरिवंश जी अथवा हरिदास जी की भाँति स्वयं किसी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। कुछ कवि स्वच्छन्द भी रहे किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। शैली श्रेष्ठियों के कुशल अक्षर कवियों पर श्रीमद्भागवत का वस्तुगत एवं स्वतन्त्र प्रभाव पड़ा है। साम्प्रदायिक कवियों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—“मद सम्प्रदायों के कुशल अक्षर भागवत में वर्णित कृष्ण की व्रजलीला की ही उत्तर शक्ति बयाने सगृहने अपनी प्रेमलक्षणा-भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त सम्पन्न है।^४ अतएव ये कृष्ण भक्ति साहित्य में विशेष कर मधुर-रस की प्रतिष्ठा ही सब शास्त्रों का उद्देश्य रहा। कव्य का सूत्रपात भी रसिक-कृष्ण को लेकर हुआ। श्रीकृष्ण

१ विद्यापति के जीवन का इतिहास (सम्पादित—डॉ० बाबूराम सक्सेना) भूमिका, पृ० ८

२ (क) ललित-रस-सुन्दर-मिलत-जन्म-कुमार । विद्यापति की पदावली पृ० ३५

(ख) ललित-रस-सुन्दर-मिलत-जन्म-कुमार । विद्यापति की पदावली पृ० ३

(ग) सुन्दर-रस-सुन्दर-मिलत-जन्म-कुमार । विद्यापति की पदावली पृ० ३५

३ विद्यापति की पदावली, पृ० ३५

४ विद्यापति की पदावली, पृ० ३५

श्रीर

नवनीतप्रिय वास्तुकारों की सफल कारवाय

तु वल्लभ-लेखप्रदाय में कृष्ण की सधुरानतिक का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण न्यायक चैन य हितहरिवंश श्रीर हृदिवास-सम्प्रदाय का मन ही बंधनपूर्वक ही आधारित है। श्रीर, रत्नकान्ति प्रादि स्वयंसेवक कृष्ण यत्न करि भी ही पोषक रहे।

आलोच्य काल में सभी श्रेणी के कृष्ण यत्न करियों की संख्या इतनी बड़ी हित्य इतना विशाल है, श्रीर उस पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इतना विविध-ह है कि उसके एकांश का निम्नसंत कराना भी किसी शोषार्थी के निरु-ए प्रतिनिधित्व की रक्षा करते हुए हिन्दो कृष्णयत्न करियों की संख्या-यत्न में का कार्य भी कम दुष्कर नहीं है। "छो बड़ छोटा बहुत प्रयास है" ऐसी म्यानीफ्लाक एवं प्रयास मन्त्रनिर्वाहों न्याय से प्रसूक्त, प्रचित, समर्थ एवं यों का चयन कर उनी स्वयंसेव-के प्रयत्न के प्रयत्न, चले हुए स्वयंसेव-वेयन भावकीत करिों से प्रभाव का प्रयत्न का न का प्रयत्न ही सभी-एव हिन्दो का कृष्णयत्न माहिर में काइक-के प्रयत्न के प्रयत्न प्रयत्न के-एव ही स्वयंसेव-के श्रीमद्भागवत का प्रभाव का प्रयत्न के प्रयत्न

श्रीर श्रीमद्भागवतों की न पुत्र श्रेणी भी प्रयत्न-यत्न के न के प्रयत्न के चार दिग्गो लक्ष श्रीर यत्न दिग्गो के दिग्गो प्रयत्न करिों की श्रीर श्रीमद्भागवतों के प्रयत्न के प्रयत्न है। इन करिों का प्रयत्न-यत्न

- सुभाषदास (संख्या ११२४-१२४०)
- सुरदास (संख्या ११३४-११४०)
- रामभाषदास (संख्या ११२०-११४०)
- कृष्णदास (संख्या ११२४-११३४)
- गोविन्ददास (संख्या ११३२-११४०)
- श्रीरदास (संख्या ११३०-११४२)
- सुरदास (संख्या ११३३-११४२)
- सुरदास (संख्या ११३०-११४०)

सभी कार्य इ-ए काले सन्प्रदाय में श्रीमद्भागवत की प्रभाव-सन्प्रदाय के प्रयत्न प्रयत्न के करिों के प्रयत्न श्रीमद्भागवत के प्रयत्न श्रीमद्भागवत की ही प्रयत्न प्रयत्न के प्रयत्न श्रीमद्भागवत के प्रयत्न सन्प्रदाय के प्रयत्न

संख्या ११३०-११४०
संख्या ११३०-११४०

करते थे, सूरदास जैसी प्रकरण पर अनेक ललित मुक्तक पद रच डालते थे।^१ अष्टछाप के तृतीय प्रसिद्ध कवि पर को भी महाप्रभु श्रवणलभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की प्रतुक्रमणिका तुनाई की और उनसे भी श्रीकृष्ण की बाललीला का गान करने का अनुरोध किया था।^२ परमानन्ददास ने ता श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति का अपन स्थिति-काल की दिकट धार्मिक परिस्थिति के लिए एकमात्र अवलम्ब स्वीकार किया था और बड़ी संभार भाषा से तात्कालिक धार्मिक दुर्दशा का चित्रण किया था।^३ अष्टछाप के आठवें भक्त श्रवणलभाचार्य ने तो श्रीमद्भागवत पर विपुल साहित्य की रचना की है जिसका उल्लेख परमानन्ददास ने किया जायगा। यहाँ हम काल क्रमानुसार अष्टछाप के कवियों पर इस प्रबन्ध में प्रथम चतुर्थ और पंचम अध्यायों में विवेचित भागवतोक्त सामान्य और विशेष तत्त्वों में प्रकाश का पर्यवेक्षण करेंगे तथा यथावसर श्रीमद्भागवत के मूल अंशों से उनकी रचना का मूलन भी। अष्टछाप के कवियों ने जहाँ दशमस्कन्धीय कृष्ण-लीला का विशेष वर्णन किया है, वहाँ श्रीमद्भागवत की अन्य कथाओं और आख्यायिकाओं का उपयोग भी भक्ति-संन्यास में किया है। विशेषकर सूरदास ने अनेक हृष्टान्त और अन्तःकथाएँ श्रीमद्भागवत में की हैं।

(१) कुम्भनदास (संवत् १५२५-१६४०)—अष्टछाप के सबसे वयोवृद्ध कवि कुम्भनदास थे। इसीलिए इनका उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है। सूरदास के वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व श्री कुम्भनदास जी ही गोवर्धन में श्रीनाथ जी की कीर्तन-संज्ञा के रचने थे।^४ इनकी रचि विशेषतया मधुगमकवि की और भी जिनका आदर्श गोपियों है, उन्होंने बाललीला सम्बन्धी पद न लिखकर युगल-लीला के पदों की रचना की है। श्रीमद्भागवत के गोपी प्रेम से ये विशेष प्रभावित थे और गोपियों की रूपासक्ति के भाव से ही श्रीमद्भागवत से लिए हैं—

क - नैननि मरि देखौ मन्दकुमार ।

ता दिन तौ सब भूलि गई हौं अंग अंग सब हारि ।

बिन देखे हौं विकल भई हौं अंग अंग सब हारि ।^५

१ अष्टछाप परिचय (श्री प्रभुदयाल मीतल) पृ० १३७

२ उदा०, पृ० १७६

३ उदा०, पृ० १७६

४ उदा०, पृ० १७६

५ उदा०, पृ० १७६

६ उदा०, पृ० १७६

अष्टछाप की कर्ता—(सम्पा० द्वारकादास परीख) पृ० २२

७ उदा०, पृ० १७६

८ उदा०, पृ० १७६

ख—नैननि टकटकी लागि रही ।

तख सिख अंग लाल बिरिधर के देखत रूप बही ।

× × × ×

धर ब्याहार सकल सुखि भूखी ग्वालिन मननिज बही ।

ग—कबहूँ देखि हों इन नैननु ।

सुन्दर स्याम मनोहरि मूरति अंग अंग मुल देननु ।

वृन्दावन-विहार दिन-दिन प्रति गोपवृन्द संग नैननु ॥^१

उक्त पदों में श्रीमद्भागवत के लोयो-प्रेम के कतिपय प्रसंगों की भावक स्पष्टतया देखी जा सकती है । एक उदाहरण यथात हांसा—

चित्त सुखेन भवतापहृतं हृदेषु

यन्निश्चित्युत करावपि वृद्धकुल्ये ।

पादौ पदं न श्वलतस्तवपादमूला-

सामः कथं व्रजसथो करावाम किन्वा ॥^२

श्रीकृष्ण के रूप वर्णन में कुम्भनदास की वंक्ति—'कुम्भनदास प्रभु मोक्षरत्नकर लालन हैं युवतिन सुखदाई'^३ श्रीमद्भागवत के पद 'वनितोत्सवरूपश्रीलम्'^४ का भाव लिखे हुए है । मुरली के स्मरोद्यकारी प्रभाव के विषय में भी कुम्भनदास ने लिखा है—'बोलेने मुरली की धुनि सुनि, तुब तन मदव द्दहौ'^५ ।

श्रीलागान—रासलीला—

कृष्ण तरनि-तनया-तीर रास-मंडल रच्यो,

अधर कल मुरलिका केरु जाई ।

जुवती जन जूय संग, निर्गत अनेक रंग,

निरखि अथिमान लजि काम जाई ॥

× × × ×

मुखर मंजीर, कटि-किङ्कनी कृतिर रव

वचन नंजीर जनु वेध नाई ।

दास कुम्भनदास हरिदासवध

धरनि नखसिख स्वरूप अद्भुत विराजै ॥

× × ×

गावत मिरि धरन संग, धरन मुश्ति रास न्य

उरपति रयमान लेत नामर नामरी ।

१ अष्टाश्रय परिचय (कुम्भनदास : काव्य संग्रह), पृ० १००

२ श्रीमद्भागवत, १०. २६. ३४

३ अष्टाश्रय परिचय, पृ० १०१

४ श्रीमद्भागवत, १०. २६. ३२

५ अष्टाश्रय परिचय, पृ० १०६

चर्चित-ताम्बूल देत, ध्रुवताल गति लेत, मिडिमिडिता
मिडिमिडिता, तना धुंग धेई अलाग लागरी ॥^१

श्रीमद्भागवत की राम पञ्चाध्यायी के आचार पर ही उपयुक्त पदों की रचना
है —

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीमिहिमवालुकम् ।

रेमे तत्तरजातन्दकुमुदानोदवायुना ॥^२

बलदानां नूपुराणां किकिणीतां च योषिताम् ।

सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥

×

×

×

कस्याश्चिन्नाय्विस्मिस्तकुण्डलत्रिपमण्डितम् ।

गण्डं गण्डे मन्दघस्या अदात्ताम्बूलचर्चितम् ॥^३

कुम्भदास ने 'चर्चित-ताम्बूल देत' लिखकर श्रीमद्भागवत के आश्रय की स्पष्ट
श्लोक देदी है । उक्त पदों में गोवर्धन पर्वत के लिए प्रयुक्त 'हरिदासवर्य' शब्द भी कुम्भ-
दास ने भागवत के 'हृत्तायमद्रिरवला हरिदासवर्यः (१० ३० १८) श्लोक से लिया है ।
उक्त आचार के और भी उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

(२) सूरदास—(संवत् १५३५-१६४०) सूरदास के साहित्य पर श्रीमद्भागवत के
प्रभाव को संक्षिप्त रूप में भी व्यक्त करना इस प्रबन्ध में शक्य नहीं है । श्रीमद्भागवत की
रचना ही सर्वाधिक उपजीव्य बनाया है । वास्तव में यह विषय एक पृथक् शोध-प्रबन्ध का है,
किन्तु यहाँ हम कतिपय उदाहरणों में ही इसे सीमित रखने के लिए विवश हैं ।

श्रीमद्भागवत का महत्त्व-प्रतिपादन—

सूर ने श्रीमद्भागवत-श्रवण को मानव जीवन की सफलता के लिए अनिवार्य
बनाया है—

क—नर तैं जनम पाइ कहू कीनों ?

उदर भरघौ कूकर सुकर लीं प्रभु की नाम न लीनों ।

श्रीभागवत सुनी नहिं सुवननि, गुरु गोविन्द नहिं चीनों ॥^४

ख—जनम तो कारिहि भयो सिराइ ।

×

×

×

श्रीभागवत सुनी नहिं सुवननि बैकहु रुचि उपजाइ ।

अनि शक्ति करि, हरि भक्तनि के कबहूँ न भोसु पाइ ॥^५

१ क.पौ. पृ० ११५

२ श्रीमद्भागवत १०, २६, ४१

३ क.पौ. पृ० ६, ६३

४ 'सूरदास' (क.पौ. नागरी प्रचारिणी सभा) पृ० ६५

५ क.पौ. पृ० ११५

ग—इत संत वैकुण्ठ जनेम गयी ।

X X X

श्रीभागवतं सुन्वी नहि कवचं, बीषहि भटकं मन्धी ।

सूरदास कहै सब जग बूडची, जुम जुम भगत वरधी ॥^१

भगवान् की भक्त वत्सलता को जर्जी करत हुए सूर ने श्रीमद्भागवत के परम प्रामाण्य की स्वीकृति वेद और गीता के साथ उसका नामोल्लेख करके इस प्रकार दी है—

X X X

गीता वेद भागवत में प्रभु यी बोले हैं आष ।

जन के निपट निकट मुनियव है, सदा रहत ही साथ ॥^२

मध्यकाल में शाक्तों और वैष्णवों में कलह चलता रहता था, किन्तु वैष्णव धर्म (भागवत धर्म) अपने अहिंसा, सात्त्विकता आदि गुणों के कारण और श्रीमद्भागवत जैसे समर्थ भक्तिशास्त्र को अपने पौषक रूप में पाकर अनुदिन लोकप्रिय और किञ्चित् ही रहा था । सूर ने वैष्णव (भागवत) की श्रेष्ठता का प्रतिपादन स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा दुर्वासन के प्रति इस प्रकार कराया है—

तुम साकट वै भगत भागवत, रगहोष तै न्यारे ॥^३

भागवत-कथन—सूरसागर में कृष्ण जलस्थान में एकदिन सूर ने प्रतीति का का विशेष चमत्कार दिखाया है तथापि उनका सूरसागर दुःखसंस्थानों में परम प्रोत्साह-भागवत को ही प्रस्तुत करता है । सूरदास ने मूल चतुःश्लोकी भागवत के अन्तर्गत अष्टम स्कंध के विषय में कहा है—

श्रीमुख चारि श्लोक दए ब्रह्मा कौं समुभाइ ।

ब्रह्मा नारद सौं कहे नारद व्यास सुतपाइ ॥

व्यास कहे सुकेश सौं ब्राह्म संख्य बकाइ ।

सूरदास मोई कहे पदभाषा करिगाइ ॥^४

सूर ने श्रीमद्भागवत के अनुसार ही भागवत की एकदुःख-रम्या का वर्णन किया है ।^५ और भागवत-रचना का कारण भी बताया है—

भयो भागवत जा परकार । कहीं सुनो को सब चितकार ।

सतजुग लाख बरस की आइ । त्रेता दस सहस्र कहि गाइ ।

द्वापरे सहस्र एक की आई । कलिजुग सत संवत रहिगई ।

लोक कहने सुनने कौं रही । काल परजाई जाई नहि कही ।

१ सूरसागर (काशी नागरीप्रचारिणी मभा) पद २११

२ वही, पद ११६

३ वही, पद २४७

४ वही, पद २२५

५ वही, पद २२७, २२८

बहुिर पुरान अठारह किए । प तउ मानि न आई हिए ।

तउ नारद तिनके दिख आई चारि म्लोक कहे समझाइ ।

× × ×

दामा-सूत तैं नारद भयो । दोष दामपन को मिटि गयो ।

आसवेव तउ करि हरि ध्यान । कियो भागवत को व्याख्यान ।^१

सूर ने श्रीमद्भागवत श्रवण की फलश्रुति में भगवत्प्राप्ति की बात कही है तथा उसे भयनागर तरने का साधन बताया है—

श्रीभागवत सुनै जो कोइ । ताको हरिपद प्रापति होइ ।

× × ×

सुनै भागवत जो चित लाइ । सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ ।^२

सूरसागर में सूरदास ने श्रीमद्भागवत की प्रायः समस्त कथाओं और अन्य विषयों का संग्रह 'सूर कहै भागवत विचार'^३ अथवा 'सूर कह्यौ भागवतनुमादि'^४ इस प्रकार की उन्मत्तप्रायः कविताओं सहित किया है। सूरसागर के स्कन्धात्मक संस्करण में मुख्य-मुख्य १५ स्कन्ध हैं—

प्रथम स्कन्ध—सूत बौतिक सम्वाद, श्रीकृष्ण-द्वारकागमन, घृतराष्ट्रवनगमन, अर्जुन का दुःख-से शोक समाचार लेकर लौटना, परीक्षित् जन्म, पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देना श्रीरोहण, परीक्षित् का दिग्बिजय, परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाय, परीक्षित् दूर-गमनम् ।

द्वितीय स्कन्ध—द्विराट्-रूप-वर्णन, भगवद्भक्ति की प्रवचनता का निरूपण, भगवत्-न-श्रीलावतारों की कथा ।

तृतीय स्कन्ध—उदक और विदुर की भेंट, मैत्रेय विदुर सम्वाद, ब्रह्मा की उत्पत्ति, ब्रह्म-भ्रमण कथा, जय-विजय कथा, हिरण्वाक्ष वच, कर्दम देवहूति कथा, कपिलदेव का शासन, देवहूति-कपिल सम्वाद ।

चतुर्थ स्कन्ध—सती और दश की कथा, ध्रुव कथा, पृथ्वीकथा, पुरंजनोपाख्यान ।

पंचम स्कन्ध—ऋषभदेव की कथा, जडभरत और रतूगण संवाद ।

षष्ठ स्कन्ध—अजामिलोपाख्यान ।

सप्तम स्कन्ध—श्रीसह अक्षतार कथा (प्रह्लाद-विरत) ।

अष्टम स्कन्ध—मन्व-मन्व कथा, समुद्रमन्थन और देवासुर संग्राम कथा, मोहिनी-अज्ञान कथा, शाकनाभतार कथा, मत्स्यतार कथा ।

१ सूरसागर, पृष्ठ २३०

२ अज्ञेय

३ इति. पृष्ठ ३३६

४ अज्ञेय पृष्ठ ३३६

नवम स्कन्ध पुरुरवा की कथा, व्यक्त और सुकन्या की कथा, केशराम-रेवती विवाह, राजा अम्बरीष की कथा, सीमारि शूद्रि की कथा, संगमनरु की कथा, श्रीराम-कथा तथा परशुराम-कथा :

दशम स्कन्ध—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में कृष्ण लीला का भारतीय वर्णन है। सूर का मन यहीं रमा है। सूर ने दशमस्कन्धीय लीलाओं का सर्वत्र अत्यन्त प्रियतम से किया है। कृष्णभक्ति परक अन्य प्रबन्धों में भी उन्होंने कृष्णलीला विदयक नामही लेकर पद लिखे हैं—उदाहरणार्थ सूरसागर दशमस्कन्ध में कृष्ण द्वारा श्रीधर कृष्णरु के लीलाभंग की कथा है^१, जो श्रीमद्भागवत में नहीं है। सूर की कृष्णलीला का स्फुरण हुआ था। कलनः उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा और कसरता से भागवत की कृष्णलीला को समीचीन रूप में उपवृंहित किया। सूर ने लिखा है कि भागवत के ती मन्वन्तों को ही मुकुन्द ने प्रीतिपूर्व से जैसा कहा था वैसा ही अब तक भी बर्हान करता रहा^२, किन्तु अब दशमस्कन्ध को हरि का ध्यात करके मैं (मौलिक रूप में) कहता हूँ^३ अतः सूर के कृष्णलीला-राम का विवेचन हम पृथक् रूप से आगे करेंगे।

एकादशस्कन्ध—तरनारायण-अवतार कथा, हुंमावतार-कथा।

द्वादश स्कन्ध—परीक्षित की परम पद प्राप्ति। इस प्रकार सूर ने श्रीमद्भागवत की अखंडता का निर्वह किया है।

(अ) भागवतीय सामान्य चर्चामय

सूर ने एक नामक इंसान बना के राम की लीला की। इसमें भागवत के सक्तिपदत्वों की मात्र वर्णित है।

१—भक्तिमार्ग का सर्वश्रेष्ठत्व—भागवत में भक्ति के जो पद लिखे हैं, वे भक्ति साधन पथ के रूप में प्रत्यक्ष दिखे, मगर श्रीमद्भागवत के ऐसे नामक पदों, जो के समस्त साधनों की परीक्षा भक्त्यभक्ति की श्रेष्ठता का प्रमाण देना, अर्थात् राम-कर्मकाण्ड आदि भागवत स्कन्ध में कारक लेते हैं। अतः उन पदों को विशेषतः ही भक्ति के बिना भगवान् ध्यात न देखें। अतः ही भागवत में परीक्षा पद १—

क—नमि म ममं विदुः नष्टि म मं पद - उदाहृतं १०००।

क्रिया सन वगवृ निमिः राम, भाग, जो तव परमात्मा।

- १ सूरसागर, पृ २२४
- २ सुक ज्यों सूर को कौन मुजारी सुडा - जो को ही नाम १००० पद १००
- ३ व्यास कह्यो हूँ मोठे गौर, भागवत के नाम १००० पद १००
- ४ भागवत स्कन्ध नाम हुंमा, राम भक्ति को पद १००
- ५ जब स्कन्ध सुनी जरी को भागवत नाम १००० पद १००
- ६ सूर कहत अब दशम को, राम भक्ति को नाम १००० पद १००
- ७ देखिये, इस प्रबन्ध के अन्त में और ४

सूरदास प्रभु हैं ही श्रीसर भजि उतरि चली भवसागर

क—कुसुमागत धम धम का शरणा जल काउ करत बनाई
नदनि विमुख पानी सा मन्वित भक्ति हृदय नहिं भाइ
भक्ति पाप मर अनि नियरें जब नव कीरति गाई
भक्ति प्रभाव सूर लखि पायो भजन छाप नहिं पाई ।

ग—रे मन समुक्ति सोचि बिचारि ।

भक्ति विभु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि ।^३

घ—सूर हरि की भक्ति कीन्हें जन्म पातक जाइ ।^४

श्रीः नरभागवत में कहा गया है -

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।

भक्तियोगो भगवति तन्नामप्रह्लादादिभिः ॥^५

भक्त-महिमा—जिस प्रकार भक्त भगवान् के अनुत्थाध्यय मे भगवान् की भक्त-पराधीन हैं ।^६ सूरदास ने भक्त की बड़ी महिमा सूरदास के रूप में ही—

क—अन्तरजामी नाछे हमारी, हों अन्तर की जानों ।

तदपि सूर में भक्तवच्छत हों, भक्तनि हाथ विकारों ।^७

ख—भक्तबल्लल है विरद हमारी वेद सुमुति हूँ ।^८

ग—हम भक्तनि के भक्त हमारे ।

सुन अर्जुन परतिम्या सेरी यह ब्रत दरद न टारे ।

भक्तनि काज लाज हिय करिके पाइ पियादे घाठे ।

जहें जहें भीर परै भक्तनि कीं तहें तहें जाइ छुडाऊं ।

जो भक्तन सीं दूर करत है सो रिज वरी सेरी ।

देखि विचार भक्त हित कारन हूँ भक्त हौं रथ तेरी ।

जीतै जीत तक्त अपने की हारे हारि बिचारों ।^९

- १ सूरदास, पद ६१
- २ पद १५२३
- ३ पद ३०६
- ४ पद ३३६
- ५ श्रीः नरभागवत ६. ३. २२ विशेष द्रष्टव्य १. २. ६, १३। १. २. २२। १. २.
- ६ कर्तव्य-पराधीनो अत्यन्त इव द्विज ! आदि । श्रीमद्भागवत ६. ४
- ७ सूरदास, पद २४३
- ८ पद १६३६
- ९ पद १६३२

सामग्य ब्रह्मानन्द में किसी के पास नहीं है—

क—हरि हरिभक्त एक, नहीं दोह । वे मूढ बान्धव विरहा कोह ।^१

ख—नहीं तिलोकी ऐसी कोह । भक्तनि की दुख है एक कोह ॥^२

श्रीमद्भक्तकर्म में भगवद्भक्त के जो कर्म और लक्षण बरतते हैं, वे भक्त के

लक्षण वर्णन इस प्रकार किया है—

नर देही पाह चित्त चरन-कमल कीरै ।

दीन बचन सन्तनि सँभ, दरस परस कीरै ॥

लीलाबुन अमृत रस भक्तनि पूरु पीरै ।

सुन्दर मुख निगुनि ध्यान नैन माहि लीरै ॥

गदगद सु पुत्रक रोम अम प्रेम भोवै ।

सुखास सिखार जस गाह गाइ बीरै ॥^३

२—स्तुति (विनय)—स्तुति का लक्ष्य भगवान् की अत्यन्त महिमा और भक्त-
बत्सलता का व्यापन तथा स्वदीन वर्णन करना है । निर्गुण निर्विकार ब्रह्म ही माया के

भिन्न गुणों से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए त्रिवेद रूप में व्यक्तित होना
है ।^४ भगवान् की महिमा का पूर्णतया कथन किसी के लिए सम्भव और संभव नहीं है ।^५

किन्तु भक्त ने प्रति उत्तरे वास्तव्य की इयत्ता नहीं है । नर है श्रीमद्भक्तकर्म की स्तुति-
स्तुति के आधार पर लिखा है—

करि संवत विरह उन्वयति । नून भक्तार विक्रम प्रणयति ।

दृनहीं करत शिगुन विनयत । उन्वयति विनि दुनि कर्त संवत ॥^६

स्वतंत्र रूप में भी भक्त के विनय और स्तुतिपूर्ण रस भगवद्भक्त के महत्त्व है ।
इनमें अनन्त भगवत्प्राप्त्यर्थ और भक्तवत्सलता का जैसा अन्तर्भाव होता है, वह अस्मिन्
साहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है—

क—वासुदेव की दली बढावै ।

अन दिता अमरीष प्रणयतु विर भक्तनि की कल्प सिधाय ॥^७

ख—करती तनसिधु की, मुख कहुन न पावै ।

कण्ठ हेल परती बली, बननी तनि पावै ॥

- १ सुरसगर, पद २६०
- २ बही, पद ११०
- ३ श्रीमद्भक्तकर्म १२, ११
- ४ सुरसगर पद १०
- ५ श्रीमद्भक्तकर्म ४, १
- ६ बही २, ७, ११
- ७ सुरसगर, पद ४२१
- ८ बही, पद ४

वेद उपनिषद् जासु कौं, निरमुनहि बतावै ।
सोइ सगुन ह्वै नन्द की दाँवरी बँधावै ॥^१

ग—तुम अनादि भविष्यत अनन्त गुन पूरत परमानन्द ।
सुरदास पर कृपा करौ प्रभु, श्री वृन्दावन चन्द ॥^२

३—नाम-महिमा भगवान् के नाम की अनन्त महिमा सूर ने गाई है । सूरसागर में सारः पदों का प्रारम्भ "हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ" पंक्ति से होता है । इसी सूर की नाम-निष्ठा प्रकट हो जाती है ।

क—जब तै रसना राम कह्यौ ।

मानौ धर्म साधि सब बैँख्यौ पहिबे में धौं कहा रह्यौ ॥

प्रबट प्रताप ज्ञान गुरु समतँ दधि मधि घृत लै तज्यौ मह्यौ ॥

सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख हनुमान सिव जानि गह्यौ ॥

नाम प्रतीति भई जा जनकी, लै आनंद दुख दूरि दह्यौ ॥

सुरदास धनि धनि वह प्राणी जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ ॥^३

ख—सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी ।^४

ब—जिहि जिहि जोति जन्म धारधौ बहु जोरधौ अथ कौ भार ।

तिहि काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम कुठार ॥^५

घ—भव धम्योधि नाम निज नौका सुरहि लेहु चढ़ाइ ।^६

धौमदभागवत में कहा गया है कि जो भगवद्भक्त है वास्तव में वही श्रेष्ठ उन्नतर्त्त से श्रेष्ठता नहीं घाती । सुरदास ने भी नाम-जप करने वाले को श्रेष्ठ कहा है

सोइ भक्तौ जो रामहि गावै ।

स्वपचहु श्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै ।^७

३—गुरु महिमा—सूर ने धौमदभागवत षष्ठ-स्कन्ध सप्तम अध्याय की धाम्योधिक्य के आधार पर गुरु की महिमा इस प्रकार बताई है—

हरि गुरु एक रूप रुप जानि । यामें कहु सन्देह न मानि ।

गुरु प्रसन्न हरि परसन होइ । गुरु कैं दुखित दुखित हरि जोइ ॥

× × × ×

सर्वै हरि गुरु सेवा कीजै । भेरी बचन मानि यह लीजै ॥^८

१ सूरसागर पद ५

२ वही पद २५३

३ वही पद ३११

४ वही पद ६०

५ वही पद ९८

६ वही पद १५३

७ वही पद २३६

८ वही पद ४१३

एक स्वतंत्र पद में सुर ने गुरु के विषय में कहा है—

गुरु बिन्दु ऐसी कौन करै ।

माला तिलक मनोहर बनाता, तै मिर छत्र प्ररै ।

भवसागर तै बूझत राखै, दीपक हाथ धरै ।

गुरु स्वाम गुरु ऐसी समरथ, छिन में लै उबरै ॥१

५—सत्संग—साधुजनों के महत्त्व और सम्बंध के प्रभाव, अत्यासकारी प्रभाव का सुर ने यों वर्णन किया है—

जा दिन सत पाहुने सांघत ।

नीरथ कोटि सदान करै फल जैसी दरसन पावन ॥

नयी तेह दिन दिन प्रति उनके धरन कमल बिजु जावन ।

मन बच कर्म और नहि जानय सुमिरत यौ सुमिरावत ॥

मिथ्या वाद उपाधि रहित हूँ विमल विमल बसु जावन ।

बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावन ॥

संगति रहे साधु की अनुदिन, भवदुख दूरि नखावन ।

सुरदास संगति करि तिनकी जे हरि सुरल करायन ॥२

६—वैराग्य—श्रीमद्भागवत में भक्ति के साधन और साध्य दोनों ही रूपों में वैराग्य का विस्तृत वर्णन है जो समस्त संघ में इतस्ततः विकीर्ण है। सुर की रचनाओं में भी वैराग्य परक पदों की संख्या बहुत है जिनमें गाने मन व प्रतीक, अपने ही ज्ञान विस्मयान, देह मेह की भासक्ति की निन्दा तथा श्री गणेश जी का देह-धन के लालच की हानि का उल्लेख किया गया है। साथ ही ज्ञानवन्दन का ईश्वर-भक्ति का प्रत्यक्ष प्रतीक साधन बताकर उसके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र लक्ष्यप्राप्ति कर लेने का आश्वासन दिया है।

क—जग में जीवत ही की नखी ।

मन विष्णु रें लन छार होइगो, को उन मान गृहणी ।

मैं मेरी कबहुँ नहि कीजै, कीजै संव सुरणी ।

विकलासक रज्जु निशि बासत लुप्त निशि होइ गणी ।

साँच झूठि करि माना जोरी, हाथुल जगै नखी ।

सुरदास कसु बिर न रहैको जौ घापी सो नखी ॥३

ख—रे मन, लौंडि विषय की रीचयो ।

X X X

बान्तर महत्त कवक काविति को हाथ रहैयो रीचयो ॥४

१ सुरसागर, पद ५१७

२ कबी, पद ३६०, प्रसव्य—श्रीमद्भागवत ११. ०. ३०. ११. १५. २०-२५. ११. ३०. १-६

३ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११, अध्याय ३०, ३१, ३२

४ सुरसागर, पद ३०२

५ कबी, पद ३१

क—रे मन, जय पर जानि उवाची ।

जलमद, कूलमद, तरुनी के मद, भवमद हरि बिसरायो ।^१

द—बीरे मन समुक्ति समुक्ति कछु चेत ।

इतनी जन्म अकारण खोयो, स्याम चिकुर भए सेत ।

तब लगी सेवा करि निस्वय सौं जब लगी हरियर सेत ।

सूरजदास भरम जनि भूली करि विघना सौं हेत ।^२

(आ) भागवतोक्त विशेष तत्त्व^३

१—त्रिविध कृष्ण लीलाओं का गान

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध—सूरदास ने श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध की निम्नलिखित कृष्ण लीलाओं का गान किया है—कृष्ण प्रादुर्भाव, गोकुल में जन्मोत्सव, पूतना वध, अकण्ठ-मुनि वध, सुखावर्त वध, नामकरण, शिशु क्रीड़ा, माखनचोरी, जलखल-बन्धन और यन्त्राभूषण-द्वार, वृन्दावन प्रस्थान, शोचारण, वकासुर वध, अघासुर वध, ब्रह्माकृत शोपनाल एव गोव-सहरण, धेनुक वध, कालिय-दमन, दावानल पान, प्रलंबवध, चीरहरण, यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धन-पूजा तथा गोवर्धन धारण, इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति तथा कामधेनुकृत ब्रह्माभिषेक वदस्य-बन्धन से बन्द का मोचन, रासलीला (श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना, शोषिकामोचन, रासतृत्य तथा जलक्रीड़ा) विद्याधर शापमोचन, वृन्दावन विहार एवं वेषुवादन, नन्ददूत वद, धनभोजन, वृषभासुर वध, केशि-वध, क्योमासुर वध, अक्रूर व्रज आगमक, गोपिकाओं की उल्लिखिता, अक्रूरकृत कृष्णस्तुति, मथुरा भग्न, रजक वध, धनुर्भंग, कुवलयापीड वद, मत्स्य एवं कंस वध, वसुदेव मिलन, बहोपवीत, गोपी विरह, उद्धव व्रजापमन, अमर-गीत, उद्धव प्रत्यागमन, अक्रूर घृह गमन ।

दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध—कांस्यवध-दहन, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी पत्र-प्राप्ति, कृष्ण रुक्मिणी-विवाह, प्रद्युम्न जन्म, कृष्ण जान्मेवली एवं कृष्ण सत्यभामा विवाह, अतघन्या वध, श्रीकृष्ण के अन्य विवाह, भोमासुर वध तथा कल्पवृक्ष आनयन, रुक्मिणी परीक्षा, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध-विवाह, नृसिंहद्वार, बलराम व्रज आगमन, षोडश वध, सुदक्षिण वध, त्रिविध दण्ड, साम्य विवाह, नन्दरथ संशय, जरासंध वध, राजाओं की प्रार्थना, पाण्डव यज्ञ, विष्णुपत्न उघ पाण्डव-समा में दुर्योधन का अपमान, शाल्व वध, दन्तवक्र वध, सुदामा ब्राह्मण पर अनुग्रह, कुरुक्षेत्र में गोप-गोपियों से मिलन, देवकी पुत्र आनयन, सुभद्राहरण और अर्जुन-सुभद्रा-विवाह, जलक और शूतदेव पर अनुग्रह, वेदस्तुति, शम्भुमोचन (भस्मासुर वध), भृगुकृत त्रिदेव परीक्षा, अर्जुन को स्व-स्वरूप का दर्शन एवं शंखचूड़ ब्राह्मण के पुत्रों का महाकास्युर से आनयन ।

१. सूरदास पर ३८

२. कवि, पृष्ठ ३२२

३. पृष्ठ ३६२ का पंचम अध्याय ।

किया है। हाँ यह बात अशक्य है कि जिस लीलाओं में जननी विन्तृनि प्रसिद्ध रही है उनका वर्णन उन्होंने विषय लक्ष्माह उन्मत्त और उद्वेगित क रूप किया है। इनमें बाबू लीला और कदोय का प्रथम लीलाहें उल्लेखनीय हैं जिसमें भूय म अद्यतनस्तक विमत्त हूँ, हृदय में कृष्ण लीला क स्फुरण का अनुभव कर जिसका भाव से छद्मनी तिली प्रतिभा का परिचय दिया है किन्तु भूय बत स्वसमीक्ष है कि श्रीकृष्णसामय की कृष्णलीला विषयक मूल सामग्री निरन्तर सूर का उपजीव्य रही है। तभी-कही सूर ने श्रीकृष्णसामय के श्लोकों का अनुवाद या ही कर दिया है यथा कृष्ण जन्म प्रसंग में—

सूरसागर—

आनन्द आनन्द बढ़घी अति ।
 देवनि दिवि दुन्दुभी बजाई सुनि मधुरा-प्रसंगे बादुरति ।
 विद्याधर किन्तर कलील मन उपजावत मिलि कठ अमित भति ।
 गावन गुन संघर्व युक्ति तन, राचन्हि मत्र सुन्दरनि रतिक अति ।
 करवत सुमन सुदेश सुर सुर, जयजयकार करन मानव रति ।
 सिव विरचि इन्द्रादिअकर मुनि, पूजे मुक्त कसबत बुद्धि भति ॥

श्रीमद्भाववत—

मनास्वस्तप्रसन्नानि सत्कृष्णमसुरदुष्टान् ।
 जयन्त्येवमेते नमिन्नेशुं कृतयो दिशि ॥
 जयः किन्तरेव नानुशुभुः विशवात्मनाः ।
 तत्रा-अपेक्ष नरुतु-मनोनिः पम नरुतु ।
 गुणुशुभुन्दो शोः सुमन क नूदोपुशुः ।
 मन्द मन्द अकमरु-मनवुं-सुमशरु ॥

तृष्णावर्त वध प्रसंग में—

सूरसागर -

प्रति आनन्द अकमरु में उरुं, नरेव विदु गुन उपदेवानी ।
 दुनाधरुं ही सुगति अति विदु तदानी अकुर कतु अतिमनना ।
 वरु मने नरुतु मे बलातु, महि न रती बलातु अकुरतरी ।
 अ-पुः नई नवत मे शोरी + कुरु इतु नारु नरुतु अकुरतरी ।
 नौडर महासथावध छातः मरुतु क सवै अकुर कति नारी ।
 अकुरतु त उरुतु पुनवति तदानी अकुरतु इकतु नरु शानी ॥

श्रीमद्भाववत—

एतन्नेवमकुरु कान्तदानी मुन शरी ।
 परिमाला शिरोनेतु न देहे शोरीरुतु ॥

- १ सूरसागर पद. ६२५
- २ श्रीमद्भाववत १० अ. ५-६
- ३ सूरसागर पद ६२५

महापुरुषमादध्याँ कमसु ॥

दैत्यो नाम्ना नृणावत कसभृत्य प्रखादित ।

जहारासीन्मभकम् ॥

गोकुल सवमावृष्वन्मुध्याश्चक्षुषि रेणुभिः ।

ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिसो विशः ॥^१

बाललीला के प्रसंग में—

सुरसागर—

कवहूँ धरनि पर बैठिक, मन मैं कछु यावत ।^२

श्रीनन्दभागवत—

उद्भाषति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयत्रवत् ।^३

कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसंग में —

सुरसागर—

ब्रज भयो महरके पुत जव यह बात सुनी ।

× × ×

सुनि पाई सब ब्रजनारि, सहज निगार किए ।

तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिए ।

कसि कंचुकि तिलक लिलार, सोभित हारु हिए

कर कंकन कंचन थार मंगल साज लिए ।

सुभ सबननि तरल तरौन बेनी सिधिल गुही ।

सिर बरधत सुमन सुदेस, मानो मेघ फुही ॥^४

श्रीनन्दभागवत—

गोप्वक्षत्राकर्ष्यं मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।

आत्मानं भूषयांचक्रुर्वंश्चाकल्पान्जनादिभिः ॥

नवकुंकुमकिजत्कमुखपंकजसूतयः ।

बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृष्ठुश्चोष्यदक्षलत्कुचाः ॥

गोप्यः सुमृष्टमशिक्षुण्डलनिष्ककपथ्यः

चित्राम्बराः पथिशिक्षान्व्युतमाल

नन्दालयं सचनयात्रजतीविरेजु—

व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभा

१ श्रीनन्दभागवत, १०. ७. १०-११

२ सुरसागर पृष्ठ ७४०

३ श्रीनन्दभागवत, १०. ११. ७

४ सुरसागर पृष्ठ ६४२

५ श्रीनन्दभागवत १०. १. ६-११

सूरसागर—

खिरकत हरद वही हिय हरकत ।^१

श्रीमद्भागवत—

हरिद्राचूर्णतिलाग्निः सिन्धुनयो वनमुकद्वयः ।^२

पूतना-वध प्रसंग में —

सूरसागर—

पय मंग प्रात ऐचि हरि श्रीली... ।^३

श्रीमद्भागवत—

प्राणैः सर्वं रोषसमन्वितोऽपिबद्ध ।^४

इस प्रकार के श्लोक अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

सूरदास ने दशमस्कन्धीय कृष्ण लीलाओं का एक और भी उपयोग किया है - वह है लीलाओं के संकेत मात्र से अपने इष्टदेव की अनन्त महिमा और अन्त दलान्तता का प्रतिपादन । भागवतोक्त अन्य कथा प्रसंगों का भी ऐसा ही उपयोग उन्होंने किया है । किन्तु उनके लिए कहा जा सकता है कि वे कथार्थ श्लोक पुराणों में भी प्राप्त होती हैं, यथा, बलि की कथा, प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु की कथा, अजासिध की कथा, राजेन्द्र और ब्राह्म की कथा आदि । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत होगा —

हिरण्यकश्यप बळी उदय अरु अस्त सौं हठी चह्यार दिन वगन लागी ।

धीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खम्भ न उन्ट हूँ उन हूँ गी ।

प्रस्यौ गज बाह लै चल्पौ पाताल काज के शान गुण गुण लगी ।

छाँड़ि मुख धाम अरु परइ तजि सखीरो वदन करअन न तजि पारी ।^५

उपर्युक्त पद में संकेतित कथार्थ श्रीमद्भागवत में हैं ।

अब दशमस्कन्धीय कृष्ण लीलाओं के संकेत श्लोक सूने के और पदों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

क—करजी कस्तासिधु की मुख कहूँ न भावै ।

कषट हेत परसैं बकी, बनसैं मनि परे ।

वेद उपनिषद जासु को निरगुणै इगारै ।

सोइ मगुन हूँ नन्द की बीजोः ईश्वरै ।

उपसेन की श्रापदा सुनि सुनि नो लखवै ।

कंस भारि राजा करै, आर्क निर नरै ।

१ सूरसागर पद ३३७

२ श्रीमद्भागवत १०. ५. १२

३ सूरसागर पद ३३६

४ श्रीमद्भागवत १०. २. २०

५ सूरसागर पद ५

जरासंघ बन्दी कटे नृप कुल जस गावं ।

× × ×

सूरदास की बीनती कोज लै पहुँचावै ।^१

ख—कलौ निवान सकल गुन सोनर गुहं खौ कहा पड़ाए हो ।

तिहि उपकार मृतक सुन जावै सो जमपुर-से-त्याम् हो ॥^२

ग—प्रभु तुम दीन के दुसहरन ।

× × ×

दूर देखि सुदामा आवत षाइ परस्यौ चरन ।

जच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हौ, दान-अवढर हरन ।^३

घ—गोप भाइ गोसुत जल त्रासत गोवर्धन कर वार्यौ ।^४

ङ—अथ अरिष्टु केसी काली मधि दावानलहि पियौ ।

कंस बंस बधि जरासंघ हति गुहं सुत आनि दियौ ॥^५

ऊपर के उदाहरणों में श्रीमद्भागवत की दशमस्कन्धीय श्रीकृष्ण लीलाओं में से भूर ने अपने दृष्ट की कृति महिम और भक्त वत्सलता का दिग् दर्शन कि

कृष्णलीला के सभी उपकरणों—वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, गौएँ मन्द, यशोदा आदि का भाषवतोक्त स्वरूप भूर ने प्रकृत किया है। उदाहरणों में यशोदा के स्वरूप को देखिए—

सूरसंगर—

सोभ-भई घर अखण्ड-प्यारे ।

दीपल-कहा घोट लमिहै कहौ, पुनि खेति ही सकारे ।

अभुहि जाइ बाहँ गहि ल्याई, खेल रही लपाटय ।

धूरि झारि तातौ जल ल्याई, तेल परमि अन्हवाइ ।

सरस बसन दन पौखि स्वामि कौ भीतर गई लिलाइ ।

सूर स्वाम कछु करौ बिचारी धुनि राखौ पौढ़ाइ ॥^६

श्रीमद्भागवत—

क्रीडन्तं सौं सुतं वालेरतिवेलं सहाग्रजम् ।

यशोदा जौहवीकृष्णं पुत्रनेहस्तुतस्तनी ।

कृष्णं कृष्णारविन्दास ताड एहि स्तनं पिब ।

अलं विहारैः सुकान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥

१ सूरसंगर पद ४

२ वही पद ७

३ सूरसंगर पद १०२

४ वही पद ११८

५ " १२१

६ " १२४

× × ×
 धूम्रिष्मृदगिर्नापस्त्यं पुत्र मज्जनमावह
 × × ×

त्वं च स्नातः कृताहारी विहरस्य स्वर्गकुसः ।

इत्य मसोवा तमदेपजेसर मत्वाभुत स्नेहनिषङ्गः श्रीरूप ।

हृत्ते गृहीन्वा महाराममच्युत मोक्षो स्मर्याट कृतकामधोदयम् ॥^१

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के लिए कहा गया है कि निम्नलिखित युग्मों के सौन्दर्य का एक देश में ही स्थापित करके उसके कुछ आभास पर्याप्त जा सकता है ।^२ इसी आभासभूत धारणा को लेकर मूर ने कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन किया है । उनका वर्ण, अंग-विन्यास, मुद्राएँ, वेष्टन आदि सब कुछ भागवतोक्त रूप के अनुसार है :

वर्ण क—नीलजलद अभ्रिगम त्वाम तन, निरखि जन्मि दोइ निकट कुलार् ।^३

ख—सूर स्वाम प्रभु इन्द्रनीलमनि, बज्र धरितर उरजतइ मही रो ।^४

अंगविन्यास—वधुक सुमन अरुण पद एकज, अङ्गुल प्रमृष्य निह्व बनि धार ।

× × × ×
 मुक्षम त्रिवृक द्विज अवर नाभिका, मञ्जन कपोलभोजि सुटि भाए ।
 अरुब सुन्दर, वरुणागम पुरत, लोचन मनहू जगल जन भाए ।
 भाल चिन्माल जलिन लटकनि मनि बाह्य दसा के चिकुर मृगार ।
 × × × ×
 अंग अंग प्रति माग-विकर तिलि, अङ्गि अमूह खल्ले सुनु भाए ।
 सूरदास सो क्यों करि बरनै, जो छवि निरख नेनि करि भाए ।^५

बालकृष्ण की अत्यदन्त पतिल का भाववत्त में वर्णन है । सूर ने इनके स्वर्णों पर

उमका उल्लेख किया है ।

श्रीमद्भागवत—

दन्तस्तन प्रपिकनीः सस सुहृ निगेक्ष्य,

मुग्धस्मितालपदसन यधतुः प्रसंगम् ॥^६

सूरसागर —

क—सोभित मुकपोल अवर अलप अलप दसना ।^७

- १ श्रीमद्भागवत १०. २१. ३४-३०
- २ वही १०. ३३. २१
- ३ सूरसागर पद ७२२
- ४ वही पद ६४७
- ५ " " ७२२
- ६ श्रीमद्भागवत १०. ८. २३
- ७ सूरसागर पद ७०८

ख—अल्प दसत, कलबल करि बोलनि ।^१

अश्वानु के चरखारविन्द भक्त-भ्रमर के एकमात्र सेव्य हैं। श्रीमद्भक्तचरखारविन्दों को एकमात्र अकुतोभय धरणीस्यल कहा गया है। सभी वचनों में भक्तचरखारविन्दों का सौन्दर्य और उनकी पावनी शक्ति का वर्णन प्रयोग लेने का आग्रह किया है—

भक्ति मत बन्दनन्दन चरन ।

चरन पंकज अति यनीहर सकल मुख के करन ।

सनक संकर व्यान धारत नियम आगम बरन ।

× × ×

पदपराग प्रताप दुर्लभ, रमा कौ हित करन ।

× × ×

जामु महिमा प्रगटि केवट घोड़ पग सिर धरन ।

कृष्ण पद मकरंद पावन, और नहि सरवरन ।

सूर भक्ति चरखारविदिनि, मिटै जीवन भरन ॥^२

वेषभूषा—

रोहिनि सुत जसुमति सुन की छवि गौर स्याम हरि हलधर गात
नीलाम्बर पीताम्बर ओढ़े, यह सोभा कछु कही न जात

× × ×

सीस मुकुट मकराकृत कुण्डल झलकत विविध कपोलनि भाँति ।

कटि कछली कर लकूट मनोहर, गोचारन चले मन अनुमानि ।

श्रीमद्भागवत की मण्डली के मध्य में वनभोजनरत बालकृष्ण की विश्व गूर ने श्रीमद्भागवत से ही लिया है—

सूरसागर—

वृन्दाविपिन विसद जमुनातट, सुधि ज्योनार बनाई ।

सानि सानि दक्षि भात लियौ कर मुहूद सखनि कर देत ।

मध्य सोषाल मण्डली मोहन छाक बाँटि कै लेत ।

देवलोक देखत सब कौतुक, बाल केलि अनुरागे ।

यावत सुनत सुजस सुख करि मन, सूर दुरित दुख भागे ।^४

श्रीमद्भागवत

विभ्रद्वेगु जठरपटमोः शृङ्गवेत्रे च कले ।

वामे पाशौ मसृक्षकवलं तत्फलान्यमुनीषु ॥

१ सूरसागर पद ७०१

२ वही, पद २००

३ " " १८५३

४ वही, पद २०२४

लिप्यन्त्यध्वे स्वपरिसृष्ट्वो हासपन्नसंभिः त्वैः ।

स्वर्गलोके निवसति कुमुदे वसन्मुन्दातकैलिः ॥^१

सूर ने श्रीकृष्ण को विष्णु के विग्रह रूप में ही चिन्हित किया है—

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।

नाथ सारंगधर कृपा करि मोहि पर सकल प्रपञ्चरत्न रावकृपाकी ।^२

बालकृष्ण के अनाथ सौन्दर्य का अर्चन अत्यन्त समझ कर सूर ने कहा है—

मुन्दरता की पार न पावति कर वैलि कृष्णारी ।

सूर विष्णु की बूँद भई मित्रि मति गति हृदि हृषारी ॥^३

३ श्रीकृष्ण का परब्रह्मपरमेश्वरत्व

सूरदास ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर माना है। ब्रह्म के तिसृंशु शरीर बहुल दोनों रूपों में श्रीकृष्ण ही उनके दृष्ट हैं। अपनी क्लौकिक सामर्थ्य के कारण वह परमेश्वर भी हैं। उनके अद्भुत कार्य उनकी ईश्वरता का बोध कराते हैं। श्रीमद्भागवत में इस विषय का सर्वत्र प्रतिपादन है।^४ सूर की कल्पित पत्तिर्था वही प्रस्तुत की जाती हैं—

क—वेद उपनिषद् आसुको निरमुनाहि बनावं ।

सोइ समुन है नन्द की दौवरी बेंवावें ।^५

ख—नागरी स्वाम सैं कहत बाबी ।

सुनहु गिरिधरनवर सीस सोखण्डधर, जपत सूर नाम नर सहस्रबाबी ।

रुद्रपति, कृष्णपति, लोकपति श्रीकृष्णि वासिष्ठपति, अर्जुनपति अनाम जानी ।

अखिल ब्रह्मांडपति तिहुँ सुवनाधिपति, अनामि परमपति हेर जानी ।^६

परब्रह्म ही अक्षय्यतपन के कारण अक्षय्य भवन दुःखरूप अक्षय्य है। इसी वर केवल प्रेम के बंध होकर अक्षय्य बरस कर अक्षय्य को नन्द देने वाली नैतन्य प्रपन्न है—

क—का न कियो अवहित अचुराई ।

प्रथम कही जो कथन अक्षय्य तिहि वर संकल्प तप भाव ।

सकतबधन बधु करि कर केहरि, दनुक दानी नाना नाना ।^७

निसमत्त अथन हरिकुरा स्वारी ।

प्रीति बस देवकी गर्भ सीन्ही दास, प्रीति की हनु कर देः दीनरी ।

प्रीति की हेतु असुमति पधपान कियो, प्रीति में हनु पवनर कीनरी ।

१ श्रीमद्भागवत १०, ११, १२

२ सूरसागर, पद २२५

३ कही, पद ७०६

४ श्रीमद्भागवत, ७, १६, ७६

५ सूरसागर पद ५

६ कही, पद २६६५

७ कही, पद ६

प्रीति के हेतु वन धेनु चारत कान्ह, प्रीतिके हेतु नंदसुवन नामा ।
प्रीतिके हेतु सूरज प्रभुहि पाइए, प्रीतिके हेतु दोउ स्याम स्यामा ।^१

राम-कृष्ण-अभेद—विष्णु के २४ अवतारों में राम और कृष्ण अवतारों की सम्युक्तता है। सूर ने राम और कृष्ण में ही नहीं विष्णु के सभी अवतारों में श्रीमद्भागवत अनुमा^२र अभेद स्थापित किया है—

को गोपाल कहीं के कहीं के बासी, कासौ है पहिचानि ।

× × ×

पय प्यावन पुतना संहारी, छले जू बलि से दानि ।
मूपनखा तासिका तिपाती, सूर सदा यह बानि ॥^३

४—श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य और अलौकिक प्रेम

गोपी-प्रेम सूर के साहित्य का प्राण है। श्रीमद्भागवत में गोपी-प्रेम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है, सूर ने उसे आदर्श रूप में स्वीकार कर उसके समस्त उपकरणों—गथा वेणु, रास, अमरगीत आदि का सविस्तर वर्णन करते हुए उसे रस कोटि तक पहुँचा दिया है। सूर ने राधाकृष्ण प्रेम का निरूपण अन्य वैष्णव पुराणों के आधार पर किया है, किन्तु प्रेम की प्रगाढ़ता का आदर्श भागवत का गोपी प्रेम ही है। वेणुवट गोपी राधा के नामोल्लेख मात्र से सामान्य इष्ट वस्तु प्रेम के निरूपण में कोई अन्तर नहीं पड़ता। गोपियों के कृष्ण-प्रेम के विविध रूपों के कल्पित उदाहरण देखिए—

क—मुसुमाहात्म्यानुक्ति—

हम तौ दुहँ भाँति फल पायो ।

जौ गोपाल मिलत तौ नीकौ, मतर जमन जम छायो ।

कहँ हम या गोकुल की गोपी, बरन हीन घटि जाति ।

कहँ वै श्री कमला के बल्लभ, मिलि वैठी इक पाँति ।

निगमज्ञान मुनि ध्यान अगोचर, ते भए घोष निवासी ।

सा ऊपर अब कहीं देखि वौ मुक्ति कौन की दासी ॥

ख—रूपासक्ति—

सूर ने गोपियों की कृष्ण के प्रति रूपासक्ति का बहुत ही विशद वर्णन किया है। उसके वैविध्य और भावमयीय का अनुमान करना कठिन है। कृष्णलीला में जहाँ भी गोपियों का भाग है वहाँ सर्वत्र उनकी रूपासक्ति के दर्शन होते हैं—

अलिहौं कँसैं कहीं हरि के रूप रसहि ।

अपने तन में भेद बहुत विधि, रसना जानै न नैन दसहि ।

बिन देखे ते भाहि बचन बिनु, जिनाहि बचन दरसन न .तिसहि ।

१ सूरसंग्रह बंद, २६३३

२ श्रीमद्भागवत १०. ४७. १७

३ सूरसंग्रह, बंद ४४१७

बिनु बानो ये उभौंमि प्रेम जल, सुनिरि सुनिरि का रूप अछहि ।
 बार बार पछिनात थहै कहि, कहा करी जो बिधि न अछहि ।
 सूर सकल अंगनि की यह मनि, सबी समुझावै छुटव पशुहि ॥^१

तन्मयतासक्ति—

रहति रनिदिन हरि हरि हरि रतः ।
 निनबनि इकटक मय अक्षर को, अकरी मूम विद्युमें भावर मर ।
 भरि भरि नैन नीर डारति हैं, सज्जन कदवि अति अंशुकि के रत ।
 मनहु विरह की जिञ्जूरना लमि, नियाँ नेम किब मीन बहुम भर ।
 जैमै जव के अग्र ओम लज, प्रान रद्व तेमैहि अजबिहि रत ।
 सूरदाम प्रभु मिलहु कृप करि, जे जिम कहै नेर जाए निकर ॥^२

परमविरहासक्ति—

गोविधों की परम विरहासक्ति का जमा चित्रण सूर ने किया है, वैसा किन्नर-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । श्रीमद्भागवत का गोपी-विरह सूर का प्रेरणक स्रोत है । गोपियों द्वारा लोक लज्जादि का त्याग, अतीत संसार की तुल्य स्मृति और विरहाग्नि की तीव्रता का श्रीमद्भागवत में उल्लेख है ।^३ सूर के कवचक पदों में ये भाव व्यक्त हुए हैं—

क—चलन की कहियत है हरि आज ।

X X .

कोउ इक काम कपट करि पठ्यौ, कहु गनः है ॥
 सु ती हमारौ लिए जान है, सगल ॥
 सो यह सूर नाहि मुनि मजती, सहि ॥
 धीरज जात, चली अबहीं मिनि, दुनि ॥
 छाँडौ जयजीवन की आसा, अरु ॥
 विनती कयल नयन ती करिबै, सूर नाहि ॥

ख चलत हरि बिक जु रहत ये प्रान ।

कहै वह मुज अब सहौ दुसह दुख, रन ॥
 कहै वह कळ स्याम सुन्दर शुक, नरनि ॥
 अँचवन नैन अकोर मुखा दिखु, ॥

X X

सूर सुनिधि हमतै है विछुरल, काँज ॥

१ सूरसागर पद ४२१२

२ वही, पद ४७३६

३ श्रीमद्भागवत १०. ३३. १६-३१

४ सूरसागर पद ३६०१

५ वही, पद ३६०२

ग—अनल तँ बिरह भगिनि भति ताती ।

× × ×

न्याइहि नगरि नारि बिरह बस, जरति बिया ज्यों वाती ।
जे जरि मरीं प्रगट पावक परि, ते त्रिय भविक सुहाती ।
बरति नीर नयननि भरि भरि सब, ब्याकुलता नदमातीं ।
सूर बिया सोई वं जानै, स्याम सुभग रंग राती ॥^१

वेणुमाधुरी और उसका प्रभाव —

सूर ने श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी और उसके लोकोत्तर प्रभाव का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है । गोपियों और मुरली का सापत्न्य भाव भी दिखाया है । श्रीमद्भागवत के वेणु-गीत और युगल-गीत विशेषकर सूर की प्रेरणा के स्रोत हैं—

क—जब हरि मुरली अवर धरत ।

धिर चर, चर धिर, पवन यकित्त रहै, जमुना जल न बहत ।
खग मोहैं, मृग झूथ जुलाहीं, निरखि मदन छवि छरत ।
पसु मोहैं सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ।
मुक सनकादि सकल मुनि मोहैं ध्यान न तनक गहत ।
सूरजदास भाग है तिनके जे या सुखहि लहत ॥^२

ख—मुरली हम कहैं सौति भई ।

नैकु न होति अवर तँ न्यारी, जैसे तृषा डई ।

× × ×

सूर बचन याके टीना से सुनत मनोज जई ॥^३

ग—मुरली हम पर रोष भरी ।

अस हमारी आपुन अंचवत, नैकुहैं नहीं डरी ।

× × ×

ऐसी ढीठि टरी न लहाँ तँ जउ हम रिसनि भरी ।

वहू तो कियौ अकाज हमारी अब हमें जानि परी ।^४

रासलीला—सूर ने श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का विस्तृत और सांगोपांग वर्णन किया है । किन्तु उनके रास वर्णन में भागवत के रास से कुछ वैशिष्ट्य भी है जो उन पर अन्य छन्दों के प्रभाव का द्योतक है । सूर ने रास को राधाकृष्ण के मान्धर्व विवाह के रूप में भी चित्रित किया है ।^५ उन्होंने राधाकृष्ण का विवाह कराया है और रासमण्डल के

१ सूरभास्कर पद ३२८२

२ वही १२३८

३ वही २५२८

४ वही २५६०

५ मुरली व्यास धरवत रास ।

३ मान्धर्व विवाह चिन दै सुनौ विनिष जिलास । आदि, धरसागर, पद २६=६

अनुसार हैं

सूरसागर

सरद तिसि दसि हरि हरद वासी ।

विपिन वृन्दा रमन, सुभग पूजे सुमन, रास कबि रसास के मन्दि आसी ॥^१

श्रीमद्भागवत

भगवानपि ना राजी: सरयोःकूलमणिकरा: ।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित: ॥^२

भ्रमरगीत—समस्त हिन्दी-भ्रमर-गीत-साहित्य का जेठ श्रीमद्भागवत ही है । भागवत के भ्रमरगीत में जो उपासक, व्यंग्य और अनन्य-प्रेम का तत्व है, वह सूर आदि सभी कृष्ण भक्त कवियों का आधार है, अपनी सहज प्रतिभा और मनोरम कवि कल्पना से सूर आदि कवियों ने उसे और प्रभावोत्पादक बना दिया है । भागवत की अधिक कल्पना शैली से प्रभावित सूर के भ्रमरगीत का एक पद देखिए—

सूरसागर

मधुकर काके मीठ भए ।

वीस चारि करि प्रीति समाई, रस कै अमृत भए ।

उरक- विरल आये अरु अरु अरु अरु ।

चउ मन दित्वाकल गरी प्रीतिम करत भए ।

मद उरक केलि रमनाए, मन हरि करि तु भए ।

मुरदान अरु इति अरु इति, दूत के कीर भए ।^३

श्रीमद्भागवत :-

अन्योऽर्धवृत्तादीर्षी तद्वदद्विद्वानमम ।

वृन्दा: कपोतु कला गङ्गापुष्पाःस्यैव वदन्ते ॥^४

सूर ने श्रीमद्भागवत की एक मूल परिभाषा की है, जो है—
विस्तार कर दिया है यह काला कवि ने १९६० ई. के श्रीमद्भागवत के परिष्कार में दीक्षित होने से पूर्व ही के एक परिष्कार में श्रीमद्भागवत के श्रीमद्भागवत भक्ति मार्ग के अधिकार : प्रति-प्रकार में दीक्षित हो जाने पर ही उनकी भागवत भक्ति भावना से जोई भ्रमर गीत नाम की भागवतिका का नाम देकर उन्हें श्रीमद्भागवत कमी नहीं आई । श्रीमद्भागवत के लिए नाना प्रकार के परिष्कारों का जोर दिया गया

- १ सूरसागर, ३६, १९०३
- २ श्रीमद्भागवत १०, २६, १
- ३ सूरसागर १२, १११२
- ४ श्रीमद्भागवत, १०, ४३, १

कृष्ण भक्त बन्धु हैं।

(३) परमानन्ददास (मवत् १५५०-१८४१) पुष्टि सम्प्रदाय में परमानन्ददास की रचनाएँ एवं स्वयं उनके सागर की उपाधि वाक्य हैं।^१ सागर वाक्य श्रीमद्भागवत काव्य है जमा कि श्री द्वा-कादास पराख न कर्ता एव परलोक-कृत पुरुषोत्तमसहस्र-के एक श्लोक के आधार पर बताया है।^२ कर्ता से आया है, "जो अनुक्रमणिका में श्रीभागवत कपी समुद्र श्री आचार्य जी महाप्रभु ने परमानन्ददास के हृदय में धरची।^३ उन उद्देश से जान होता है कि परमानन्ददास ने भागवतीय कृष्ण लीला का ही गान किया। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार परमानन्ददास ने भागवतोक्त प्रेमभावित को कृष्ण सागर अवस्थाओं—वाक्य, कुमार, पौण्ड्र और किशोर लीलाओं के माध्यम से प्रतिपादित किया है। बाल लीला के गान से 'स्नेह' कुमार लीला के गान से 'आसक्ति', पौण्ड्र लीला के गान से 'व्यसन' और किशोर लीला के गान से 'मन्मथता' प्राप्त होती है। परमानन्ददास ने मुख्यतया भागवतोक्त विशिष्ट तत्त्वों में कृष्ण-लीला और गोपी-प्रेम को गान किया।

लीलागान -

(१) बाललीला—(जन्म से ढाई वर्ष की अवस्था तक) परमानन्ददास ने इसके अन्तर्गत कृष्ण जन्म, जन्ममहोत्सव, नामकरण, उलूखल बन्धन, भृत्तिकाभक्षण, माखनचोरी गानों में भागवतीय कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है। सर्वत्र कृष्ण के परब्रह्माव की ओर ध्यान दिया है—

शाल्विनोद योगल के देखत मोहि भावै ।
प्रेम पुत्रक ध्यानैदभरी जसुमति गुन भावै ।
बल समेत घन सामरी अँगन में धावै ।
बदन चूमि गोद लियो सुत जानि खिलवावै ।
सिद्ध विरंचि मुनिदेवता जाको पार न पावै ।
तो परमानन्द खाल को हँसि भलो मनावै ।^४

गोपियों के कृष्ण लीलादान सम्बन्धी निम्नोक्त पद का आधार श्रीमद्भागवत का एक श्लोक है, जो पद के साथ उद्धृत किया जा रहा है—

हरिलीला गावत गोपीजन आनंद में निसिदिन जाई ।
बालचरित्र विचित्र मनोहर कनक नैन ब्रजजन सुखदाई ।

१. सागर (सं० १३३७ की कर्ता और भावप्रकाश) सम्पा० कंठमणि शास्त्री पृ० १४३

२. परमानन्द सागर, भूमिका में श्री परीक्ष का लेख, पृ० २

३. भावक यह है— इषान्तिशिवचिर्षे न श्रीभागवतसामराट् ।

समुद्रधृतानि नामानि चित्तानिखिनिभानि हि ॥

४. सागर (सम्पा० कंठमणि शास्त्री) पृ० १४३

५. परमानन्द सागर, पृ० २०

दोहन बण्डन खण्डन लेपन, मण्डन छह सुत्र पति संकाः ।
चारि याम अककास नहीं पत्र सुमिरत कृपण देव देवा ॥
भवन-भवन प्रति दीप विराजत, कर कंकन मूपुर बज्रै ।
परमानन्द धोय कौतूहल तिरछि पति सुस्वति बाजै ॥^१

श्रीमद्भागवत—

वा दोहनेऽवहृत्ने मयतोऽनेपप्रखेलेनाभंखडिोअणुमम्वरुदी ।
वापति चैनमनुरक्तधियोऽभुक्त्यो अया इनामिब उरकनचिपवाताः ॥^२

(२) कुमारलीला—(दोई वर्ष से लेकर पाँच वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने गोचारण ; मुरलीवादन आदि का वर्णन किया है तथा श्रीकृष्ण की वैष्णव भावना आदि का भी चित्रण किया है ।^३

(३) पौण्ड्र लीला—(पाँच वर्ष से लेकर नौ वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने बीरहरण, गोवर्धन धारण, इन्द्र मान मंत्र आदि का वर्णन किया है ।^४

(४) कियोर लीला—(नौ वर्ष की अवस्था से ग्यारह वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने वेणुवादन और रासलीला का वर्णन किया है ; यह रास नारायण के अनुकूल शरद्वाम ही है—

रास नखल में बन्यो मखी बलि में मति उपज्यै लो ।

X X X

भरद विमल तिसि चन्द विराजत, रीत अमल ॥ १ ॥

परमानन्द स्वामी कौतूहल, देखन नर नन मी हो ।^५

परमानन्ददास जी ने आसक्त की गोष्ठियों में वेमरराजल की दो रास आदर्श माना है ।^६ भक्त कवि ने भयवन्नाम माहात्म्य, इन्द्रमान मंत्र का भी वर्णन किया है ।

४—कुष्माण्डास—(संवत् १४४६-१६३६) परमानन्ददास जी की जीवनी में मधुरभक्ति को विशेष रूप से ग्रहण कर राधाकृष्ण की मधुर प्रेम विषय का वर्णन किया है ।^७ उनके काव्य में मधुर भक्तिरस का आकाश फैला हुआ है ।^८ उनके काव्य में अनेक विविध लीलाओं, श्रीकृष्ण की भौतिक रूप माधुरी, श्रीकृष्ण की भक्तिकल्पना आदि का वर्णन पाया जाता है ।

१ परमानन्दसागर, पृष्ठ २२

२ श्रीमद्भागवत १०. ४४. १४

३ परमानन्दसागर, पृष्ठ ११६, १२०, १२२ आदि

४ वही, पृष्ठ २७२ से २७६

५ वही, पृष्ठ २१६

६ परमानन्ददास गोष्ठिक की प्रेम कथा सुकृत नाम की है

७ डॉ० दीनदत्त प्रसाद अग्रवाल और बलदेवदास, पृष्ठ २०६

(१) लीलागान —

कृष्ण जन्मोत्सव —

नाँचत गोप कुमकुमा छिरकत देत अखिल नग पाँति ।

दरघत कूसुम निकर सुरनर मुनि व्रज जुवती मुसकात ॥^१

(तुलनीय श्रीमद्भागवत, १० १)

गोवर्धनधारण और इन्द्रमानभंग—

जै जै लाल गोवर्धन धारी, इन्द्र मान भंग कीनों ।

बामबाहु राख्यो गिरिनायक, दासन कौ सुख दीनों ।

सात दिवस सुरपति पचि हारयो गोसुत सींग न भीनों ।

कृष्णदास स्वामी मोहन के पाँय परधौ भति हीनों ॥^२

रासलीला—

रास रस गोविन्द करत बिहार ।

सूर सुता के पुलिन रम्य मेहे फूल कुन्द मँदार ।

× × ×

मलय पौम बहै सरद-पूर्णिमा-चन्द्र मधुप भंकार ।

× × ×

ब्रजभामिनि संग प्रमुदित नाँचत तन चर्चित घनसार ॥^३

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि कृष्णदास ने भागवत के सरद रास का ही वर्णन किया है ।

(२) श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी—

क—आबत बनिहै कान्ह गोप बालक संग, नेंचुकी खुर रेनु छुरित, अलकावली ।

भौहें मनमथ चार बक्र लोचन बान, सीस सोमित मत्त मयूर चन्द्रावली ॥

× × × ×

अन्न कुंडल, भगवतिलक, बेसरिनाक, कंठ कौस्तुभ मनि सुभग त्रिवलावली ।

× × × ×

करतर मुरलिका मोहित अखिल विश्व, गोपिका जनमसि प्रसित प्रेमावली ।

× × × ×

पीत कौसेय परिधान सुन्दर अंग, चरन नूपुर वाद्य गीत सन्दावली ॥^४

ख—सो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ ।

ललित त्रिभंजी अंगन पर चलि, भयो तहाँई ठटक्यौ ।

सबल स्याम घन चरन लीन हवै, फिर चित अगत न भटक्यौ ॥^५

१ अष्टाध्याय परिचय. कृष्णदास काव्य संग्रह, पृ० २२६

२ वही, पृ० २२६

३ वही, पृ० २२१

४ वही, पृ० २२३

५ वही, पृ० २२४

(३) श्रीकृष्ण का परमस्वरूप—

ध्यात कान्ह विमल बस लेरी ।
 गावत धिय सधरद मुनि नारद, प्राण जीवन बन केरी ।
 गावत वेद बंदिजन निरदिन, भव मुनि पूष बनैरी ।
 गावत सेव महेंन विविध विधि, रस रसिकहि सुख केरी ॥^१

(४) गोपी प्रेम—

रूपासक्ति—

क—गिरिवर देखैई सुख होय ।

नैनवन्त कौ यहै परमफल बोझी विधि अई होय ।

महामत्त नील अम्बुज कौ, रूप किषी ई निबोय ।

कृष्णदास नाथ नवरंदाहि, मिलै विरह दुख होय ॥^२

सुखनीय—'असम्भवां फलमिदं न परं किदासः' इत्यादि श्रीमद् १०. २१

कृष्णदास ने भी कृष्णदास की शक्ति योगबल परबत के लिए प्रयुक्त भागवत के 'हरिदासवर्य' शब्द का प्रयोग किया है—

बन्यो धरुभुत भेद गावत, मुरलिका उल्लास ।

कृष्णदास नमित चरन 'हरिदासवर्य' निकाल ॥^३

(५) गोविन्दस्वामी—(संभव १५६२-१६४२) पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने

के उपरान्त गोविन्द स्वामी ने सुवाई विठ्ठलनाथ जी के आश्रमों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त किया था। इनकी भक्ति सत्समाज की थी।^४ इनके रचित १७३ प्रकीर्ण पदों का अष्टावक्रि सबसे बृहत्संग्रह कांकरोली से प्रकाशित हो चुका है। इन पदों में भावबलीय कृष्ण-नीला, कृष्ण की रूप माधुरी, कृष्ण के परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम के अनुकूलता वर्णन के अनिर्दिष्ट सामान्य भक्ति तर्कों, तथा शक्ति के क्षेत्रत्व, कृष्ण महिमा, लीला का भी वर्णन है। पुष्टि सम्प्रदाय के जो सर्वोत्तम श्रीमद्भागवत वर प्राप्त हैं उनका वर्णन भी गोविन्द स्वामी ने किया है।^५

लीलागीत—कृष्णलीला और उनके उपकरणों के लीलागीतों में भावबलीय, जोय ललाओं के साथ विविध श्रुतियों, शोषारण, राम भोग्य, वासुदेव-पुत्र, वेणुबादन गोपियों की व्रतवर्षा, रामकीर्ण, शोषार्ण, वासुदेव-पुत्र, वेणुबादन और अक्षयभातृत्व का वर्णन किया है।^६ विस्तार बस से इस सब विषयों का उपासना न होकर वहाँ गोविन्द स्वामी के केवल उन पदों के कुछ उदाहरण दे रहे हैं जो भावबलीय के श्लोकों के अधिकतम अनुवाद हैं—

१ अष्टावक्र परिचय, कृष्णदास काव्य संग्रह पृ० २४०
 २ वही, पृ० २३२
 ३ वही, पृ० २४०
 ४ डॉ० दीनदयालु मुनि: अष्टावक्र और बालम सम्प्रदाय, पृ० ६४ पृ० २६।
 ५ गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विस्तारण, वाणी और वद संग्रह) पृ० २०-२१
 ६ वही, भूमिका

रासलीला के गोपीगीत प्रसंग में—

अहो प्रिय कौनैकै घरत मृदुल चरन धरनि ।

गिरि की काँकरी अति कठिन तून अंकुर रसनाधर जियहि सुधि करिकरि छतियाँ
सरसि सुजात गरभ की श्रिय मुसत हमारे कठिन उर सहसा ही न धरि सकै डर

श्रीमद्भागवत—

क - यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु. भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु
तेनाटवीमटसि तद्व्ययते न किस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां न.
स्त - शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा हृषा ।^३

वेणुमाधुरी के सुनलगीत प्रसंग में—

वेनु बाजत री मोहन कल ।

बाम कपोल बाम भ्रुज पर, धरि बलगतभ्रुज रस चपल द्रवंचल ।^४

सिन्दुराक्ष अक्षर सुधारस पूरत रन्ध्र मृदुल अंगुली दल ।^५

मोहत व्योम विमान बनिता खसित नीवी सुध्या न अंचल ।^६

श्रीमद्भागवत—

वामबाहुकृतवामकपोलो दलितभ्रुरधरापितवेणुम् ।

कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।

व्योमयान वनिताः सहसिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गं सुसमपित चित्ताः कसमलं यदुरपस्मृतनीव्यः ।^७

वेणुमाधुरी के प्रसंग में—

धनि धनि वृन्दारण्य कुरंगिनि ।

श्रीमुख कम्बल पीवति सखी सादर कृष्णसार पति संगिनि ।

चरन कम्बल कुंकुम रूषित तन कुच भवलेप करति—

शब्दति आधि मनसिज पुलिदिनि ।

योविन्द प्रभु को जू अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरंगिनि ।^८

श्रीमद्भागवत—

धन्याःस्य मूढमतयोऽपि हरिष्य एतन्ना नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेष्म् ।

अकम्बलं वेणुरसितं सहस्ररूपसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रसूयाक्लोकैः ॥

१ योविन्दस्वामी, पद संभव पद २५७

२ श्रीमद्भागवत १०, ३१, १६

३ वही, १०, ३१, २

४ योविन्दस्वामी, पद ४२०

५ वही, पद ४२०

६ वही, पद ४२१

७ श्रीमद्भागवत १०, ३१, २, ३

८ योविन्दस्वामी, पद ४२०

९ श्रीमद्भागवत १०, २१, ११

पुष्पाः पुलिन्ध उखाययवाञ्जरास्यीकुंकुमेन विपिनस्त्रवमणितेन ।
तद्दानस्वरजस्तृणकणितेन निम्पुन्ध आनन्दकुनेषु बहुलनाशिवम् ॥१॥

(६) छीतस्वामी — (संवत् १५७३-१५४२)

भागवत-साहाय्य एवं प्राज्ञास्य—श्री छीतस्वामी ने श्रीचन्द्रनाथ एवं श्रीकृष्ण की लीला के उपरान्त यमुना, गोवंशत, पोकुल आदि का साहाय्य गाया है—

जब तबि जमुना गार्ह लोचनं गोकुल जाई सुगार्ह ।

जब तबि श्री भागवत कथास्य जब तबि कर्णिकुल गाई ॥२॥

अपने गुरु गोमार्ह विद्वजनाथ जी की स्तुति (दशार्ह) में उनके आग्रह-प्रमाण की बर्ना करते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत को वेदकाशी कहा है—

गो बानी ब्रू वेद की कहियत श्रीभागवत भजे कबगाई ॥३॥

छीतस्वामी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि गोमार्ह श्री विद्वजनाथ जी ने मुझे अन्य मार्ग छोड़कर भक्ति मार्ग में रुचि दिखाई और श्रीमद्भागवत के अनुसार सबका को सर्वस्वापराण करने की शिक्षा दी—

अग्रथ मार्ग तजि भक्ति मार्ग भवि श्री विरिहर अहरे विगाई ।

तन मन प्राप्त समरेन कीने श्रीभागवत विधि नरे विगाई ॥४॥

श्री छीतस्वामी ने भागवतके अमान्य भक्तितत्त्वों में से विशेष कर कृतमहिमा की ब्रह्मण किया है और अपने गुरु श्री विद्वजनाथ जी को ईश्वर कनक ही माना है ॥५॥ भागवतके विशिष्ट तत्वों में उन्होंने विविध रूपके लीलाओं, श्रीकृष्ण की कल्पाष्टुती, श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम का वरान्त विद्या है । इनके सुगम लीला के पद मिलकृष्ण अष्टावल्कीय सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों के समान हैं ॥६॥

लीलागाथन—छीतस्वामी ने कृष्ण की लीलासु, अम भोजन, अमनाकाशीतलीला, अम-विहार, वेणुकादत और राजसीला का वर्णन किया है । इनका रस वर्णन श्री श्रीमद्भागवत के अनुसार सरस्वत का वर्णन है—

क—सुकुञ्जि बहुल मधुप कुल कुंठे सुकुञ्जि कमल सुशाय सुजे ।

× × × ×

प्राड् बुदभिरूप गममडन शैलत त्याग परगिजा सुजे ॥७॥

ख—छीतस्वामी विरिहरत, श्री निरु... ॥८॥

- १ श्रीमद्भागवत, १०, २१, १३
- २ छीतरक्षसो, जीवतो और बदनेप्रह पद ४२
- ३ वही, पद ३७
- ४ वही, पद १००
- ५ वही, पद १०६-११०
- ६ वही, पद १२६
- ७ वही, पद ३
- ८ वही, पद ११७

गोचारण से ब्रज में आगमन—

आवे भाई नन्दनैदन सुख वैनु ।

सध्या समै गोप बालक संग आगे राजत वैनु ।

गोरज मण्डित अलक मनोहर, मधुर बजावत वैनु ।

इहि विधि घोष माँझ हरि आवत सबको मन हरि लैनु ।^१

(तुलनीय, श्रीमद्भागवत, १०. २१. ७)

छीतस्वामी ने कृष्णलीला के उपकरणों, गीश्यों, वृन्दावन, यमुना, और गोवर्धन का मन्त्र तन्म्य भी गाया है ।^२

गोपी-प्रेम—छीतस्वामी ने श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति आदि का वर्णन किया है । श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी का प्रभाव भी उनका प्रिय वर्णविषय है—

क—मेरे नैननि इहै बानि परी ।

गिरिधरलाल मुखारविन्द ज्वि छिनु छिनु पीवत खरी ।

× × ×

हरि नख उरहि विराजत मनिगत जटित कंठ कंठसिरी ।

छीतस्वामी गोवर्धनघर पर वारी तन मन री ।^३

ख—गिरिधरलाल के रंग रांची ।

तन सुधि भूलि गई मोकों अच, कहति हों तोसों सांची ।

× × ×

मन हरि लियो नन्द के नन्दन चितवनि माँझ बिकाने ।

जादिन तैं मेरी हृष्टि परे सखि ! तब तैं रह्यौ न जावै ।

ऐसो है कोठ हिलू हमारी छीतस्वामी सों मिलारवै ।^४

घ—ऐसी को नार जो देखत ब्रज तैं न टरै मेरे जीवन मूली ।^५

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०. २६. ४०)

च—मुरली सुनत गई सुधि मेरी ।

शुद्ध कारण सब भूलि गयी मोहि मपति करति हौं तेरी ।

इक टक ज्ञानि भुनति सबननि पुट जैसे चित्र चितेरी ।

छीतस्वामी गिरिधर मन करख्यौ इत उन चलै न फेरी ॥

(७) चतुर्भुजदास (संवत् १५८७—१६४२)—चतुर्भुजदास ने अपने स्फुट पदों में कृष्ण के जन्म से गोपी विरह तक की ब्रज लीलाओं का वर्णन किया है ।^६ इनकी रचना में

१ छीतस्वामी ज्ञानि और पदसंग्रह, पद १२०

२ कही, पद १६१—१६६, १२३, ६५

३ कही, पद ६७

४ कही, पद १००

५ कही, पद १२१

६ कृष्णदास परिचय, पृ० २७५

सर्ववस्तुत्व माना है।^१ कृष्णलीला में विजयपुर इन्होंने बालकीर्ति भास्करकीर्ति एवंकीर्ति
 तीचाराण और रासकीर्ति का वस्तुन किया है। श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी वेणुकाधुरी और
 गोपीप्रम भा इनक प्रिय विषय है।^३

८ श्रीलागान—भास्करकीर्ति -

घर घर डोलत भास्कर कान्त ।
 खाल बाल सब कक्षा सब तिर्ये सुने भजन कौल कान्त ।
 जब स्वातिन जल भरि घर छाई नहिहि भजे भुक्तकान्त ।
 'चतुर्भुज' प्रभु गिरिवरननाम ली भास्तिन कल कान्त ।^४

(इष्टव्य श्रीमद्भागवत १०. ८)

वनमोजन—

मुन्दगसिला खेल की लीर ।
 मदनसुपाल जहाँ मधिनारयक, वहुँ विमि मला कण्ठकी लीर ।
 बाँदत छक गोवर्धन ऊपर, बहुविधि कानन बैठे लीर ।
 ह्रींमहेशि भोजन करत परस्पर, कालिकाशि ली करोपत लीर ।
 कबहुँक वीनि गिरि के मिसर पर खंल नाम धुसरी लीर ।
 'चतुर्भुज' प्रभु कीनारम रोमे श्रीगिरिवरननाम रतिक सिरमीर ।^५

(इष्टव्य श्रीमद्भागवत १०. १३. ११)

रासलीला -

१. प्यारी भुज शीखा येति, कृत्यव योग्य मुजान ।
 मुदिता परस्पर लेत गति ये सुनति, हपरसि गये गिरिवरन युननि ।
 सरस भुवली कुनि सौं दिखे कल मुर रासरय भीने बाबे और लाल गद न ।
 'चतुर्भुज' प्रभु स्फामभयान की कटनि देखि मोहे खप कृप कृप कसित भजेन विपान ।
 (इष्टव्य श्रीमद्भागवत १०. १३. १२)

२—रूपमाधुरी -

प्रावुकी सिंगर सुभय सावरे गोपाल की कइत न छाई देके हुर गति रास ।

मकर कृष्णल तिसकमान कस्तुरी प्रति रसास, कितवलि कौकिल विमलस
 कंठ श्री वनमाल, फेटा कटि अति जतास छवि निरखल विभुवनलिक
 'चतुर्भुज' प्रभु गिरिवरननाम लखानस मुन्दर मुधर, ऐकी को कइमोपिल की रास ली गद न ।^६

- १ डॉ० दीनदयाल शुभः अष्टाश्राप और वस्तुनसम्प्रदाय प्र० लखन शृं १९३
- २ वही. पृ० १०१, १०२
- ३ अष्टाश्राप परिचयः (चतुर्भुजनाम काव्य संग्रह) पृ० २२६-२२६
- ४ वही १६
- ५ वही, पद २२
- ६ वही, पद १६
- ७ वही, पद ३२

३—वेणुमाधुरी—

वेणु घरघो कर भोविन्द युनिधान ।

जात हुनी वन काज सखिन संग ठगी धुनि सुति कान ।

मोहन मोहे सकल खग मृग पसु, बहुविधि ससक सुर बंधान ।

'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिघर तन मन चोरि लियो करि मधुर गान ॥^१

४—गोपीप्रेम—रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविग्रहासक्ति—

क—गोपाल कौ मुखारविन्द देख्यो आज माई ;

तन मन त्रै ताप तिमिर निरखत ही नभाई ।

नरस नरोज मुधा नननि भरि पाई ।

सुख समुद्र सोभा मोह्य कही हू न जाई ।

धर्म कर्म लोक लाज सुन पति तजि घाई ।

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिघर में जन्चे री माई ॥^२

ख—अब हौं कहा कर्गे री माई ।

जब तौ हृष्टि परघो नंदनदन, पल भर रह्यौ न जाई ।

×

×

×

निनिबासर मोहि कल न परत है, धर आगिन न सुहाई ।

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिघरन छत्रीले, हंसि मन लियो है चुराई ॥^३

५—नन्ददास (संवत् १५६०—१६४०) अष्टछाप के कवियों में भक्ति भाव के

धर्मभीर्य, सर्वहितदृष्टि, रचना-विस्तार और काव्यत्व की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के बाद नन्ददास का ही नाम आता है ।^४ डॉ० दीनदयालु गुप्त जी ने नन्ददास के स्फुट पदों और उनके अतिरिक्त जिन १३ ग्रंथों को प्रामाणिक माना है, वे सभी 'कृष्णभक्ति ग्रन्थवाङ्मयचरित्र' से लगाव रखते हैं ।^५ डॉ० गुप्त के मतानुसार नन्ददास की प्रामाणिक रचनाएँ क्रमक्रमानुसार ये हैं—(१) रस मंजरी (२) अनेकार्थ मंजरी, (३) मान मंजरी, (४) दशमस्कन्ध भाषा, (५) क्याम सगाई, (६) गोवर्धन लीला, (७) सुदामा चरित्र, (८) किरह मंजरी (९) रूप मंजरी, (१०) रुक्मिणी मंगल, (११) रास पंचाध्यायी, (१२) चैत्ररीति और (१३) सिद्धान्त पंचाध्यायी ।^६ इनमें से 'दशमस्कन्ध भाषा' तो प्रत्यक्ष ही श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के कुछ अंश का भाषानुवाद है, 'रास-पंचाध्यायी', 'गोवर्धन-लीला', 'चैत्ररीति', 'सुदामा चरित्र' और रुक्मिणी मंगल श्रीमद्भागवत की कृष्णलीला का वर्णन करते हैं । उनके 'रसमंजरी', 'रूप मंजरी', सिद्धान्त पंचाध्यायी आदि ग्रंथ भी 'मधुर-

१ अष्टछाप परिचय: (चतुर्भुजदास काव्य संग्रह) पृ० ६१

२ वही, पद ४२

३ वही, पद ५१

४ डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभमन्ददास, भा० २, पृ० ८६५

५ वही, भाग १ पृ० ३७४

६ वही, भाग १ पृ० ३७५

शक्ति का ही विवेचन करते हैं।^१ कहना न होना कि इस शक्ति का प्रतिपादन भी श्रीमद्-भागवत में हुआ है। अतः हम निर्विवाद रूप में कह सकते हैं कि कृष्णशक्ति के प्रतिपादन में नन्ददास का प्रकाश उाजीव्य श्रीमद्भागवत ही है।

श्रीमद्भागवत का साहाय्य-कथन—नन्ददास ने विभिन्नविध पद्यों में श्रीमद्भागवत का साहाय्य पाया है —

जब दिनभरि श्रीकृष्ण हृगति लीं हरि भव दुखि ।
पसरि परबो अधिपार कफल ससार भूमति धुरि ।
तिमिर भक्ति सब लोक-प्रोक लखि दुखित रसाकर ।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत क्रियाकर ॥^२

श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त प्रायः सभी सामान्य और विशिष्ट तत्त्वों के उदाहरण हमें नन्ददास की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। उन्होंने इन तत्त्वों का शैक्षणिकता के साथ सूक्ष्म प्रतिपादन भी किया है। अहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

सामान्य तत्त्व

१—शक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व—

ज्योंही हिय हरि चरित्र अमृत-खिन्कु लों गति मानी ।
नन्ददास ताहि कृं मुक्ती लोक को लीं पानी ॥^३

२—गुरु महिमा—

क—जयति सकल नीरथ कलिन, नाम सुमिरन मात्र ॥^४
ख—अनि प्रताप महिमा सनात अस लोक अण्डरन ॥^५

विशिष्ट तत्त्व

१—स्त्रीहासन—

श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं में नन्ददास ने कृष्ण-जन्म, अगम-महोत्सव, बालकीटा, वनयोग्यन, मोदवर्धन धारण, रासलीला आदि का वर्णन किया है और यमुना, ब्रजभूमि आदि का साहाय्य पाया है।^६

रासलीला—

कोउ मुरली बँस रानी रँगिली कसहि कदापति ।
कोउ मुरली को खैंकि अरुनीं उरुनीं रागनी ।
ताहि लौवरो कृष्ण रीति-होय केन सुनी ॥
हुम्बन करि मुख सदन ॥^७

(नन्ददास का उदाहरण भागवत, १२, १३, १४, १५)

१ डॉ० दीनदयाल गुप्त, अष्टावक्र और बलराम-भाष्य, भा. १, पृ. १३३
२ नन्ददास संभावली (सम्पा० श्री अजयप्रसाद) भा. १, पृ. १३३
३ नन्ददास संभावली पृ० १३३
४ वही, पृ० १३४
५ वही, पृ० १३५
६ वही, (पदावली) पृ० १२२-१३५
७ वही, रासपर्यवसानवी, पृ० २२

यमुना महिमा —

भक्त पै कृपा करी श्री यमुना जी ऐसी ।

झाँड़ि निज धाम विनाम भूतल कियो प्रगट लीला दिखाइ हो तै ।
घरम परमारब करत है सबन कोँ देति अद्भुत रूप आप जै
'नन्ददाम' जो जन हठ करि चरन गहै, एकू रसना कहा कहै बिसे

१. महिमा—

जो गिरि हचे तो बसो श्री गोवर्धन, गाम हचे तो बसो नँदगाम
नगर हचे तो बसो श्री मधुपुरी, मोना नागर अति अभिराम
सरिता हचे तो बसो श्री यमुना-तट, सकल मनोरथ पूरन काम
'नन्ददास' कानन हचे तो, बसो भूमि वृन्दावन धाम ॥^१

२ - श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी —

गाइ खिलावत सोभा भारी ।

गोरज रंजित बदन कमन पै, श्लोक फलक बुँधरारी ।

× × ×

लम कन राजै माल मंड भ्रू, इहि छवि पै बलिहागी ३

३ - श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व—

नन्द भवन को भूषण साई ।

जसुदा को लाल बीर हलधर को, राधारमन सदा मुखदाई ।

इन्द्र को इन्द्र देव देवन को बह्या को ब्रह्मा महा बरदाई ।

काल को काल ईस ईसन को, बरुन को बरुन महा बरुदाई ।

मित्र को घन संतन को सर्वस, महिमा वेद पुरानन गाई ।

नन्ददास को जीवन गिरिधर गोकुल मंडन कुँभर कन्हाई ।^४

रामकृष्ण का अभेद—

रामकृष्ण कहिए उठि मोर ।

धोहि ध्रुवधेश ओहि ज्ञानजीवन, धनुष धरन अरु माखन चोर

इतपै अयोध्या निर्मल सरबु, उत यमुना जल करत किलोल

इतमें दशरथ-मुत्र कहाए, उतमें कहाए नन्दकिशोर

× × ×

नन्ददास के के दोल ठाकुर, दशरथ-मुत बाबा नन्दकिशोर ।^५

१. रामायण प्रभावली, पृ० २२०

२. रामायण प्रभावली, पृ० ३३०, विरोध द्रष्टव्य, रामचंद्राध्यायी, श्री वृन्दावन धरान, पृ

३. रामायण प्रभावली, पृ० २३६, अन्यत्र भी, पृ० ३२०

४. रामायण प्रभावली, पृ० ३४३

५. रामायण प्रभावली, पृ० ३२४

४—गोपी प्रेम—

जवपि जगद् गुरु नाथर जसुमति-जन्म-दुतारे ।
 ये गोपिन के प्रेम अब अपने मुख हारे ।
 तब बोले पिय नत्र किखोर, तब कृती तिहारे ।
 अपने हिस तैं दूरि करी, सब बोम हमारै ।
 कोटि कल्प नहि तुम प्रति, अति उपकार करी जे ।
 हे मन हरनी तरुनी उद्धृत न हो-तैं सकी सी ।^१

(तुमसेव श्रीमद्भागवत १०, ३२, २२)

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणाँ के आधार पर हम देखने हे कि अष्टदाप कविओं का समस्त वाङ्मय भागवत-मय है। उनके काव्य में श्रीमद्भागवत श्रवणी सम्पन्न के लाल दुग्ध में शर्करा के समान कुछ इस प्रकार मोत-प्रोत है कि उनकी कुछ तरुणों के वर्णनका क प्रभाव पर पुष्प-भूषक निखाने की चेष्टा दृश्यान्वय-भी महसूस होती है : इस अष्ट सखाओं को भागवतोक्त कृष्ण समान^२ ठीक ही कहा गया है^३। क्योंकि इनका लीलादान प्रत्यक्ष लीलावलोकन के समान ही जीवन है। रूप-प्रधान शिकदाम से अष्टदाप के विषय में जो अद्यान्वय उद्धार प्रकट किए हैं, इस की प्रवृत्ति उक्त समर्पण करते हैं—

ओ जन अष्टदाप भूत भावत ।
 चित्त निरोध होत ताही छिन हृन्निरोधः शसाधत ।
 मुर मुर जस हृदै प्रकासत परमानन्द बहाधत ।
 छीतस्वामि योकिंद सुमल बस, तन पुनचित्त जल भावत ।
 कुम्भदास कर्मभूकदासहि, विरिलीला प्रकटाधत ।
 नन्ददास कृष्णदास रास रस उच्छणित अंग धेग नमाधत ।
 'रसिकदास' जन कही ली बरनी श्री कल्पम भव भावत ।^४

१ नन्ददास शंकरकी रामचन्द्राचार्यी, पृ० २०, २१

२ श्रीमद्भागवत १० २०, ३१

३ सुरदास सो तो कृष्णतोके परमनन्द शानो ।
 कृष्णदास सो कल्प छीतस्वामि सुबल बलानो ।
 अजुन कुम्भदास, चत्रभुजदास प्रियाला ।
 नन्ददास सो नेत्रस्वी योकिन्द शोधाना ।
 अष्टदाप आठों लखा 'दारकेश' परमान ।
 जिनके कृत पुनवान तैं, होत सुबोधन शान ।

जी रामकानाथ हृत कल्पम, उरुहत, को० गौडबन्धु गुरु-
 अष्टदाप और कल्पमसम्बन्धी, उरोदास, पृ० ५, ६

४ उद्धृत : अष्टदाप परिचयः सम्पनि- पृ० २

उक्त पद में स्पष्ट ही अष्टछापी कवियों द्वारा (केंद्रीय कृष्ण लीला) के गान की शोर संकेत किया गया है। यह लीला का, जिसमें उनका चित्त विशेष रूप से :
 पूर्ण भक्ति साहित्य में अष्टछाप के कवियों का जो ने
 विरासत का व्यर्थ है। श्रीमद्भागवत इन अष्टछापी कवियों
 द्वारा उपलब्ध हिन्दी साहित्य के भी केंद्रीय प्रेरणा स
 र्ण है, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। वल्ल
 कवियों ने श्रीमद्भागवत की मधुरोपासना को कि
 र्ण अष्टछाप में निरूपित किया गया है।

सप्तम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं पुष्टिमार्गेतर वैष्णव सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त हिन्दी कवि ।

जहाँ बल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टादशवीं कवियों ने कृष्ण श्रीमद्भागवत की भाव, कृष्ण और पौगण्ड कृष्ण लीलाओं का विविध रान किया वहीं चैतन्य, राधावल्लभ, आदि सम्प्रदायों ने प्रमुखतया श्रीमद्भागवत की किरण-कृष्णोत्पत्ति भाष्य-लीला को, जिसका प्रथम विकास गोपियों की प्रेमलक्षणाभक्ति में दृष्टिगोचर होता है, अपनी रस-साधना का प्राथम्य स्पर्धन बनाया। यद्यपि यह गोपी प्रेम अल्प पुराणों, प्राचीन मङ्गल काव्यों, और उपनिषद् की काव्य परम्पराओं के प्रभाव से कालान्तर में ऐकान्तिक होते होते केवल राधा कृष्ण के युगल-प्रेम में ही आबद्ध होगया और राधावल्लभ सम्प्रदाय तक पहुँचने-पहुँचते इसमें राधा का ही प्राधान्य होगया। यद्यपि यह बात निर्विकल्प रूप में कही जा सकती है कि कृष्ण-प्रेम की परम तन्मयीप्रवस्था और उनके तनस्पर्शी रास्मीयों की स्वरूपानुसंधान में सभी वैष्णव कवियों का आदर्श श्रीमद्भागवत का गोपी प्रेम ही है। एक विशिष्ट व्यक्तित्व (राधा) के समावेश-भाव से मूल प्रेम भावना में कोई अन्तर नहीं रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट नामोल्लेख न होने पर भी रामलीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा एक विशिष्ट दोरी को तिम्रुत निकुंज में ले जाकर रहस्यवर्ति का संकेत देना कृष्ण-प्रेम-लीला के साहित्य को प्रभावित करने की विधा में कर्म महत्वपूर्ण बात कही है। राधावल्लभीय, हरिदासीय आदि सम्प्रदायों में नित्यविह्वार और निकुंज लीला आदि की करना कृष्ण की श्रीमद्भागवतक मधुर-रस इषाम रासनीयार से ही प्रभावित है। प्रिय प्रकार श्रीमद्भागवत में रासलीला के ध्वन्यादि का एक हृद्-रोस (काव्य) का ताड़ बनना गया है, वैसे ही राधावल्लभीय सम्प्रदाय में रासलीला का 'काशरथी-माला' माना गया है। श्रीकृष्ण की इस मधुर लीला को जिन संस्कृत सम्प्रदायों में विशिष्ट महत्व दिया गया, वे हैं—

- १—निम्बाक सम्प्रदाय ।
- २—चैतन्य सम्प्रदाय ।
- ३—द्विज हरिवंश का राधावल्लभ सम्प्रदाय एवं
- ४—हरिदास का सभी सम्प्रदाय ।

इन सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण की मधुर लीला को ही महत्व दिया गया है।

१ राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य १९९६, पृ. १०६, १०७, १०८

सम्प्रदाय पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में उक्त सम्प्रदायों के प्रमुख कविता पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का निरूपण करेंगे। कवि सख्या को महत्त्व न देकर प्रतिनिधित्व का ही ध्यान रखा गया है।

१—निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवि

१—श्रीभट्ट—(संवत् १५२५ वि०) ये निम्बार्क मत्तानुगामी सुप्रसिद्ध केशव कर्णधर के पट्टमिश्र थे। श्रीभट्ट ने सर्व प्रथम वैष्णो भक्ति प्रधान निम्बार्क सम्प्रदाय में रसोदान का समावेश किया और राधा कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करते हुए 'युगल-शतक' नामक सरस ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ की विस्तृत पद्यात्मक टीका इनके शिष्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य ने लिखी थी, जो 'महावाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीभट्ट ने राधा कृष्ण की अद्वैत भक्ति, रूप माधुरी, ब्रज माहात्म्य, वेणुमाधुरी आदि का सुन्दर वर्णन किया है—

वृत्तमहिमा—

ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।

मोहन कुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना पानी।

मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमृत बानी।

'श्रीभट्ट' के प्रभु मोहन नागर, मोहिनि राधा रानी।^१

वेणुमाधुरी—

अम अम्य दुति माधुरी, विवि मुख चन्द्र चकोर।

घटके 'श्रीभट्ट' हृष्टि में, नटवर नवल किशोर।^२

रङ्गभक्ति एवं वेणुमाधुरी—

बंसी विभंगी-खाल की मनमोहन की बनसी।

कहा अन्तर बरि दुरि रहे छई मूरति धनसी।

हरि देखे त्रिनु क्यों रहौ वीरज नहि तनसी।

जै श्रीभट्ट हरिरस बस भई, मुनि धुनि नेकु भनसी।^३

२—श्री हरिव्यासदेवाचार्य—(लगभग सं० १६०० वि०) ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के एक प्रमुख आचार्य हैं। इनकी उपाधि 'परमहंसवंशाचार्य' थी। कविता में वे अपना नाम 'हरिप्रिया' लिखते थे। इनके ग्रंथ का नाम 'महावाणी पंचरत्न' है। इसमें पाँच ग्रन्थ हैं। ग्रंथ में निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों एवं राधा कृष्ण की निकुंज-लीला का वर्णन है—

१ इन्द्र-श्री बरि रवीन्द्र-दुःखसिद्धि, कोटिप्रभाविवकादि महाप्रभाट्या।

२ अम-अम्य सहस्रवि प्रतिभाति चिरो, विरौषखादि नहि तस्य मनस्तुदेति ॥

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीकृत, वृन्दावनमहिमाभूत, श्लोक ३०

३ वेणुमाधुरीसार (श्रीभट्ट) पृ० १२२

४ वही पृ० ११४

५ वही पृ० ११३

युगल प्रेमलीला—

प्रेम प्रबोधि बरे दोउ प्यारे निकलत सहित कवहुँ रैन दिन ।

जल तरंग नैननि लारे ज्यों न्यारे होत ब वनन करी दिन ।

X X X X

'श्री हरिप्रिया' जैसे तम दोऊ निषिष न रहै ए उवि ए उवि दिन ।^१

निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य कवि—श्रीहरिप्रियानन्देवाचार्य के विषय बरधुरास-

देव (रचनाकाल सं० १६७७) ने अणुल कीर्तनादि नववाचकिक का अनुसरण किया था। इनके रचित 'परशुराम सागर' ग्रंथ में 'श्रीकृष्ण चरित्र', लिंगार सुभद्रा चरित्र, अणुल मजप्राह का, प्रह्लाद चरित्र आदि छोटे बंधों का संग्रह है। श्री बरधुरासदेव के विषय श्री 'तत्त्ववेत्ता' (जन्म सं० १६८०) भी जानी-मत्त थे श्रीर भक्तों के मुद्रारान में कवित्त लिखते थे।^२ प्रसिद्ध भावुक भक्त कवि वनामन्द अथवा आनन्दधन (जन्म सं० परमार्थ १७४६ वि०) श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के वंशज थे।

२—राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि

गोस्वामी श्रीहितहरिवंशी (सं० १५५९-१६०९) के स्वयं श्री राधावल्लभ वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने दार्शनिक महाराष्ट्रमें और विविध निषेधों में न जाती हुए कुछ रसोपासना को अपनाया और प्रेमलक्षणात्मिक का प्रचार किया। इनके सम्प्रदाय में इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण की बंधी का अवतार कहा गया है।^३ इन्होंने अपने सम्प्रदाय में राधा को सर्वोपरि महत्त्व और प्राधान्य दिया है। 'राधावल्लभ' होने के कारण ही कृष्ण का मन्त्र है, स्वतंत्र नहीं। हितहरिवंश जी ने अपने संस्कृत के सुप्रसिद्ध स्तोत्रग्रंथ 'राधासुधा'निधि में अथर्ववेदों बरभाराख्या राधा का अतिशय भक्ति विह्वल होकर मधुर स्तवन किया है। २७० श्लोकों के इस ग्रंथ में राधाकृष्ण का उत्कट प्रेम निकुंज-लीला, रामलीला, वृन्दावन धाम एवं यमुना का अत्यन्त सरस वर्णन है। हितहरिवंश जी का दूसरा संस्कृत ग्रंथ 'यमुनाष्टक' है जिसमें यमुना का महात्म्य और स्तुति-दान है। श्री हितहरिवंश जी के दो ब्रजभाषा ग्रंथ 'हितचौरासी' एवं 'स्तुतबन्धी' हैं। इनमें राधागीता, कवचिहास, प्रेम, अत्यन्तता आदि विषयों का वर्णन है।

(अ) सामान्य तत्त्व - भक्ति, वैराग्य -

क—तू बालक वहि भरथी सयानप काहे कृष्ण भजन नहि नीके ।
अनिक सुनिष्ट नत्रिव सुगमिन पय मय बरिषत लहून कम पीके ।
जय श्री हितहरिवंश नरकभानि दुरभर समझाने कष्टिकम जकझीनः
भव अज कठिन मुनीजन कुलंज पशवत कर्षी लु मनुज लन श्रीके ॥^४

ख—मानुष को तम पास भरी ब्रजनाथ की ।

दर्री लंकें मूढ जरावत हाथ की ।^५

१ खोज रिपोर्ट (१६१२-१६१६ ई०) ना० प्र० समा कटरी, अणुलका ४४
२ राधावल्लभ का विंगल साहित्य (श्री मोनोलास मेनारिया) पृ० ७१-७२
३ ज्योतिषु भक्तसंप्रेमसाक्षात् साधकसूक्तः । उद्भूत, भूमिका । विद्यालय । श्री हितहरिवंश १५०-२
४ श्री हितचौरासी, स्तुतबन्धी, पृ० १५२
५ वही, पृ० १५२

नाममहिम्ना, गुरुमहिम्ना—

जत्र श्री हितहरिवंश विचारिकें मनुज देह मुक्तरस यहि ।
सकहि ती सब परपंच तजि, कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि ॥^१

मत्संग एवं प्रेमलक्षणाभक्ति—

ततहि राखि सतसंग मे, मनहि प्रेम रस भेव ।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतरु सेव ॥^२

(आ) विशेष तत्त्व—

(१) लीलागान—श्रीकृष्ण जन्मोत्सव (नन्दमहोत्सव)

आनन्द आज नन्द के द्वार ।

दास अनन्य भजन रस कारन प्रगटे जाल मनोहर न्वार ।

× × × ×

युवति दूध मिलि गोप बिराजत, बाजत पखव मृदंग सुतार ।

जयश्री हितहरिवंश अजिर वर, वीक्षितु दधि मधु दुग्ध-हरद के खार ॥^३

रासलीला—श्री हितहरिवंश जी ने कृष्ण की इस मधुग लीला के गान में अपने चौरामी में इतस्ततः विकीर्ण सत्रह पद लिखे हैं। 'रास समय' में श्रीमदभागवत के अर्द्ध रास के अतिरिक्त वसंतरास का भी वर्णन है। 'हित चौरामी' में रासलीला जो का वर्णन है उसका सारांश यह है—'सुखनिधान श्री ब्रजराजकुमार ने कालिन्दी के तट पर रास रचा है। रासमयी मुरली एवं स्वर्गीय संगीत का नाद हो रहा है। परम रमणीया भूमि में शीतल शब्द सुगन्ध मलय-भास्त बह रहा है। जाती पुष्प खिल रहे हैं। सरद्वस्तु है, सुखिमा की रात्रि है। स्वच्छ चन्द्रिका छिटकी हुई है। नखशिख शृङ्गार किये भोषिकाएँ लीला विग्रह धारी दयामसुन्दर को लोचन भर देख रही हैं। श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा भ्रजांभनाएँ परस्पर गले में बाँहें डाले, कपोल से कपोल स्पर्श कर रास कर रहे हैं।"

'सधुक्लु में वृन्दावन में आनन्द छा रहा है। चम्पक, बकुल, केतकी और नाना अन्य कमल पुष्प खिल रहे हैं। कोकिल और शुक कलरव कर रहे हैं। यमुना का जल स्थिर हो गया है। अभिनय में निपुण श्रीकृष्ण अंतर्बोद्धीपक भ्रुकुटि संचालन करते हैं। युवतियाँ अपने-अपने अनुरूप परिरमण्य चुम्बन आदि प्राप्त करती हैं। देवगण प्रसन्न होकर पुष्प वर्षा करते हैं।"

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

६—आजु बन लीकी रास बनायो ।

पुलिन पवित्र सुमग जमुनातट मोहन वेणु बजायो ।

कल कंकल किंकिसि नुपुर बुनि सुनि खगमृग सचु पायो ।

१ श्रीहितहरिवंशसार, स्टुटवाखी, पृ० १५०

२ वही, पृ० १५८

३ वही, पृ० १५२

४ श्रीहितहरिवंशसार (श्रीमद्वैकुण्ठरासीजी) पृ० १६१-२२५

सुवर्णित मंडल मध्य स्वाम धन, सारंग राज कमायी ।

ताल मृदंग उरण मुरज डक, निदि रस सिधु कदायी ।

X X X

परिरंजन कुम्भन शालिमन उचिष्ठ पुननि जन कायी ।

वरपत कुसुम सुदिन नभ नायक इन्द्र निशाय कदायी ।^१

ख—शरद राका रजदि विभिन्न कुन्दा सदादि,

प्रनिन अतिमन्द कीतक सक्षित बाव री ।

परम पावन पुनिन मृद सेवट नक्षित,

कल्पतरु तीर बलबीर इत राक्ष री ।^२

ग—राग रागिनि तान मान संगीत धर

अकित राकेस नभ शरद की यानिनी ।^३

कुन्दावन महिमा —

प्रथम यवामति प्रशानते श्रीकृन्दावन अति रम्य ।

श्री शयिका कृपा दिनु सबके मननि समन्द ।

वर यमुना जल सीचन दिन ही शरद बसंत ।

विविध भाति मूषवसि के शौर्य अतिकूल मत ।^४

(२) रूपमाधुरी —

क—तन्द के नाल हरषो मन मोर ।

बंक विसोकनि चाल कवीकी रसिक शिरोनशि मंडकिशोर ।

कहि कंस मन रहल अबसल लुनि सरल बधुर मुरली की मोर ।

इन्दु गोविन्द वदन के शरस चित्तन की अरु मन प्रकोर ।^५

ख—मोहन नयन शिरंगी । मोहन मुनि सब रंगी ।

मोहन मुनि अचन प्रकट परमानेक गुरु बशीर गुणमा ।

शीश किरिट अकस मशि कृष्ण उर मंथिन कनमाजा ।

पीताम्बर नवजातु विचित्रित कल किंकलि कटि बागी ।

नल मशि तरंगि चरस सरनीकृ मोहन वदन शिमरी ।^६

मुरली माधुरी—

क—मोहन किहव एक मधुर मुरली री ।^७

श्री हिनसुधासागर (श्रीमच्छुराशोरी) पृ० १८८

वही, पृ० २७६

वही, पृ० २२५

वही, पृ० २०२

वही, पृ० १६६

वही, पृ० २०७

वही, पृ० २०३

स - मोहन वेणु बजावै ! इहि रव तारि बुलावै ।

आई ब्रज नारि सुनत वंशी रव गृहपति बंधु विसारे ।^१

२ - श्रीदामोदरदास 'सेवकजी' - (मं० १५७७-१६१०) श्री हितहरिवंश जी के 'बनुरासी' (जोगमती) का गृहस्मोद्घाटन करने वाले और रावावल्लभ सम्प्रदाय के महान् गुरु श्यामा के रूप में श्री सेवक जी का स्थान नवने महत्त्वपूर्ण है। साधुर्य-भक्ति ही सोलह श्लोकों में विभाजित सेवक वाणी का महान् प्रतिपाद्य है। विधि निषेध की पर्यादा को नकारकर केवल अतन्त्र भाव से 'रस-रीति' को अपनाता इतका आग्रह था। भागवतोक्त गोपियों की अतन्त्र मधुराभक्ति ही 'रस-रीति' का प्रेरणा स्रोत है। सेवक जी ने स्पष्ट रूप से अपने सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत के श्रवण का उल्लेख किया है।

श्रीमद्भागवत की मान्यता—श्री सेवक जी ने कहा है कि भगवद्भक्ति की उच्च निरन्तर मन से भगवन्नाम के स्मरण करने पर होती है और श्रीमद्भागवत में इस बात पर जोर दिया गया है, अतः शुक के वचन (श्रीमद्भागवत) सुनाकर ही शिष्य को श्री हितहरिवंश का नामोपदेश करना चाहिए

शुक मुख वचन जू श्रवण सुनावहू ।

तब हरिवंश सुनाम कहावहू ॥

मन सुभिरन विसरै नहीं ।^२

श्री सेवक जी ने अपनी वाणी के प्रथम प्रकरण 'श्री हित यश विलास' में कहा है कि श्री हितहरिवंश का जन्मोत्सव ब्रजभूमि में वैसा ही मनाया गया था जैसा श्रीमद्भागवत में नरसिंह कृष्ण जन्मोत्सव नन्द द्वारा सम्पन्न हुआ था—

श्रीभागवत जू शुक उच्चरी । तैसी विधि जु व्याम विस्तरी ।

करी नन्द जैसी हुती ।

घर घर तोरण बन्दनवार । घर घर प्रति चित्रहि दरवार ।^३

श्रीमद्भागवत की नवधा एवं प्रेमलक्षणभक्ति—श्री सेवक जी ने स्पष्ट कहा है कि श्रवण कीर्तन आदि नवधाभक्ति के उपरान्त ही परम दुर्लभ प्रेमलक्षणभक्ति प्राप्त होती है और श्री हितहरिवंश जी ने यही किया था। यह मत श्रीमद्भागवत से सम्बन्धित है।^४

श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे ।

औरी कर्म सकाम जकल तजि सब भजे ।

साधन विविध प्रयान ते सकल विहावही ।

श्रवण कथन सुभिरण मेवन चितलावही ।

^१ श्री हितशुभासगर (श्री सेवक वासीजी) पृ० २०७

^२ वही, पृ० २४२

^३ वही, पृ० २३१

^४ देखिये शन प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय (वैधी एवं रामानुजा भक्ति)

अर्चन वन्दन अह दामंतन । मलय और आर्या समवेत ।
 ये नवलक्षण भक्ति बहाई । तब तिन प्रेमलक्षण भाई ।
 पाई रसभक्ति भूत भुग भुग जग सुर्यभ भय इन्द्रादि विविध ।
 आनन नियम पुराण अगोचर सहस्र अपूर्वी रूप निर्दिष्ट ।
 X X X श्री हरिवंस बरक शरणात् ।

सकत लक्षण

अह अपनी प्रभुता नहीं सहे । तूथ ते मोक्ष अन्तराई कहे । X X X ।
 समुझ नहीं कल्ल कूल कर्म । मूर्खी बल अज्ञेय दर्म । X X X ।
 जब श्री हरिवंस नाम जानि है । तब जवड़ी ते सहु मानि है ।
 हेनि वीर्य बहुमाल दै ।
 तव सम महनशीलता होय । परम उदार कहे सब कोय ।
 सोच न मन ऊबहुं करै । २

तुलसीय श्रीमद्भागवत -

अप्रमत्तो वसीराजस्य धूमिमाश्मिस्तबहुभुक्तः ।
 अमानो मानदः कर्तो मंत्रः कश्चिद्विद्वः कश्चिः ।
 आज्ञायैवं गुस्मान् दोषान् भवतिष्ठानि म्वकान् ।
 धर्मान् मन्थय्य सः सर्वान् मां भजेत न उत्तमः ॥३॥

श्रीमद्भागवत के इन श्लोकों के भाष्यों के साथ सेवक जी का लक्षण कथ श्री पैतृय के
 आष्टक के इस श्लोक का अनुवाद प्रतीत होता है—

तूखादिनि सुलीचिन, तरोरिब सद्भिभुक्तः ।
 अमानिना मानदेन कीर्तनीयः स्या हरिः ॥३॥

गुरु महिमा— क—गुरु गोविन्द न केद कराय ।
 सन्तत सकल कुतूह चित्त काय ।
 ल—गुरु सेवा तपि करहि ते धनि ।
 यहै अघमं यहै सह ह्यनि ॥४॥

(इष्टव्य श्रीमद्भागवत ११. १०. २७)

विशिष्टतत्त्व—लीलागान—

बाललीला का महत्त्व—बाल चरित्र प्रेम की नींव ।
 कहत सुनत सब मुख को सोव ।
 जीवन ब्रजवासिन मफल ॥४॥

श्री हितसुधासागर (श्री सेवक वाखी जी) पृ० २६९ १-२ २८५
 वही, पृ० २४७

श्रीमद्भागवत ११. १६. २७, ३२

श्री श्रीचैतन्य चरितावली, खण्ड १, (श्री अनुवक्त २५. १-२) १० १-२

श्री हितसुधासागर (श्री सेवक वाखीजी) पृ० २४४
 वही, पृ० ३३५

रसलीला—

क—प्रिय विचित्र जन हरषि मत जिय वस वेतु अवशान्त ।
 तिय तरुखी सुनि लुप्त धुनि किय तहँ गनन तुरन्त ।
 किय तहँ गनन तुरन्त कन्त भिनि विलसत सर्वस ।
 तन रास मण्डल जुन्त रम नित रंग रस ।
 सन्तत सूर दूदुभि बजन्त बरषन्त सुमन लिय ।
 अल केलि जल जमुकि मत्त इमराट करिखि पिय ।^१
 ह—वस बजाय विमोहित नारी । बोली संग सुमित्य विहारी ।
 परिरमन चुम्बन रसकेली । विहृत कुंवारि कठं भुज मेली ।
 सुन्दर राम रच्यो बन माहीं । यमुना पुनिन कल्पतरु छाहीं ॥^२

श्री वृन्दावन महिमा—

नव पल्लव नवफूल अनन्ता । सदा रहती ऋतु सरद बसन्ता ।
 श्री वृन्दावन सुन्दरताई । श्री हरिवस नित्य प्रति माई ।^३
 नवः महिमा—

मथुरा नित्य कृष्ण की वास । निशि दिन व्याम न छाई पास ।
 तासु सकल लीला कही ।^४

(तुलसीय—मथुरा संभवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः । श्रीमद्० १०. १. २८)

श्री मैत्रेय जी की रचनाओं पर श्रीमद्भागवत का विपुल प्रभाव है, किन्तु विस्तार गम से यहाँ हमने दिङ्मात्र प्रदर्शन किया है ।

३--श्री हरिराम व्यास (व्यासजी) (सं० १५४६-१६५०-५५) राधावल्लभ सम्प्रदाय के व्यासजी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है । इनका वाणी साहित्य बहुत विशाल है । व्यास दास का मुख्य प्रतिपाद्य तो मधुराभक्ति ही है किन्तु आनुषंगिक रूप से उसमें अमन्य भक्ति सिद्धान्त एवं जीवन के व्यावहारिक पक्ष का निरूपण भी हुआ है । व्यासजी का श्रीमद्भागवत का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा था, और उन्होंने अपनी वाणी में अनेक स्थानों पर श्रीमद्भागवत के तीर्थस्लोक पूर्वक उसके भक्ति एवं धर्म मत का समर्थन किया है । अतिशय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

अ—सामान्य तत्त्व

(१) भागवतोक्त भक्ति का आदर्श—

क—जैसी भक्ति भागवत बरनी ।
 जैसी बिरसे जानत माकत कठिन रहनि तै करनी ।
 स्वामी, भट्ट, गुसाई, धर्मनिन, यति भति तै आचरनी ॥

×

×

×

- १ ब्रह्म. पृ० २८६
- २ ब्रह्म. पृ० २९१
- ३ ब्रह्म. पृ० २९०
- ४ ब्रह्म. पृ० २९५

उहव प्रीति दिना परतीति न. सिन्धोः की वरनी :

व्यास प्राप्त जी लमि है नी लमि, हरि किनु हुस किउ भरती ।^१

ख—सुक वारद से भक्त न कोऊ, जिहि भागवत सुनयो ।

किनु भागवत भक्ति नहि उरई, सावन तावि बनयो ।^२

(२) नाम महिना—श्री व्यास जी ने कहा है कि यदि भगवान् की हरिकीं रूप धारण करके नाम की महिना मायें तो वार नहीं आ सकेंगे। यह कहते हैं श्री कासार है। मेरा परम धन 'राधा' नाम है। वह परम सुखदायक वारदुन उदय है, श्रीमद्भागवत सुकदेव ने इसे श्रीमद्भागवत में प्रकट नहीं किया।^३ श्री व्यासजी ने श्रीमद्भागवत की मानो झड़ी ही लगायी है—

हरि हरि हरि मेरे साधन । हरि हरि मेरे सहज निधान ।

हरि हरि सकल सुखन की सार । हरि हरि 'व्यास' कृत के रीतार ।^४

इष्ट-निर्भरता—

काहू के जल भजन की काहू के साधार ।

'व्यास' भरोसे काल के भोक्त संय रीतार ॥

(३) गुरु महिमा—गुरु की प्रतिवेचनीय महिमा के व्यापन से श्री व्यासजी ने श्रीमद्भागवत के कृष्णचरित एवं बर्णन का प्रामाण्य स्वीकार किया है—

क—गुरु की सेवा हरि करि जाती ।

एए उर्जन रैन दिन दुःख सहि, तजि मधुगा रजधानी ।

छाँडी प्रभुता पाँव लगन है, दाम कहन सुकसानी ।

भूखें प्यासें मेहु मझी निशि, भोर भरयो हरि पानी ।

शिषी जियाइ मृतक मूठ तकही, गुरु महिमा पहिचानी ।^५

ख—गुरु भोदिन्दे एक संकाने ।

वेस पुरानि कहत भविष्यत, ते जू जवन परनाम ।^६

(४) वैराग्य—व्यासजी ने श्रीमद्भागवत का अनुसरण करते हुए अनुभव को कांचन-कामिनी की ओर से वैराग्य की ओर भक्ति की प्राप्ति के लिए ही प्रेरित किया है—

जो ये हरि की भक्ति न नाजी ;

जीवत हू ते मृतक एए धरराधी बननी साजी ;

भोग, जज्ञ, तीरथ, द्रव, उप-तप, मद्र स्वार्थ की बाकी ;

१ भक्त कवि व्यासजी (त्रि० ख० वासी संस्कृत, श्री वासुदेव गोरक्षजी) पृ० २२८

२ वही, पृ० १६२

३ वही, पृ० १५५

४ वही, पृ० १६६

५ वही, पृ० १६१

६ वही, पृ० १६१

मीडित धर धर भटकत डोलत, पंडित सुंडित काजी ।
 पुत्र कलत्र सजन की देही बीध स्वान की खाजी ।
 बीत गए तीनों पन कपटी, तक न तूष्ना भाजी ।
 व्यास निरास भयो जाही तै कुध्न चरन रति राजी ।^१

आ—विशिष्ट तत्त्व

श्रीमद्भागवत की माधुर्य लीला का विशेष रूप से गान करने के लिए श्री व्यासजी ने 'रामपंचाध्यायी' का पृथक् रूप से वर्णन किया । किन्तु अष्टछाप के कवियों की भाँति कृष्ण की बाललीला का गान करना व्यासजी की विशेषता है । कृष्ण लीला के उपकरणों में व्यास जी ने मधुरा, वृन्दावन, यमुना, मुरली आदि का भी महत्त्व-प्रतिपादन किया है । उक्त विषयों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

{ १ } लीलागान—बाललीला—

स्वान-चबैनी ग्वान चवात ।

मीठी लागत मोहन के संग. घर की छाक न खात ।
 तोरि पतौवार जोरि पतौखी, पय पीकत न अघात ।
 मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अंग न समात ।
 कबहुँक जमुना जल में पैरत, मोहन मारत लात ।
 बूहक लै उद्धरत छलबल सौं, रयाम भात लपटात ।
 कबहुँक जगमृग भाषा बोलत, वन सिधै न डरात ।
 अदभुत लीला देखि देखि कै व्यास दास बलिजात ॥^३

रामलीला—

नाँचत लामर नटवर चेष धरि, सुखसागरहि बड़ावति ।
 सरद सुखद निसि ससि गो रंजित, वृन्दावन छवि रुचि उपजावति ।
 ताल लए शोपाल लाल संग ललिता ललित मृदंग बजावति ।
 × × × ×
 मिस्रित धुनि सुनि खग मृग मोहित जमुना जल न वहावति ।
 × × × ×
 जय जय साधु करत हरि सहचर, व्यास चिराक दिखावति ॥^४

मधुरा नाहात्म्य—

घनि घनि मधुरा घनि घनि मधुरा घनि मधुरा बासी हो ।
 जीवन मुक्त सर्व विहरत हैं कैसीराइ उपासी हो ॥^५

१ मरुत्तमि व्यासजी (दि० ख० वाखी संकलन, श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ० २२६

२ वही, पृ० ४००-४०७

३ वही, पृ० ३२६

४ वही, पृ० ३६०

५ वही, पृ० २०६

वृन्दावन-महिमा—भाधुर्य-भक्ति-मावीय सभी सम्प्रदायों में वृन्दावन शहर की त महिमा है। उनमें भी 'नित्य विहार' और 'निकुंज मोछा' के प्रसंग-भित्तियों।
 त्वलभय भक्त कवियों ने वृन्दावन की बड़ी महिमा गायी है। व्यास जी ने श्रीमद्-
 खतोक्त वृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का लक्षण करते हुए वृन्दावन की महिमा में बहुत
 रलित बीस दोषकाय पदों की रचना की है।^१ वे सब एक उदाहरण देते हैं—

धनि धनि वृन्दावन की घरनि ।
 शक्ति कोटि बंकुष्ट लोक ती, सुक मारु सुनि धरनि ।
 जहाँ त्याग की काम-कैनि, कुल काम, काम सब हरनि ।
 ब्रह्मा मोहो भ्रातृ मंडली, भेद रहित आचरनि ।
 राधा की छवि निरखन मोहो, नारायण की घरनि ।
 और बार कौनी बनि बनित, भेम गतिहि अनुसरनि ।
 जहाँ महीश्व राज विराजत, सदा कृष्ण-कल कवरनि ।
 तहाँ व्यास बसि ताप बुझावो, अन्तरहित की घरनि ॥^२

जमुना-महिमा—कृष्ण लीला के उपकरणों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण देते हुए व्यासजी
 मुना को श्रीमद्भागवत के अनुपार कृष्ण-भामिनी कहा है—

जमुना जेरी बु की प्यागी ।
 जाकी वैभव कही भागवत, सुक उग्रदेव बिजानी ।
 मनिषय तटी, उमय पट-हृषण, प्रथम विपत्ति निहारी ।
 सीरम सुधा मल्लि जनु राधा, मोहन की रस भरी ।
 सुरटर-राज विराजत तीर कुटीर मर्षा, बँवारी ।
 कुसुमित तमिन बिबिध साखा औ प्रान समान मुखारी ।
 × × ×
 व्यास श्रामिनी स्वाम-भाषिनी, वृन्दावन चद उखारी ॥^३

(२) रूपमाधुरी—किरीट कृष्ण की रूपमाधुरी का बहूत व्यासजी ने प्रशंसा से
 है। एक उदाहरण देखिए

हरिमुख देवत ही मूक नैवनि
 निरखत रूप अतुल निमेष जगत ही श्रेय कुबंनि ।
 बारें वर घर बात शान सुनि, लवन सरस सुक वैमनि ।
 हंस कोटि वापिलि प्रनिबिबित बिम्बाकर रम ऐननि ।
 विनु दामनि हौं मोल लई इनि त्याग छत्रीके सैननि ।
 भौह धनुज तें चलत नयन-अर भेदन उरज सुरेननि ।
 रोम रोम की छवि पर वारी, कोटि नैन नयन नैन ।
 लज्ज मधुरता व्यास मन्द पै, कहत ब... ॥^४

भक्तकवि व्यासजी (वासी संकलन) पृ० २००-२०६

वही, पृ० २०१
 वही, पृ० १६८
 वही, पृ० ३८२

वेणुसाधुरी—

सधुर मधुर धुनि आज बेनु बजावत ।

मुदिन उदित लाग बंवान रामनि के, रसिक कुंवर श्री राग अलापत ।

देन सुरति मधुकर, मोर नाचत, बियाकित चद मुदित घन गावत ।

उलट बहत सलिला पर जमगत, पुलकित वृन्दाबिपिन विराजत ।

× × × ×

बरपन कुलुम मुदित नम नाइक, जय जय धुनि मुनि सब ब्रज आजत ॥^१

(३) गोरी प्रेम—श्रीमद्भागवत में कृष्ण और गोपियों के रासविलास में जैसे पृथुज और मांदल चित्र दिये गये हैं, उनकी झलक व्यासजी के काव्य में देखी जा सकती है। गोपियों की रूपान्ति और तन्मयतासक्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है—

तन्मयतासक्ति—

जो भाव सो लोगनि कहन दै ।

अवनि पिछौडौ पाँव न दीजँ, न्याव मेदि प्रीनि निबहन दै ।

हौं जीवन मदघाती सखी रो, मेरी छतियाँ पर मोहन रहन दै ।

नव निकुंज पिय अंग संग मिलि, सुरति पूंज रससिन्धु थहन दै ।

या मुख कारन व्यास आस कै, लोकावेद उपहास सहन दै ॥^२

श्री हरिराम व्यास के मनुस्त भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत का इतना व्यक्त और अव्यक्त प्रभाव है कि सूर, परमानन्द, नन्ददास आदि कुछ कवियों को छोड़कर उनका ही स्थान आता है। इसके विषय में आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि "इनकी रचना परिमाण में बहुत विस्तृत है और विषय-भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है।"^३ श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी के आधार पर व्यास जी ने रासपंचाध्यायी लिखा थी उसे भ्रमवश सूर कृत मानकर मूरसागर में सम्मिलित कर लिया गया। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सूरसागर के संस्करण में भी यह भूल मौजूद है।^४ आचार्य शुक्ल ने इस भ्रान्ति की ओर संकेत किया है।^५

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवि

ऊपर हमने राधावल्लभ सम्प्रदाय प्रवर्तक श्रीहितहरिवंजजी के अतिरिक्त दो प्रतिनिधि कवियों पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त हमारे आलोच्य कालमें इस सम्प्रदाय के अनेक प्रसिद्ध कवि हैं जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है, किन्तु विस्तारभय से हम उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं। परम्परा तो महाकवि बिहारी को भी राधावल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध करती है।^६ प्रसंगवश कुछ कवियों की चर्चा संक्षेप में की जा रही है।

१ मच्छर्माव व्यासजी (श्रीदासदेव कोस्वामो) पृ० ३११

२ वकी पृ० १२४

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६०

४ मूरसागर, पहला खण्ड पृ० ६६६ ६७३

५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६०

६ मच्छर्माव्यासजी, पृ० २-७

चतुर्भुजदास—(संवत् १९२२) हिन्दी साहित्य के इतिहास कालों में आठमवत्स के चतुर्भुजदास को अनेक बार अखण्ड राधावल्लभ सम्प्रदाय के इस चतुर्भुजदास के रूप में उल्लिखित किया गया था। किन्तु डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने प्रबंध में सर्वप्रथम श्रीजगन्नाथ दृष्टिकोण से विचार कर इस भ्रम का सदा के लिए उन्मूलन कर दिया है।^१ चतुर्भुज श्री चतुर्भुजदास ने श्रीमद्भागवत की भक्ति को स्वयं ही प्रकृत नहीं किया, अथिपु मद्रास देश में उसका प्रचार किया और 'भक्ति-प्रदाय-यथा' नामक यथा भक्तवत्सल्य प्रतिपादक ग्रंथ की रचना की। अक्षयमाल के टीकाकार श्री पिण्डदास ने चतुर्भुजदास द्वारा भागवत-कथा कहने और चमत्कार दिखाने का वर्णन किया है।^२ चतुर्भुजदास के कर्मों का अर्थ 'दादशयथा' है। इनमें १२ पृथक् छोटे-छोटे ग्रंथ हैं। इनमें से 'भक्तिप्रदाययथा' तथा 'हितरू की मंगल' काही प्रसिद्ध हुए और पृथक् ही पुस्तकाकार मिले मिलते हैं। 'दादश-यथा' में मुख्यतया श्रीमद्भागवत की भक्ति और कर्म-मर का निरूपण हुआ है। भक्ति की पापनाशिनी शक्ति, भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व, विद्या-निन्द, संसार का 'अच्छायाय' निरूपण, की पुत्र वन वास्यादि का वन्दनकारी रूप, वर्णाश्रम कर्म निरूपण, कर्मकाण्डिक सातव महिमा, भक्तजन महिमा, गुरु महिमा, श्रीकृष्ण का परम कारुणिकत्व, भगवा की प्रवृत्तता और प्रकृत प्रेमलक्षणावधि आदि को विषय श्रीमद्भागवत में प्रतिपादन हुआ है। उनमें समस्त विषयों का निरूपण चतुर्भुजदास ने 'दादशयथा' में किया है।

श्री ध्रुवदास—(स० १६३०-१७००) अपनी भक्ति विषयक रचनाओं के अत्यन्त विस्तार के कारण हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में ध्रुवदासको का स्वयं बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ० विजयेन्द्र स्थापक ने इनमें राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का व्यवहार और व्याख्याकार^३ कहा है, जो यथया उचित है। इनमें वेद, पुराण, स्मृति-शास्त्रों का बड़ा सहारा कर व्याख्यान छोटे बड़े ग्रंथों का प्रकाशन किया जो 'ब्रह्मीय बोधा' नाम से प्रकाशित हैं। कुछ स्फुट मर ही प्रकृत होते हैं। नामाली के भक्तमाल के समान इनमें 'भक्त नामावली' लिखी है। ध्रुवदास श्री ने प्रमुखतया प्रेमभावना यजुर्भक्ति का ही प्रतिपादन किया है। वंसे जीवन के आचार व्यवहार एक और नैतिकता पर ही इनके विचार महत्त्व पूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति की प्रवृत्तता का हम पर पूर्ण प्रभाव है—

गोपी प्रेम—

नागदादि मनकादि प्रव. उद्धव मर श्रुतिदि ।

गोपिनली मुक देखि किब, सजन धापुन, वादि ॥६

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टधाप और कर्त्तव्यसम्प्रदाय पृ० २३०-२३१

२ भोग तै लगायै, वासा संतनि लहायै, क्या भागवत कयै, साधुनि कितायै ।
भयौ वन लैशै को, ...
निकली पुरान बात, ...
कहै या जनन में न, ...

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय, ...

४ भक्तमाला की सार, ...

तिन घोड़ित के दुरलभ माई । नित्य विहार सहज सुखदाई ।
मिब श्रीपति जद्यपि ललचाहीं । मन प्रवेश नितहुँ की नाहीं ।^१

श्री प्रबुदास जी की समस्त भागवतीय भक्ति का सांगंश उनके निम्नलिखित सबंधों में अत्यन्त सुन्दरता से समाविष्ट है—

ऐसी करी तवत्तल रगीले तू, चित्त न और कहूँ ललचाई ।
जे सुखदुःख रहें लगि देह सो, ते मिटि जाहिऽरु लोक बढाई ।
सगति साधु बृन्दावन कानन, तो गुन माननि माँझ बिहाई ।
कज पगों में तिहारे बसों, बस देहु यहै प्रबु'कों प्रबु'ताई ।^२

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य उल्लेखनीय कवियों में नेही नागरीदास (सं० १५६० विक्रमी) कल्याण पुजारी (सं० १६००) श्री अनन्यअली (सं० १७४०) हमारे आलोच्य काल के अन्तर्गत हैं। जिन पर श्रीमद्भागवत की मधुर रस-भक्ति का पूर्ण प्रभाव है। नेही नागरीदास जी के सम्बन्ध में तो यह किम्बदन्ती है कि वे श्रीमद्भागवत के भी उन प्रसंगों में रुचि न रखते थे, जिनमें कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन नहीं है।^३ वे केवल राधाकृष्ण की मधुर रासलीला के ध्यान में ही अर्हनिश मग्न रहते थे।

३ स्वामी हरिदास के सखी सम्प्रदायानुयायी कवि

स्वामी हरिदासजी—(संवत् १५३७-१६३२) मूल रूप में प्राचीन निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी संगीत कला धुरीण स्वामी श्री हरिदास जी ने मधुरा भक्ति प्रधान अपना पृथक् सखी सम्प्रदाय चलाया था जिसकी साधना पद्धति का निम्बार्क सम्प्रदाय से मौलिक भेद है। सखी सम्प्रदाय में उपासक सखी भाव धारण करता है। स्वामी हरिदास बृन्दावन के 'टट्टी संस्थान' के संस्थापक थे। इनका जन्मस्थान अलीगढ़ जिले की कोल तहसील में बताया जाता है, जहाँ अब हरिदासपुर नामक ग्राम है। स्वामीजी का सम्प्रदाय रसोपासना को प्राधान्य देता है। इस दृष्टि से राधावल्लभ सम्प्रदाय से इनका मतभेद है। स्वामी हरिदास ने युगल तरकार की निकुंज लीला का बहुत ही मर्मस्पर्शी और मधुर भाषा में वर्णन किया है। स्वामी जी अत्यन्त विरक्त महात्मा थे। अतः उनके सम्प्रदाय में बैराग्य का महत्त्व है। उनकी वाणी के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनन्य अरसगति (आत्मनिवेदन भक्ति)—

क ज्योही ज्योही तुम राखत ही, त्योही त्योही रहियतु है हो हरि ।
और अक्षरचै जाइ घरौं सु तो कहौ कौन केँ पेव भरि ।
जदपि हौं अपनी मायौं कियो चाहौं, कैसे करि सकौं सो तुम राखो पकरि ।
कहि हरिदास पिजरा के जनावर लौं तरफराइ रह्यो उडिबेकौं कितोउ करि ।^४

ख—काहे को बस नाहि तुम्हारी कृपा तँ सब होइ विहारी बिहारनि ।
और मिथ्या प्रपच काहे को भाषियै सु तो है हारनि ॥

१ अक्षमाधुरी सारः पृ० १६६

२ वही, पृ० १६४

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४६६

४ अक्षमाधुरी सारः पृ० ६६

जाहि तुमहीं हित जाहि तुम हित करी सब कुछ कायि ।
श्री हरिदास' के स्वामी स्वामी कुंजबिहारी, प्रानिक के काव्यकारि ।^१

वैराग्य (उद्बोधन) —

जौ लौ जीवै टौ लौ हरि भजु रे मन और मात मन बाधि ।
दिवस चारि कौ इला मन्दा, तू कहा केह्यौ कादि ।
माया मद सुन मद जोवन मद, भूष्यौ नदर-सिखाधि ।
कहि हरिदास सोम नदकट भयो, जाहूँ की लखै किराहि ।^२

लीलागत (रासलीला) —

अद्भुत गति उपजाति अति वाचत, बोक लखव्य कुंवर किचोरी ।
सकल मुषंघ अंग भरि कोरी, पिय हृतनि सुनकति मुक भोरी ।
नाल बरै कलिना मृदंग, चन्द्रायनि आत बरै थोरी थोरी ।
सधुर भाव भाषा विचित्र अति, ललित गीत गावै जिनचोरी ।
श्री वृन्दावन कूलनि फूलयौ पूरन ससि मभीर-कलि थोरी ।
यति विनास रस हाथ परस्पर, झुलल प्रहृष्ट बारी ।
श्री जमुनावन दिवकित पुहुपनि, अवि रति पति करत लून लोरी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्वामी कुंजबिहारी श्री कौर रस रसना कही कोरी ।^३

(२) श्री विट्ठल विपुल — (सं १३५०-१६३२) कहा जाता है कि वे स्वामी हरिदास जी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे ।^४ इन्होंने रासलीला की निकुंज लीला के अर्थ लिखे हैं । रासलीला का वर्णन किया है । किन्तु हिंदोला, कूरन क धारि सुवभूमि में प्रकृतित अल्लसमस श्रीडाभों का भी उसमें सम्मिलित किया है । 'हिंदोले' के पद प्रत्यः सके अन्वयार्थिक कृष्ण भक्त कवियों के लिखे हैं । अष्ट रूप के कवि भी इनके अग्रवाद नहीं हैं । किन्तु विट्ठल विपुल के निकुंज लीला अंशों में बातावरण वही वाच्यत के रास का है —

क सजनी तक निकुंज दूम फुले ।

अलिकुल सकुच करत कूताहल । सौरभ बनसक धुं ।

हरसि हिंदोरे रसिक रासकर, जुवल परस्पर फुले ।

श्री 'विट्ठल विपुल' विनोद देण्डे नाम देव विमानक भुंजे ।^५

ख — नवल धरद की बोहू करमणी ।

नव मत्तसाज सकल अंग सुन्दर, नवल वदन पर अलक सबकरी ।

श्री विट्ठल विपुल बिहारी के अंग लाडिली सहज उर लगी ।^६

१ ब्रजमाधुरीमार पृ० ६६

२ वही, पृ० ६८

३ हरिदास, रासलीला, पृ० १३५०-१६३२

४ ब्रजमाधुरीमार, पृ० ६६

५ हरिदास, रासलीला, पृ० १३५०-१६३२

६ वही, पृ० ६६

।३ बिहारिनदास--(सं० १५६१-१६५९ वि०) हरिदासजी के सखी में बिहारिनदास जी का स्थान प्रमुख है। इनकी रचना भी परिभास में अधिक है श्रीकृष्ण की निकुञ्ज लीला के गान के अतिरिक्त मानव जीवन के सामान्य आचा विचार और भगवद्भक्ति का माहात्म्य गान किया है।

भागवत कथन श्रवण की अनिवार्यता—इन्होंने भागवत कथन के। का प्रतिपादन व्यर्थ का शारीरिक श्रम बताया है—

भक्ति बिना भागवत कहै, कठे सोखे काया दहै ।

दम न जसै कर्म न करै, निगुसा यें सब काहू डरै ॥^१

श्रीमद्भागवत के श्रवण से समस्त मन्देहों का निराकरण हो जाता है परीक्षित के उदाहरण से स्पष्ट है—

मान द्यौस निस्पृह भुक्त गयो ।

राजा सुनि सन्देह नसायो ।^२

भागवत धर्म के मूलमंत्र अनन्य भक्ति का अवलम्बन किये बिना जीव सम्भव नहीं है—

बिना अनन्य न मर्मो जानै । जाग जान गुन पिता पहिचानै ।

भक्त सकाम वनिक हूट ठानै । जौ नौ बीजू निज वेद बखानै ।^३

नवधाम्भक्ति—भगवान् की अनन्य प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए श्रवण कीर्तन आदि सबधाम्भक्ति द्वारा पहले विषय-विकार का नाश आवश्यक है—

यहै उपाय सुन्यो मन्तन वै हरि सेवज सुख जीजै ।

श्रवण कीर्तन भक्ति भागवत नौ प्रकार रति कीजै ।

विषय विकार विरचि रचि मन क्रम, वचन रचन चिन दीजै ।

श्री बिहारिनदास प्रभु सदा सजीवन वदन कमल रम पीजै ।^४

नाम महिमा—नाम की अमोघशक्ति का उल्लेख भागवत के अर्जा के नाम निर्वेध पूर्वक इन्होंने किया है—

हरि जस यावत सब उषरे ।

वीर अमम अकूलीन विमुख सब केते मनौ बुरे ।

नाक छीषा जाट जुलाहा सन्मुख जाय बुरे ।

X X X

विषय असावधान सुत के हित हूँ अखरा उचरे ।

श्री बिहा/ीदास कोटि अजामिल ने पतित पवित्र करे ।^५

१ हरिदासवंशानुचरित्र पृ० ६२

२ वही, पृ० ३५

३ वही, पृ० ३५

४ वही, पृ० ५६, ५७

५ वही, पृ० ५७

वैराग्य—मनुष्य की वृथावृत्ति और भगवद् विभूतवा को निन्दा करने हुए के कहते हैं—

बहुत कुटुम्ब बड़ा छह गेही : सब मृगा बिन श्याम मनेही ।

मृतक समाप्त प्राण बिनु प्राणै । निहि निहार सखी साँभरानी ।^१

श्रीलागान—इन्होंने केवल श्रीकृष्ण की निकुञ्ज-केलि-श्रीला को ही अपनी रस-सावना का परम ध्येय बनाया और वृन्दावन की माधुर्य लीला का गान किया—

नवल वसंत नवल वृन्दावन, नव पशिमल जनि मुख तरुनि प्रन ।

नव पराय अनुराग मयन मन नव विहार यनि दल नमिक जन ।^२

श्री हरिदासी सम्प्रदाय के अन्द कवि—माधुर्योत्तमता के मार्ग को प्रकट करने वाले अनेक प्रतिष्ठ कवि हरिदास के सम्प्रदाय में हुए हैं, जिनमें महाशयक (जन्म सं० १६०० वि०) सरसदेव (जन्म सं० १६११ वि०) नरहरदेव (जन्म सं० १६४० वि०) रतिकदेव (जन्म सं० १७०१ वि०) तथा ललितकियोचित (जन्म सं० १७२३ वि०) उल्लेखनीय हैं । इन्होंने श्रीमद्भागवत को मधुर भक्ति के प्रतिष्ठित साहाय्य अर्थात् निदानों का भी निरूपण किया है ।^३

४—चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण अथ हिन्दी कवि

श्रीगदाधर भट्ट—(१६वीं सदी विक्रम का उत्तरार्ध) चैतन्य के सपकासीर और उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हिन्दी-कृष्ण-भक्ति कवियों में श्रीगदाधर भट्ट का नाम प्रथम है । क्योंकि चैतन्य सम्प्रदाय के अनेक भक्तों ने संस्कृत में ही अपनी काव्य रचना की है । भट्टकी स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, संस्कृत में रचना करते थे । उनकी हिन्दी रचना की तत्सम संस्कृत पैदावृत्ती कुछ समस्त शैली में हुआ करती थी । एक उदाहरण देखाय—

नमो नमो जय श्रीगोविन्द ।

शान्तिमय-ब्रजे-सरस-सरोवर प्रकटित विदल-लील-शरद्वन्द ।

जसुभाति-नीर-नह-निच-पौषित, नव नव-आनन्द-आयु मुनिलन्द ॥^४

किन्तु दाक्षिणात्य ब्राह्मण होने पर भी अपने इष्टाराध्य की जन्मभूमि की भाषा (ब्रजभाषा) से इन्हें अनुराग था और ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस रस रचना करते थे ।

श्रीमद्भागवत-कथा-भावन—श्री गदाधर भट्ट के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे महाप्रभु श्री चैतन्य को श्रीमद्भागवत की कथा सुनाया करते थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तमाल के विम्बलित्वित छन्द के आधार पर इस बात का समर्थन किया है—

१ हरिदासवंशानुचरित्र १० ६२

२ वही, पृ० ४४, ४७

३ द्रष्टव्य, हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ६६-६८ तथा ललितप्रकाण्ड रचयिता सप्तश्री शरद्वन्द ।
द्वितीय उल्लास पृ० १२-१०४

४ ब्रजमाधुरीमार, पृ० २०, २१

५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १२२

सञ्जन सुहृद् सुसील बचन आरज्य प्रतिपालैः ।
 निरमत्सर निष्काम कृपा कर्षणा कौ शालैः ।
 अमन्य भजन दृढ करत धरयो वपु भक्तन काजैः ।
 पश्य धरम कौ सेतु विदित वृन्दावन गाजैः ।
 भागवत सुधा बरघै वदन, काहूकौ नाहित दुखद ।
 भुग निकर गदाधर भट्ट अति सङ्गहिन कौ लागै सुखद ।^१

अतः स्पष्ट है कि श्रीगदाधर भट्ट की भक्तिपरक रचनाओं पर श्रीमद्भागवत की भक्ति-पद्धति का प्रभाव पड़ा है। चैतन्य सम्प्रदाय में हरिनाम सकीर्तन का जो विधान है उसका आधार श्रीमद्भागवत है। इसीलिए गदाधर भट्ट ने भी नाम महिमा का भाव किया है।

नाम महिमा—

क — हरि हरि हरि हरि रट रसना मम ।

धीवत खाति रहनि निधरक भइ, होत कहा लोकोँ अम ।
 तैं तो नुनो कथा नहि मो से उधरे अमित महाधम ।
 ध्यान ध्यान जप तप तीरथ जल, जोष जाग बिनु सजम ।
 हेम हरन द्विज द्रीह मान मद, अरु पर गुरुदारगम ।
 नाम प्रताप प्रबल पावक के होत बतात सलभ सम ।
 इहि कलिकाल कराल व्याल विष, ज्वाल विषम भोये हम ।
 बिनु इहि मंत्र गदाधर कौ क्यों, मिटि है मोहमहातम ।^२

ख — है हरि तैं हरिनाम बड़ेरो, ताकोँ मूढ करत कत भेरो ।

प्रगट दरस सुवकुंदहि दीन्हों, ताहू आयुसु भो तप केरो ।
 सुतहित नाम अजामिल लीन्हों, या भवमें न कियौ फिरि फेरो ।^३

उक्त उद्धरणों में जहाँ एक ओर नाम की असीम अधोघनाशिनी शक्ति की ओर संकेत किया गया है, वहाँ दूसरी ओर श्रीमद्भागवत के मुचुकुन्द और अजामिल के उपाख्यानों के संकेत द्वारा श्रीहरि से भी श्रीहरि-नाम को श्रेष्ठतर बताया गया है।

लीलागान—श्रीमद्भागवत में अनेक पात्रों द्वारा श्रीकृष्ण की लीला के गान की चर्चा की गई है। गोपियाँ, गोप सभी अवकाश पाते ही—कि बहुना—सदैव ही—गृह-कर्म में संलग्न होने पर भी कृष्ण का मुखगान करते रहते हैं।^४ नन्द पत्नी यशोदा भी इसका अपवाद नहीं है। भागवत में अंकित यशोदा के निम्नांकित चित्र का गदाधर भट्ट ने पुनरंकन किया है। दोनों चित्र तुलनीय हैं। पहले श्रीमद्भागवत का चित्र देखिए—

यानि वानीहू गीतानि तद्बालचरितानि च ।

दधनिर्भन्यने काले स्मरन्ती तान्ययायत ।

१ भक्तवत्सल (भक्तिभूषान्त-व्यतिकर) पृ० ७८६

२ अजमलपुरीसर, पृ० ८१

३ वही, पृ० ८२

४ श्रीमद्भागवत १०. ४४. १३

क्षीमं वासः पृथुकटितटे विभ्रती सूदनहम् ।
 पृथस्नेहस्तुतकूचवुसं जातकन्यं च सुश्रुः ।
 रज्ज्वाकर्षं श्रमसुजघनम् कंकणौ कुण्डले च ।
 स्वित्नां वमर्षं कबरश्चिगधम्पासती निर्ममम्ब ॥^१

अन श्रीमदाश्वर भट्ट द्वारा चित्रित यद्योदा के दिव्य रूप की भाँसी ली कीर्ति—

दाघि मधन नद तरिख राती करिख सुल हुनमान ।
 नील नीरद अंग दिव्य दृक्कन वर उरिमान ।
 केस कुनुमनि किरनि मति ताटक कलकल कान ।
 स्वेद कन मन बदन विषु पर लुघा बिन्दु समान ।
 नेत करघत हरष वरघत बनय किकिनि कवध ।
 पय पयोधर लजल चात्तक कृष्ण पिङ्गल निधान ।
 सहस आनन कहि मकै नहि जासु भाग्य समान ।
 जघत बन्ध गोविन्द-मता, गदाधर करि आनन ॥^२

बासलोला—कृष्ण की भाषवतीय बास-लोला का बर्णन श्री भट्टजी ने किया है—

दारै तै रोक्कल मोपिन के मूने धर तुन डाटे ह्ये ।
 पठै तहाँ निसंक रक लीं दाघ के भाजल वाटे ही ।
 आपु कहाइ बना को दोटा भात कुवन लीं मनिमी ही ॥^३

रासलोला—श्री गदाधर भट्ट ने श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण के चारह रसों का वर्णन किया है—

आजु मोहन रची राम रस मण्डली ।
 उदित पूरन निशानाय निमन दिसा, देखि रिनकर सुगा सुमग पुजिन स्थली ।
 बीच हरि बीच हरिताञ्छ-माला बनी तनरापिच्छ जनु कलक कवनी रवी ।
 × × × × ×
 चरत बिन्वास कपूर कुकुम धूरि, धूरि रहि चागि विमि कुंजकन की बली ।
 × × × × ×
 गान रस तान के जान देख्यो बिस्व जान अमिमान मुनिध्यान रति रलपनी ॥^४

यमुना-महिमा—कृष्ण लीला के उपकरणों में यमुना का महत्त्व देखिए—

जमुना देवी कौं न मताई ।
 नाम रूप गुन लै हरि लू कौ, न्यारी अपनी जाल चलाई ।
 अपबस देस कियो आता कौ, उनहि परसि कोट तहाँ न जाई ।
 जे तन तजत तीर तुम्हरे तै, उगत-किरन में भैल ललाई ॥^५

श्रीमद्भागवत १०. ६. २, ३

ब्रजमाधुरीमार, पृ० ८४

वही, पृ० ६१

वही, पृ० ८७

वही, पृ० ६०

रूपमाधुरी—मोहन बदन की सोमा ।

जाहि देखत उठति सखि आनन्द की सोमा ।

नैन धीर धश्रीर कछु कछु अभिनसित राते ।

प्रिया आनन चंद्रिका मधुपान रस भाते ।

× × ×

ललित लोल कपोल, कुण्डल मधुर मकराकार ।

जुगल सिन्धु मीरामिनी, जनु तचत नट चटवार ।

× × ×

लग्यो मन ललचाइ तारो टरत नहि टारयो ।

अमित अद्भुत माधुरी घर 'मदाघर' वारयो ।^१

संध्या समय गोचारण से लौटते हुए, वेणुवादनरत, गोरजच्छुरिअल गोप-बाल-मण्डली से अमुगत, दिव्य पीताम्बरधारी इयामसुन्दर के इस जीवन्त भी मट्ट की श्रीमद्भागवत के ऋणी हैं -

आजु कजराज को कुँवर बनतै बन्यो,

देखि, धावत मधुर अघर रंजित बेनु ।

मधुर कल मग्न निज नाम मुनि सवन पुट,

परम प्रमुदित बदन फेरि, हँकति धेनु ।

मद विषुगित नैन, मन्द विहँसनि बैन,

कुटिल अलकावली ललित गोपद रेनु ।

भ्यात बालनि जाल करत कोलाहलनि,

सुँग दल ताल धुनि रचत संचत चैनु ।

मुकुट को लटक, अरु चटक पटपीत की,

प्रकट अंकुरित गोपी मनहि मँनु ।

कहि 'मदाघर' डू इहि न्याय, अज सुन्दरी,

विमल वनमाल के बीष चाहतु ऐँनु ॥

कुलनीय—वत्सलो व्रजस्थां यदगध्री वन्दमानचरशाः पवि वृद्धः ।

कृत्स्नभोजनमुपोह्य दिनान्ते गीतबेसुरनुकेडितकीतिः ॥

उत्सवं अमरुत्वारि टंशीनामुन्मयन्सुररुजश्छुरित्सक् ।

दित्सप्रेति सुहृदाशिष एष देवकीवठरभूरुडुराजः ॥

मदविषुगितनोचद ईषन्मानदः स्वमुहदां वनमाली ।

बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥^३

१ प्रजमाधुरीसप्त. पृ० ८०

२ इही. पृ० ८६

३ श्रीमद्भागवत १०. ३५. २२. २३. २४

वेणुमाधुरी—गदाधर भट्ट मुरली की निरबनोहनी स्वयंभुवी का अलौकिक रूप प्रकाश करते हैं—

अधर गिनिधरन के लामि के जसत-
चिजयी भई माधुरी मुरलिकर काकली ।^१

श्रीकृष्ण का परब्रह्मरूप परब्रह्म परमेस्वर श्रीकृष्ण की महिमा को वेणुमाधुरी बताते हुए भट्टजी कहते हैं—

बनौं कहु जयामति मेरी, केहूँ पाहूँ क पाउं तो ।
भट्ट गदाधर प्रभु की महिमा सावन ही पर आबै हो ।^२

गोपी प्रेम—चैतन्य सम्प्रदाय की आचार्य भूमि ही गोपियों की मधुर-भक्ति-काव्यना है। अतः इस विषय के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं : किन्तु यहाँ केवल स्यामसक्ति एक तन्मयनभक्ति का एक प्रतिष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जिसे सुन्दर रूप स्यामस्य के प्रतिष्ठ आचार्य श्री जीव-गोस्वामी स्वयं ही संघे थे—^३

सखी हीं स्याम-रस रंगी ।
देखि विक्रम यकी वह मूरति, मूरति मति पगी :
मग हुनो अपनी लपनी मो, सोइ रही रस खोई :
जानेहुं आने दृष्टि परै सखि नैकू न न्यायी रोई ।
एक जु मेरी श्रीखचन मे निमि होम रह्यौ करि भीत ।
गइ चराबत जान मुन्यौ सखि, सो यौ कन्यौय कोन ।
कामौं लह्यौ कोन पनियावै कोन करै बकबाद ।
कौंसे कौं कहिबान 'गदाधर' दूरे की सुर स्याद ।^४

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भास्वत के निरबनोहनी और सख्य पण्डित प्रवर श्रीगदाधर भट्ट की रचनाओं के अन्तर्गत में श्रीमद्भास्वत की भाव-मार्गिक विपरीत मुखर हो रही है।

२—श्रीमूरदास मदनमोहन (रचनाकाल सन् १५२०—१९००) चैतन्य सम्प्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध एवं उत्तमोत्तम कृष्णभक्त हिन्दी कवि श्रीमूरदास-मदनमोहन हैं। वे जात्या ब्राह्मण थे और अकबर के शासनकाल में अहमदनगर के अमीर थे। एक बार एक बड़ी धनराशि, जो अकबर के राज्यकोष में जमा हुनी चाहिए थी, इन्होंने बाबु-सत्कार में व्यय करदी और विरक्त होकर वृन्दावन चले गये : वे माधुर्यभक्ति के शक्ति से और तन्मयीभाव से कविता करते थे। इनके अनेक पद मुरसाधर में मिले हुए हैं। इनके इष्टदेव 'मदनमोहन' श्रीकृष्ण थे। अपने नाम 'मूरदास' के साथ इन्होंने 'मदनमोहन' नाम इतना सलग्न कर लिया कि वह फिर एक ही नाम बन गया और : मदनमोहन

१ वेणुमाधुरीसार पृ० २८

२ वही, पृ० २२

३ वही, पृ० ७८

४ वही, पृ० ७७-७८

मदनमोहन' नाम से ही प्रख्यात हो गए।^१ इस मत का समर्थन श्री राजाजी के इस उक्त से होता है—

गान काव्य गुन रासि सुहृद सहचरि-भवतारी ।
 राधाकृष्ण उपासि, रहस-सुख के अधिकारी ।
 नव रस मुख्य सिंगार विविध भक्ति करि गायी ।
 बदन उच्चरत बेर सहस पायन हूँ धायी ।
 अंगीकरहि की भववि ज्यों आख्या आता जमल ।
 श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम-सुखला जुरि अटल ॥^२

उक्त छुप्पव से सूरदास मदनमोहन की उपासना-पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है। चौथे सम्प्रदाय में शृंगार रस को 'उज्ज्वल रस' कह कर माधुर्य भक्ति में उन्नत विशेष उपयोग किया गया है, और मूरदान मदनमोहन ने भी इसी लिए श्रीभक्तभक्त के दिव्य शृंगार-रस का विविध प्रकार से गान किया है। अनन्य भक्त-भक्ति और इष्ट की महत्ता आदि सामान्य भक्ति सिद्धान्त भी इनके पदों में प्राप्त होते हैं—कतिपय उदाहरण देखिए—

अनन्य शरणागति—

मेरी भक्ति तुमही अनेक तोष पाऊँ ।
 चरन कमल भक्तमनि पर बिष-मुख बहाऊँ ।
 घर घर जो डोलीं तो हरि तुम्हें लजाऊँ ।
 तुम्हारे कहौं कहीं कौन की कहाऊँ ।
 तुमसे प्रभु छाँड़ि कहाँ दीनन को पाऊँ ॥^३

श्रीलालमोहन (बाललीला)—सागवतीय बाललीला को कवि ने किस प्रकार आत्मकान्त कर अनेक लीलाओं का समुक्त रूप में चित्रण किया है, वह निम्नलिखित पद में स्पष्ट है—

खेलिए आँसु छजन मगन कीजिए कलेवा ।
 लीके ते सारी दधि उलटते काँठि बरी,
 पहिरि लेल 'संभुली' फेटा बाँधि लेहु मेवा ।
 आँसु सँग खिलन जाहु खेलन मिस भूषन त्याहु,
 कौन परी ध्यारे निसदिन की टेवा ।
 मूरदास मदनमोहन घर में ही खेली प्यारें ललन,
 भोवत चकडोर देहों हंस चकौर परेवा ॥^४

१ इति, पृ० १०२

२ भक्तमल (भक्तिसुधारवादावतलका) पृ०

३ भक्तमाली सार, पृ० २०७

४ भक्ति पृ० १०८

गौर गोविन्द नवलकिशोर सखी पितचोर,
ठाके हैं हृदय की सहियाँ ।
अधर धरे सुरभी कंचे सुर निरई सुनि लोहि तुसाकत हैं
माई रो तू काज कहलि मरिणी ।^१

रूपमाधुरी - श्रीकृष्ण की वेषभूषा: गौर सौन्दर्य का यह चित्रण ही परमपदा-
यत है—

मधु के मतवारे स्वाम लोलो प्यारे कजहैं ।
सोस मुकूट लटा छुटी घोर छुटी अजहैं ।
सुर नर मुनि द्वार ठाके दरस हेतु कजहैं ।
नासिका के मोली सीहैं बीच लान सलहैं ।
कटि श्रीनाम्बर नुरली कर सवन कुण्डल अजहैं ।
'सुरदास मदनमोहन' वरज देही अजहैं ।^२

नेसुमाधुरी - सुरभी के इस विध्वस्त्रिमोहन स्वर के अचल के लिए सुरदास भक्त-
मोहन ने अवश्य ही श्रीमदभाषवत का अचल किया होगा—

चलीगी सुरभी मुनिए कान्ह केशहैं बभूना नीर ।
तजि लोकनाथ रूप की कर्णि मुखवत की नीर ।
जमुना जल शक्ति भयो वदह न पीवैं क्षीर ।
सुरविमान्त शक्ति भए शक्ति कोकिल नीर ।
देह की सुधि बिमरि नई बिसरी लन की नीर ।
महत तात बिसरि भए बिसरे बाबक नीर ।
सुरभी सुनि मधुर बार्जे कंचे की धरौ नीर ।
सुरदास मदनमोहन जानत हो वर नीर ।^३

(तुलसीय - श्रीमदभाषवत १० २१, केसुवीय लका १५, पद सुमशरीर)

कौतुक्य सम्प्रदाय में 'रसिक प्रमथभाष' के अचलित श्रीमदभाषवत नवलकिशोर
कान्ह केश कंचे की रूप हैं । विक्रमीय १६वीं शती के लक्ष्मीधर ने इस का मुद्रण करा-
या है । पदा के लक्ष्मीधर के अचल के लिए दो नवः १० २१ के अचल का प्रमथ
प्रियायः गया है । अनेक नवः का अचल है । १० २१ के अचल भी गौर है ।

- १ रूपमाधुरीसख, पृ. १०६
- २ कही, पृ. १०६
- ३ कही, पृ. १०६

निष्कर्ष

कार वृन्दावन के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों के मुख के उद्धरणों से श्रीमद्भागवत का प्रभाव-निरूपण किया ग स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत के सामान्य और विशिष्ट को उत्तम कवियों ने अपनी भावना और शक्ति के अनुसार अ विशिष्ट तत्त्वों का ही है : अष्टछाप के किन्हीं कवियों की में से भी कई एक ने श्रीमद्भागवत के शब्दों, भावों और त्यों ग्रहण किया है। यदि हम स्थानीय और कालान्त तत्त्वों को दूर करके—देश-काल निरपेक्ष होकर इन सम्प्रदायिक के मत्त्व को ही अपने पर्यालोचन की परिधि बनाएँ तो ही उस वृत्त का केन्द्र-स्थानीय पाएँगे।

अष्टम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं सम्प्रदाय-मुक्त कृष्णभक्त हिन्दी कवि

विक्रम की सोलहवीं शती के उत्तरार्ध तक अनेक प्रसिद्ध वैष्णव कवियों का प्रख्यात भक्त कवियों द्वारा श्रीमद्भागवत को एक महान् भक्ति-ग्रन्थ के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा दी जा चुकी थी। इस समय तक यह ग्रन्थ अपनी ख्याति की परम सीमा पर पहुँच चुका था। विशेषकर कृष्णभक्ति के प्रतिपादन के रूप में जो श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ ग्रन्थ की इतनी मान्यता नहीं थी, यह पूर्व विद्वेष्टित सिद्धांतों के आधार-पर अग्रदिग्ध रूप से कहा जा सकता है। अपनी मधुर भावना पूर्ण चित्रकारी-तत्त्व-राशि के कारण जो संभव रामभक्ति की अर्थात् कृष्णभक्ति का स्वर ही अधिक उच्च हो सका था। इसका श्रेय कृष्णभक्ति के प्रचारक भाग्यक वैष्णव आचार्यों को है। मध्यकाल में रामानन्द के उद्योग रामभक्ति का प्रचारक कोई उत्तम समर्थ वैष्णव आचार्य नहीं हुआ। इसके विपरीत कृष्णभक्ति के क्षेत्र में श्री बल्लभशास्त्री, चैतन्य महाप्रभु, और हितहरिकृष्ण ने अतृप्तपूर्व कार्य किया था। श्री मुरदास आदि अष्टद्वयी कवियों और श्री हरिदास आदि अनेक रसोपासक कृष्ण भक्त कवियों की जमीन हनु उपन्यास बहुत काल तक चलती रही, वंशी तुलसीदास जैसे समय रामभक्त कवि की परम्परा नहीं चल सकी। कारण यह था कि दत्तात्रेय भारतवर्ष के समस्त वायुमण्डल में श्रीकृष्ण की प्रेमा भक्ति के प्रबल प्रतिपादक रूप श्रीमद्भागवत का स्वर बूझ रहा था। बालक-हिमाचल और द्वारका से असम तक समस्त प्रादेशिक भारतीय भाषाओं में श्रीमद्भागवत-नुमोदित कृष्णभक्ति का साहित्य रचा जा रहा था। सामान्यतया दत्तात्रेय प्रत्येक कवि, जिसमें भक्ति का कुछ भी अंकुर विद्यमान था, श्रीमद्भागवत से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परिचित था। जो कवि किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं थे, किन्तु कृष्ण के उपासक थे, अथवा सामान्यतया भगवद्भक्त थे, उन्होंने भी भक्ति का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों में से अनेक ने श्रीमद्भागवत के सामान्य धर्म-मत, ज्ञान, वैराग्य और प्रेम-तत्त्व को अग्रतापूर्वक। अनेक कवियों ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद अथवा उसके भक्ति-स्वात्मक प्रसंगों का वर्णन किया। इनमें कृष्ण लीला प्रधान दशम स्कन्ध और सामान्य ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति प्रधान एकदश स्कन्धों के अनुवाद सबसे अधिक संख्या में हुए। स्फुट प्रसंगों में रामचन्द्राख्या, कविमञ्जरी, प्रह्लादचरित, सुहामाचरित, ध्रुवचरित, यज्ञेन्द्रमोक्ष, अजापित्तोपाख्याल आदि उल्लेखनीय हैं। मीरा, रसखान आदि कवियों में तो गोपी प्रेम के पाम्भीर्य का स्पष्ट रूप में अनुभव किया जा सकता है। रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम चिरहासिक के अनेक उदाहरण

प्रतियान्त्रक उदाहरण भी पद्यम मन्थ्या में प्राप्त होत है। आगामी पक्तियों में हम कुछ प्रमुख कृष्णभक्त हिन्दी कवियों की कतिपय रचनाएँ प्रमाणास्वरूप उद्धृत कर रहे हैं। कवि-चयन में हाफ्ताकाश आलोच्य काल के प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कवियों को ही चुनने का रहा है।

मीराँजाई—(सं० १५५५-१६०३ वि०) मध्यकालीन सत और भक्त कवियों की चम्परा में मीराँ एक ऐसा विचित्र व्यक्तित्व रखती हैं, जिसका समानाधिकरण दुर्लभ है। उन्हें जहाँ एक ओर निरुंण और निराकार के ज्ञान की निष्ठा है, वहाँ सगुण और साकार की माधुर्य-भक्ति की तन्मयी अवस्था भी परम दर्शनीय है। उनके सगुण और साकार की उपासना वाले पद ही उनके व्यक्तित्व का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका जन्म सगुण और साकार के आग्रह का युग था। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३५-१५७७) मद्भागवत चैतन्य (सं० १५४२-१५६०) श्रीहिनहर्ग्विंश (सं० १५५६-१६१०) श्रीहरिराम व्यास (१५६७-१६३५) आदि समर्थ वैष्णव आचार्यों और सगुण भक्तों की सामाजिक थीं, जिनकी भक्ति का आधार श्रीमद्भागवत था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही कि मीराँ जैसी परम उदार सारआहिणी वृत्ति की भक्ता उक्त महानुभावों से प्रभावित होंगी। विद्वानों ने इसकी सम्भावना पर सहमत प्रकट की है।^१ श्री नाभाजी, व्यासजी प्रुदासजी^२ और प्रियादासजी^३ ने मीराँ की परम प्रेमरूपाभक्ति की चर्चा की है। नाभाजी ने स्पष्ट ही कह दिया है कि मीराँ ने कलियुग में गोपी-प्रेम को प्रकट किया और विचित्र-निर्वच की सर्वदा को पूर्णतया तिलांजलि दे दी।^४ श्रीमद्भागवत में परम भगवद्भक्त की तन्मय यलदशु दशा, भाव-विभोरता, भगवद्-विरह-व्यथा और सयोग के आनन्द का चित्रण मिलता है,^५ गिरिधरलाल की सन्निधि में पग में चुँवरू बाँधकर नाचती हुई मीराँ के गीतों में स्पष्टतया उसकी भूलक दिखाई देती है। कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

सामान्य-भक्ति—नाम जप, संकीर्तन, भगवद्गुणगान, सत्संग, आदि के विषय में मीराँ के विचार भागवतानुमोदित हैं। उनका यह पद देखिए—

१. मीराँजाई की पदावली, (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १६

२. भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक), पृ० ७१३

३. बही, पृ० ७१४-७२२

४. सईम शेरफिखाने प्रेम प्रथम कलिजुगई दिखावौ ।
निरअंकुरा भति निबर, रामिक कम रसना मायौ ।
दुष्टनि दोष विचारि सुखु को उहिम कीवौ ।
हार म बोकै मदी, बरत अमृत ज्यौ पीवौ ।
भक्ति जितान बजाव कै, काहूँ नै नाहिंन लबी ।
लोक लख कुक शंकरा, तबि मीराँ गिरिधर मजी ।

भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक), पृ० ७१३

५. भगवद्भक्त प्रकटे यस्य चित्तं स्वल्पभीक्ष्णं इत्यति क्वचिच्च ।

विक्रम उद्गमति नृपते च, मद्भक्तिको भुवनं बुनाति । श्रीमद्भागवत ११. १४. २४

माई न्याँ बोविन्द, गुण मास्वी ।
 चरणाभिन्त रो नेम सकारे निन उठ करसणु शास्वी ।
 हरि मंदिर माँ निरत करावी धूँधरदा यमकास्वी ।
 स्वाम नाम रा मीक चलास्वी भोभायर तर जाववी ।
 यो मनार वीह रो काँटो, वेल धीतम अटकास्वी ।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, कुल बाकी मूक पास्वी ।^१

लोलानान — मीराँ ने कृष्ण की जान-बीना, वृन्दावन की प्रेम बीना, कालिय-वधन,
 र हरण, वेणुवादन आदि का वर्णन किया है वातावरण जो भी भावमय-रामरसमय है —

बाललीला —

जागो बंसीवारे ललना जसो मोरे प्यारे ।
 रजनी बीती थोर भयो है, धर-धर लुने किकारे ।
 बोधी दही मधत मुनिवत है, कसना के यमकारे ।
 उठी लालजी मोर भयी है, मुर नग ठाडे झारे ।
 खाल बाज सब कण्ठ मुलाहल, जलजल लख उवारे ।
 माखन रोटी क्षय में लीन्हौँ सउवन के रजवारे ।
 मीराँ के प्रभु गिरधर-नागर सरस थायी कूँतारे ।^१

कालियदहन —

कमल दल लोचलां ये नाथ्यां काज नृजंग ।
 कालिदी दह नाम नाथ्यां, काज कण-कण किल करत ।
 कूदां जल अन्तर ना डरुयो वे एक बाहु छलन ।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर प्रजबलतारी के कत ।^१

वृन्दावन-साहात्म्य - वृन्दा (तुलसी) के वन का ही विशेषण है । श्रीमद्भागवत
 तुलसी का बहुत साहात्म्य है । मीराँ ने उसे पहचाना है —

आली म्हायें लाया वृन्दावन नीसौ ।
 धर-धर तुलसी उकर पुजौ, हरसहा मोदिब जो कौ ।
 निरमल नोर बह्या बमरां माँ भोजरा दूष इही कौ ।
 रतण सिधासख धाय बिराज्यां मुगट धरुवौ तुलसी कौ ।
 कृजन कृजन फिर्या सावरा, सबद मुध्या मुरवी कौ ।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर-नागर प्रजख बिया तर कीकी ।^१

रूपमाधुरी—मीराँ के काव्य के अंग-विव्यास के अंग-विव्यास-वा-मीराँ
 नामवर्ण, ललित अंग-विव्यास और वेद-... अंग-विव्यास-वा-मीराँ

साँवरो नंद-नंदन दीठ नद-...
 झार्यां सब लोकलाज नाम ...

मीराँबाई की पदावली (सम्पादक, श्री परहुर : ... : १० : १०
 वही, पृ० ११०
 वही, पृ० १४०

मीर बन्दरका किरौट मुगट छब मोहाई ।
केभर रो निलक भाल, लोचन सुखदाई ।
कुंडल भलका कपोल अलका लहराई ।
मीखा लज सर वर ज्यों मकर मिलन चाई ।
नटवर प्रभु भेष धर्याँ, रूप जग लोभाई ।
गिरघर जनु अंग-अंग, मीना बलि जाई ।^१

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व—मीरा ने स्पष्टतया तन्द-यगोदा के पुष्य से पुत्र रूप में उत्पन्न विश्वविनोद नरदेहधारी गोकुलनाथ ब्रजलीलानायक, ब्रजवनिताओं के प्राणाधार, कृष्ण को अविनाशी, परब्रह्म परमेश्वर माना है—

म्हारी गोकुल रो ब्रजवासी ।
ब्रजलीला लख जख मुल पावाँ ब्रजवखताँ सुखरासी ।
साच्याँ गावाँ ताल बबावाँ पावाँ आँसाद हासी ।
खंड जसोदा पुन री प्रगट्याँ प्रभु अविनासी ।
पीताम्बर कट उर बँजखताँ, कर सोहाँ री बाँसी ।
मीराँ रे प्रभु गिरघरनाबर, दरसख दीज्यो दासी ।^२

गोपीप्रेम—मीराँ स्वयं गोपी-भाव से भावित हैं, अतः उनकी समस्त रचना ही एक प्रकार से कृष्ण-प्राणा गोपी का प्रेमोद्गार ही है। गोपियों की जिस रूपासक्ति, दास्या-सक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, परम विरहासक्ति आदि का उल्लेख पहले किया जा चुका है, वे सभी मीराँ के काव्य से प्रभूत मात्रा में बिद्यमान हैं। सब प्रकार के लोक परलोक के विधि निषेध का त्याग गोपी-प्रेम का मूल-मंत्र है और मीराँ में यह भाव सर्वाधिक प्रबल है—

रूपासक्ति—

निपट बंकट छब अटके ।
म्हारे नैशा निपट बंकट छब अटके ।
देख्याँ रूप मदन-मोहन री, पियत पियुख न भटके ।
दारिज भवाँ अलक मतवारी नैण रूप रस अटके ।
देख्याँ कट टेड़े करि मुरली, देख्याँ पाग लर लटके ।
मीराँ प्रभुरे रूप लुभाखी, गिरिघर-नगर नट के ।^३

दास्यासक्ति—

हरि म्हारा जीवण प्राण अघार ।
और भासिरो एण म्हारा खँ विण, तीनुँ लोक मँकार ।

१ कहीं, पृ० १०४

२ कहीं, पृ० १०२

३ कहीं, पृ० १०३

ये बिखर गये जग हों सुहावों निरखी सब संसार :
मीराँ रे प्रभु दानी रावली, मोख्यो खेक तिहार ।^१

आत्मनिवेदनासक्ति—

स्वामिसुन्दर पर वारी जीबहा डारों ।
वारे कारख जयवख स्वामों लोखलाय सुपठारों ।
वें देखी बिखर कन हों पहली नैखः कबली वारी ।
क्यासूँ कहवाँ कोख बुझवौ कठख बिरहरी वारी ।
मीराँ रे प्रभु दरलख दीख्यो वें चरखी आधारा ।^२

परमविरहासक्ति—

स्वाम मिलखु रे काज उखी, डर आरति जायो ।
तलफ तलफ कल बां पड़ा विरहानन पायी ।
निखदिन पख तिहारों भिन्न रो पमक ला पल भर जायो ।
पीन पीव ग्हाँ रटाँ रेल दिन मोक लाज कुल स्वामी ।
विरह भुखगस डख्यो कालका बहर इलाहक जागी ।
मीराँ व्याकुल भति अकलाखी स्वाम जमया जागी ।^३

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने मीराँ को प्रमुख कवयित्री हैं। जिसकी भक्तिभावना अत्यन्त व्यापक है और अपनी बहुधनता एक तत्कालीन वैष्णव मन्त्री एवं शास्त्रियों के सत्संग से जिसको श्रीमद्भागवत का ज्ञान सम्पन्ना में प्राप्त हुआ था। प्रियदासजी ने मीराँबाई का श्रीजीवगोस्वामी के सम्पर्क में जाने का उल्लेख किया है।^१ शीरीष शास्त्रार्थ श्रीमद्भागवत के कितने भक्त और उपासक थे, वह विद्वज्जनों से अलग-गले नहीं। उनके सम्पर्क से मीराँ को मानवतीय-भक्ति एवं कृष्णजीवा के उन प्रसंगों का ज्ञान प्राप्त होता सहज अनुमेय है। एक उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि मन्त्र-परायण-भक्तियों की अतिवंचनीय महिमा का उपासन करने के लिए मीराँ ने श्रीमद्भागवत के कृष्णजीवा प्रसंगों एवं अन्य कथा प्रसंगों का किस कोमल के साथ उपबोध किया है—

मरा वें परस हरि रे चरख ।
सुमग भीतल कौवल कोवल, बरतखवाला हरख ।
इस चरख प्रह्लाद परस्यो इन्द्र पदवी बरख ।
इस चरख ध्रुव अटल करस्यो नरख असरख सरख ।
इस चरख ब्रह्मांड भेदयो, मलमिखी सिरो भरख ।
इस चरख कालिया नाथ्या, गोपलीला करख ।

४ वही, पृ० १०२

५ वही, पृ० १३०

६ वही, पृ० १२१

४ मन्मथ (भक्तिसुधास्वादतिलक) पृ० ७२१, २२

इस चरण गोरधन चार्यों नरब मधवा हरण ।
दासि बीरौ लाल गिरिवर, अग्रम तारख तरण ।^२

लालचदास—(विक्रमीय १६ वीं शती का पूर्वार्ध) यद्यपि लालचदास एक कृष्णभक्त कवि के रूप में कोई प्रसिद्ध और विज्ञेय उल्लेखनीय व्यक्ति नहीं हैं, तथापि हमारे आलोच्य काल में प्रसिद्ध अष्टछापी कवियों के समकालीन होने के कारण और उन्हीं के समान श्रीमद्भागवत की कृष्णलीला का गान करने के कारण महत्त्वपूर्ण है। लालचदास का महत्त्व एक अन्य कारण से भी है। इन्होंने कृष्णचरित ब्रजभाषा में न लिखकर अवधी भाषा में लिखा है। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—१—हरिचरित और २—‘भागवत दशमस्कन्ध भाषा’ जो क्रमशः सं० १५८५ और सं० १५८७ में लिखे गये थे। फ्रांसीसी पंडित भासाँद तासो ने लालचदास के ग्रंथ ‘भागवत दशमस्कन्ध भाषा’ का उल्लेख किया है और फ्रेंच भाषा में उसका अनुवाद होने की भी खर्चा की है।^१ निम्नांकित चीपाई से कवि के नाम, निवासस्थान और ग्रंथ-रचना-काल का पता लगता है—

पद्रह सौ सत्तासी जहिया । समय विलंबित बरनौ तहिया ।
भास अमाह कथ अनुसारी । हरिदासर रजनी उजियारी ।
मकन भन कंह नावाँ माया । बलिवलि जहौ जादवनाया ।
गायबरेली बरनि अवासा । लालच रामनाम कं आसा ।^२

नरोत्तमदास—भागवतीय भक्तिभावना एवं कथावस्तु—(स्थितिकाल वि० सं० १६०२) अत्यन्त लोकप्रिय खण्ड-काव्य ‘सुदामाचरित’ के यशस्वी लेखक श्रीनरोत्तमदास का प्रवास उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही है जैसा कि उनके काव्य की अन्तश्चेतना एवं बाह्य कथावस्तु से विदित होता है। कविने यह कथा श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ८०, एवं ८१ से ग्रहण की है। यद्यपि कविने अपनी महज प्रतिभा एवं कविके सहज अधिकार—कल्पना—का पूर्ण प्रदर्शन किया है, तथापि एक भावुक भक्त और भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यचित्रण में कवि का आदर्श श्रीमद्भागवत ही ज्ञात होता है। विरक्तभाव से एक मात्र भगवद्भजन करना ही नरोत्तमदास को श्रेयस्कर लगता है।^३ श्रीमद्भागवत की अन्तश्चेतना को नरोत्तमदास ने कितनी गहराई से आत्मसात् किया था, इसका प्रमाण यह है कि भक्ति मार्ग पर चलने वाले और भगवदनुग्रहाकांक्षी व्यक्ति के लिए जिस दैन्य और निष्किंचनता की अनिवार्य आवश्यकता का विधान श्रीमद्भागवत में किया गया है।^४ नरोत्तमदास ने सुदामा जैसे निष्किंचन और दीन (किन्तु लोक

१ बीरचरित की फुल्लौ (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १०१.

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) पृ० १६८

३ वही पृ० १६८

४ कश्मीरसुधामा नाम सुनु, वृथा और सब भोग ।

मत्स्य भजन भगवान् को धर्म सहित जप जोग ।

सुदामाचरित (सम्पा० प्रेमनारायण टंडन) पृ० २१

५ सूक्त में अथर्वस्तुतः सर्वदेवक्यो हरिः ।

केच बीतो दण्डमेतां निर्वेदश्चात्मनः क्लवः । श्रीमद्भाग० ११, २३, २८

के समक्ष नहीं, केवल अपने इष्टदेव के समक्ष ही (दीन) भक्त रात्र के कथन से कष्ट कर दिया है। सुदामा से कहलवा भी दिया है कि भगवान् की भक्ति-प्रशंसिनी वीरका मुझे प्रिय है और सुरेश की प्रभुता भी, जो भगवज्जेल में स्थायक न हो, मेरे किसी काम की नहीं—

दीनदयाल को सुमोई द्वार है दीनल की मुक्ति लेल क्यारै ।
द्रोपदि नै मज तै, प्रह्लाद तै भानिपरी न शिष्यम भयारै ।
याही तै भावति मो मन दीनमा, जो निबडै भिकडी जल कारै ।
जो बजराजली प्रीति नहीं, केहि काज सुरेशहु की अकुरारै ।^१

भगवान् की भक्तानुग्रहकातरता—श्रीमद्भागवत के अनेक स्थलों पर भगवान् की भक्तानुग्रहकांक्षिणी वृत्ति प्रीति बनी, मन्विष्ट एवं स्वदलानुरोधगत क्वालि के प्रति उदासीनता का परिचय मिलता है। भगवान् के इस स्वभाव की नरोत्तमदास ने कृपणक लिया है। विष्णु पार्षद जब विजय के रोखने पर भी स्वकारिक के वैकुण्ठ शरम में प्रवेश पाने के श्रीमद्भागवत के उक्त प्रसंग^२ से इस परिस्थिति को मिलादये—

भूले में भूय अनेक खरे गही ठाहै गही तिमि जकवई मारी ।
देव मधुर्वक किन्नर बच्छ मे रोके जे लोकल के भविकारी ।
अन्तरजामी वे आपुही जानिई, मानो यहै सिख भाजू ह्यारी ।
द्वारकानाय के द्वार गहै, सब ने पहले मुधि लई निमारी ।^३

श्रीमद्भागवत के इनी जय विजय-पवन के प्रसंग में भगवान् की विप्र-विषयता और उनके द्वारा ब्राह्मणों की पूजनीयता का कथन है।^४ नरोत्तमदास का कथन उसके समुद्ध ह्यारा है—

क--विप्र के मगत हरि, विदित कबल बन्धु,
लेत सबही को सुधि ऐस महादानि है ॥^५
ख--जिनके चरनन को सलिल, हरत अक्षय संताप ।
पाँय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आश ।^६
ग--भामिनी देहै द्विजे सव लोक तजौ हठ भरे यहै मन भाई ।
लोक चतुर्वक की सुख संपति भागति विप्र बिना दुखदाई ।
जाय बनी उनके गृह में करिहीं द्विज सम्पति को सेवकाई ।
तो मन माँहि रुचं न रुचं, सो रुचं ह्यकौ बह ठीर सदाई ।^७

१ सुदामाचरित—पृ० २४

२ श्रीमद्भागवत, तृतीयस्कन्ध, अध्याय १५, १६

३ सुदामाचरित, पृ० २३

४ तद्रः प्रसादयाम्यथ ब्रह्म दैव परं हि मे ।

तदीत्यात्मकृतं मन्ये यत्सवगुम्भिरसत्कृताः । श्रीमद्भागवत ६. १६. ४

५ सुदामाचरित, पृ० २४

६ वही, पृ० २७

७ वही, पृ० १५

द्वारकाधीश कृष्ण—नरोत्तमदास ने पदश्वर्यसम्पन्न वैकुण्ठाधिपति को ही अपने काव्य में द्वारकाधीश कृष्ण के रूप में देखा है। श्रीमद्भागवत का ये प्रसंग में विष्णु के जिस लोकमनोरम साकार विग्रह और उनके वैकुण्ठ का निजरा है, वही पूर्णतया नरोत्तमदास के द्वारकाधीश कृष्ण वैभव विग्रह का प्रेरणा स्रोत है—

कृष्ण का चतुर्भुज स्वरूप—

लोचन कमल मुख मोचन तिलक भाल
सबननि कुण्डल मुकुट धरे माथ है
ओढ़े पीत वसन गरे में वैजयन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ है।
कहत 'नरोत्तम' संदीपन गुरु के पाम
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ है
द्वारका के गरै हरि दारिद हूरैगे पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाचन के नाथ है।^१

द्वारकाधीश का वैभव—विष्णु का व्यापी-वैकुण्ठ पृथ्वी पर द्वा
भवतरित हुआ है—

दाहिने वेद पढ़े चतुरानन, सामुहै ध्यान महेस धरयो है।
बाएँ दुगौ कर जोरि सुमेवक देवन साथ सुरेस खरयो है।
एतेई बीच अनेक लिए धन पायन आइ कुबेर परयो है।
देखि दिगी भवनों सपनी जपुगौ वह बाह्यन चौकि परयो है।^२

उक्त उद्धरणों में श्रीमद्भागवत के निम्नांकित श्लोकों की भाव-र्रा
भजक रहा है—

विष्णु-विग्रह—

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भादिलोक्षणम् ।
नीलोत्पलदलस्वामं संखचक्रगदाधरम् ॥
ससत्पंकजकिञ्चकपीतकीशेयवामसम् ।
श्रीवत्सवक्षसं आजतकीस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥
मत्तद्विरेफकृत्वा परीतं वनमालया ।
पराध्वंहारकनपकिरीटांगदनुपुरम् ॥^३

वैकुण्ठवास—

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्वामत्वात्मनः ।
षण्णवैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।

× × ×

१ वही, पृ० २२

२ वही, पृ० २२

३ श्रीमद्भागवत ३, २८, २३-२५

यत्र नैऋत्यं ताम वनं कामदुष्टदुःखैः ।

सर्वेषु श्रीविश्विभ्रातृकेषु चैतानि सुखानि ॥^१

X X X

वैमानिकाः कलकदायकोत्तमि यत्र

मायानि लोकमलज्जंभ्यानि भवन्ति ॥

अन्तर्जकेऽनुविकसन्मनुष्यावपीता

तन्मयेन शशिपुत्रोऽप्येवित्तं शिरसः ॥^२

द्वारका—श्रीमद्भागवत में इसी प्रकार का कहीं द्वारका के लिए भी उल्लेख है,^३ जिसके आधार पर श्रीनरोत्तमदास ने लिखा है—

दीर्घिकाकाशीधि गई ईश्वर मुहूर्त मई,

एक तें सरन एक द्वारका के भीन हैं ॥^४

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि मूल कविकविरोत्तमदास अपनी अन्तः साधना और बाह्य वस्तु योजना, दोनों के लिए श्रीमद्भागवत को प्राथम्य रूप में ग्रहण करते हैं ।

राठौद्वाराज प्रियौराज (पृथ्वीराज)—(वि० सं० १९०६—१९३०) केलि-क्रिसन हकमखी री' जैसी पाठ्य-पुस्तकमयी प्रथम कृति के रचयिता मूल कविकवि पृथ्वीराज राठौड अकेबर के सम्मानित सामन्त थे । अकेबर के साम्राज्य के खूबे हुए ही इन्होंने महाराजा प्रताप को उसके विरुद्ध निरन्तर स्वातंत्र्य संग्राम जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया था । इनके व्यक्तित्व में एक देशभक्त हीन सैनिक, यशस्वन्मय और विद्वान् का अद्भुत सामंजस्य था । अन्त प्रवर नाभादासजी ने इसकी काव्य-विशुद्धता विद्वत्ता आदि गुणों का उल्लेख करते हुए श्रेष्ठ शक्तों से इनको सरलता की है ।^५ केलि-क्रिसन हकमखी री' (रचनाकाल सं० १९३०) कुछ दिग्गज गीत और इज्जतवा की कुछ कविताओं के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ भी बनाई जाती हैं, जो केवल श्रुतिश्रोत्र ही हैं, दृष्टिगोचर नहीं ।^६ किन्तु यदि महाराज पृथ्वीराज 'केलि' के अतिरिक्त और कुछ भी

१ श्रीमद्भागवत २. १५. १३. १६

२ वही, ३. १५. १७.

३ वही, १०. ५०. ५०—५७.

४ सुदामाचरित पृ० २६.

५ सर्वेया गीत श्लोक वेलि, दोहा एत नवरस ।

पिंगल काव्य प्रमान विविध विधि गावैः हरिजस ॥

परदुख विदुष तलाध्य वचन रमना जु उचारै ।

अर्थ विचित्रत मोल मबे सारंग उरवारै ॥

रुकमजीलता वरनस अगुष बागीश कदन कल्पान सुष ।

नरदेव उमै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविरोज हुद ॥

भक्तमाल (शक्तिप्रकाशक) १०००, पृ० १००.

६ वेलि क्रिसन हकमखी री, (सम्पा० का० रमसिंह एवं पं० सुन्दरदास पारोका) अन्तः, १००.

त लिखते तो भी वे एक अमर भक्त-कवि के रूप में याद किये जाते । श्रीमद्भागवत स्कन्ध अष्टाध्याय ५२, ५३, ५४ और ५५ की कथा पर आधारित उनकी यह कृति हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य का गौरव है ।

श्रीमद्भागवत और वेलि किसन रुकमणी री—कवि ने स्वयं अपने काव्य का आधार श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है—

बल्लो तसु बीज भागवत बायो
महि आरौ पृथुदास मुख ।
मूल ताल जड़ अर्थ मण्डहं,
सुथिर करणि चडि छाँह सुख ॥^१

(अर्थात्, इस 'वेलि किसन रुकमणी री' रूपिणी लता का बीज श्रीमद्भागवत है । वह बीज भक्त पृथ्वीराज के मुखरूपी पृथ्वी के शाये (आलवाले) में बोया गया है । इसके दोहलों का मूलपाठ और उत्तको गाने की ताल इसकी जड़ें हैं और उन दोहलों के अर्थ रूपी सुदृढ़ मण्डप पर प्रासिगधों को मुखद छाया देने के लिए यह बल्लगी चढ़कर फैल गई है ।) इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज ने 'वेलि' में अपनी सहज काव्य प्रतिभा और तज्जन्य मनोरम कल्पना का स्वच्छन्द उपयोग किया है तथापि श्रीमद्भागवत की मधुर भक्तिभावना और मूल कथा का अनुसरण उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा से किया है । यद्यपि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के हाथ एक पत्र भिजवाया है, और श्रीमद्भागवत में मौखिक सन्देश की चर्चा है तथापि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी से पत्र में लिखवायी वही बात है । पत्र मात्र की कल्पना से श्रीमद्भागवत के आधार की अस्वीकृति नहीं होती । स्वयं कवि को भी वह अशीष्ट नहीं है । वह तो रुक्मिणी के शृंगार-सज्जा प्रसंग में बड़े ही श्रद्धा-गद्गद स्वर में श्रीमद्भागवत का शिल्पकार्य से उल्लेख करता है—

नासा अपि मुताहल निहसति ।
भजति कि सुक मुख भागवत ॥^२

कथा सूत्र का अनुसरण —

वेलि—दक्खिण विमि देस विदरयति दीपति पुर दीपति भति कुंदखपुर ।
राजति एक भीलमक राजा सिरहर अहि नर अमुर सुर ॥
पंचपुत्र ताड छठी सुपुत्री कुँअर रुकम कहि विमल कथ ।
रुकमबाहु अर्न रुकमाली, रुकमकेस न रुकमरथ ॥^३

श्रीमद्भागवत—

राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महात् ।
तस्य पंचामवन्पुत्राः कन्पैका च वरानता ॥

- १ वेलि किसन रुकमणी री, दोहला २६१ (केवल मूलभाग) हिदुस्तानी पकेडेमी शलाहानाद.
२ वही, दोहला ६८.
३ वही, दोहला, २०, २२.

स्वयंप्रज्ञो स्वमरथो स्वमबाहुरनन्तरः ।

स्वमकेशो स्वममाली स्वमिष्येवा स्वहा हती ॥^१

पृथ्वीराज ने श्रीमद्भागवत के आधार पर स्विमयी को जन्मी का प्रवतार माना है—'रामा अवतार नाम ताद स्वमिष्य',^२ पद का आधार श्रीमद्भागवत का यह श्लोक है—

ममवाकपि गोविन्द उपयेमे कुरुब्रह्म ।

वंदमी श्रीमकमुतां विदो नामां स्वयंवरे ॥^३

स्विमयी को गुण-अवल से श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग हो गया और कृष्ण सुखों का ध्यान कर श्रेष्ठ वर प्राप्ति की इच्छा प्रकट हो गई जिसके लिए उन्होंने हर-परी को बतल किया—

वेलि—

सोमलि अनुराग ययो मन स्वामा वर प्रापति वंछती वर ।

हरियुग मलि ऊचती चिका हर हर तिमि वन्दे वदरि वर ॥^४

श्रीमद्भागवत—

सोपश्रुत्व मुकुन्दस्य रूपवीर्यकुमभियः ।

कृदासौगीषमाकास्तं तेन सहस्र प्रतिम् ॥^५

इस प्रकार पृथ्वीराज द्वारा श्रीमद्भागवत के कथा-रूप का अनुसरण किया गया है। विस्तार भय से हम अधिक उदाहरण देने में असमर्थ हैं।

भाव ग्रहण—कविने अपने काल में श्रीमद्भागवत के कुछ सुन्दर भागों को ग्रहण किया है और अपनी प्रतिभा से उनको विस्तार एवं रंजकता प्रदान की है। स्विमयी ने कृष्ण के पास जो संदेश भेजा है उसमें कहा गया है—

बलि वन्धरा कुफ स्यात् स्रिज बलि प्रार्थो लो वीर्यो परशु ।

कपिल धेनु दिग पात्र कलाई तुलसी करि बाह्यज तस्यै ॥^६

अर्थात् 'हे बलि वन्धन ! (कृष्ण कृष्ण) मुझसे यदि कोई अन्य वृद्ध विवाह कर लेगा तो यों सभसला चाहिए कि तिह की बलिका तियार बलल करेगा, कविता भी कलाई जैसे (कृ) पात्र को दी जाएगी और तुलसी बाण्डाल के हाथ में होगी।' इन वाक्यों का विगदीकरण श्रीमद्भागवत के तिम्नलिखित श्लोक के आधार पर हुआ है—

तन्मे भवान्वलु वृतः पतिरंग बायामात्मारपितरक भवनोऽत्र विभो विषेह ।

मा वीरभागमभिमर्शतु चैव धाराद् सोमापुवर्गमृगपतेर्वसिभन्मुजास ॥^७

१ श्रीमद्भागवत १०. ५८. २१, २२

२ वेलि, दोहला. १२.

३ श्रीमद्भागवत १०. ५२. १६.

४ वेलि, दोहला, २६

५ श्रीमद्भागवत १०. ५२. २३.

६ वेलि, दोहला ५६.

७ श्रीमद्भागवत १०. ५२. ३६.

कृष्णपुर वाणियों ने श्रीकृष्ण को देखकर परस्पर कहा सुना था कि "अहा ! लो, यह रुक्मिणी का दर आ गया । अब दूसरे राजाओं को रुक्मिणी की इच्छा नहीं करनी चाहिए" —

बसुदेव कुमार तर्गों मुख वीर्यं पूर्णं सुर्यं जग्य आप पर ।
श्री रुक्मिणी तर्गों दर आयौ हर म करौ अग्नि रायहर ॥^१

तुलनीय —

कृष्णमागतमरुष्यं विद्वभंपुरवासिनः ।
अप्रत्यक्ष नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपकजम् ।
अन्यत्र भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति तापरा ।
अनावप्यनवद्यात्मा भैष्याः समुचितः पतिः ॥^२

भक्तिभावना—कविवर पृथ्वीराज श्रीमद्भागवत की भक्ति भावना में आपाद-मस्तक निमग्न हैं । उनके आराध्य समग्र ऐश्वर्यों के एकमात्र निधान द्वारकाधीश कृष्ण हैं । कहते हैं कि अपनी 'बेलि' को लिखकर कवि उसे द्वारकाधीश के दरख्तों से समर्पित करने की इच्छा से द्वारका के लिख चक्र पड़ा था, किन्तु द्वारकाधीश ने उनके पहुँचने से पहले ही उन्हें दफ़ोन देकर तथा उनके मुख से 'बेलि' का अर्थ करके कृतार्थ कर दिया ।^३ 'बेलि' में रुक्मिणी के मिष्ठाने श्रीमद्भागवत-सम्मल स्तुति के रूप में उनकी ही भक्तिभावना इन शब्दों में मुखर हो उठी है—

हरि हर कृष्ण हर हरिखाकस, हैं ऊबरी पाताल हैं ।
कहौ है कस्तूराम केसव, सीख दीध किख तुम्हां सूं ॥
भाए सुर अपुर नखन वेज नहि, राखिषौ जई महर रई ।
मह्य मथे सूं बीध मह्यहरण, तुम्हां कियौ सीखव्या तई ।
रामा अदतारि वहे रणि राजण, किसी सीख करुणाकरण ।
हैं ऊबरी त्रिकुटगढ़ हूँती, हरि बन्वे बेला हरण ॥
चीबीआ वार वाहर करि चत्रभुजा, संलचक्र धर गदा सरोज ।
मुख करि किसुं कही जं माहव, अन्तरजामी सूं आलोज ॥^४

अर्थात्—हे हरि आपने वराहरूप होकर द्विप्याक्ष को, मांग और पृथ्वी रूप में पाताल से उद्धार किया । हे करुणामय केशव ! कहिए उस समय (भक्तिका के निमित्त) आपको किसने सीख दी थी ? हे समुद्र-मथन ! जब आपने देव-दास्यों को एकत्र कर केषनाम को मथन-रज्जु और मंदराचल को मथन-दण्ड बना कर महाराज को मथकर

१ बेलि, दोहला ७७.

२ श्रीमद्भागवत १०. ५३. ३६, ३७.

३ बेलि (सम्पा० अ० रामसिंह जी एवं पं० सर्वकरथ पारीक) भूमिका पृ० २६, २७, २८.

४ बेलि, दोहला, ६१-६४.

विद्वत् गड (लेख) से जो (सीता कव में) आते, वेरा बहार किता क कू. सीता की शिक्षा थी? हे संत जक गदर पदमवारी कवुमुं. प्रभो! जब यह थी। मकर है जब कि आपकी रक्षा के लिए मन्द होना है। हे सायक! तुम कवुमुं। ये मक के माक. मुक्त से कौते कू? (कव गदर कवुमुं. बारा नहीं है?) स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत की अनेक स्तुतियों में, जिसका उल्लेख इस प्रकरण के अर्द्ध अध्याय में किया जा चुका है, इस प्रकार की शक्तिभावना विद्यमान है।

कृष्ण का परब्रह्मत्व - पृथ्वीराज कृष्ण को मत्स्य-मनुष्य कावणी, कवुमुं. सगुण ब्रह्म ही मानते हैं। कृष्ण के कुन्दिनपुर पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने उन्हें विम विम-मिन्न रूपों में देखा था, उन लोगों को कवुमुं. श्रीमद्भागवत के उम प्रथम में मिली जग पड़ती है जिस में श्रीकृष्ण के मधुरा पहुँचने पर कल की रग-शाला में पेशवाई करने का बर्णन है। वहाँ लोगों के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जायगा—

बेखि -

कामिगु कहि काम काल कहि केवी, नारायण कहि मवर मर ।

वेदारथ इन कही वेदवैत लोग उत्त जोनेनवर, १

अर्थान्—श्रीकृष्ण को देखकर कामिनिषों तो कहती हैं कि ये कामधेय हैं, कवुं (दुर्जन) कहते हैं कि ये काल हैं। दूसरे लोग (भक्तजन कहते हैं कि ये नारायण हैं। वेदवेत्ता मनीषी जन कहते हैं कि ये प्रत्यक्ष वेदार्थ ही हैं और जोनेनवर मक कहते हैं कि ये मुनिमान् योगतत्व ही हैं।

श्रीमद्भागवत—

मल्लानामशनि वृष्टां नर वरः रूपैकां स्मरो मुनिमान् ।
 गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुवां काम्ना स्वरिकां त्रिभुः ।
 मृत्युर्भोजपतेविराड्विदुषां तत्त्वं परं बोधितां ।
 वृक्षलोतां परदेवतेति विदिनो रंग मन पावजः ॥१॥

वैलि किसन एकमहोरी में इस प्रकार श्रीमद्भागवत के साथ अनेक दुर्जनोय स्थल विद्यमान हैं। अलमति विस्तरण ।

रसखान—(संवत् १९४०—१९५५ लगभग) जिस मुसलमान इतिहास पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कोटि-कोटि हिन्दुओं को विद्वान् करने की योजना की थी

१ वैलि, दोहला, ७६.

२ श्रीमद्भागवत १०. ४३. १७.

३ अविता कौमुदी (सम्पादक-पं० रामनरेश त्रि०) ३. १. १०. ११

उनमें प्रेमीभक्त रसखान भी सादर परिगणित हैं।^१ रसखान का जो वृत्तान्त 'दोसी बावन वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि वे एक लिम्नस्तर के कामुक व्यक्ति थे किन्तु किसी वैष्णव के मार्मिक व्यंग्य से भगवदुन्मुख हो गये थे। फिर गोस्वामी विद्वत्नानथ जी के कृपापात्र शिष्य भी हो गये।^२ किन्तु रसखान ने जो प्रेमी हृदय गाया था वह किसी सम्प्रदाय विशेष के बन्धन में रह ही नहीं सकता था। उस हृदय को, जिसमें इष्क मजाजी—लौकिक प्रेम—लज्जालव भरा था, इष्क हकीकी—भगवत्प्रेम—की ओर सदा के लिए मोड़ देने वाली शक्ति थी, श्रीमद्भागवत। एक दिन जब ये श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे तो उसमें कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम-प्रसंग को देखकर कुछ ऐसे भक्तिविह्वल हो गये^३ कि अपनी लौकिक प्रेयसी को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर वृन्दावन आगये। तब से श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति इनका प्राणस्पन्दन बन गई। श्रीमद्भागवत में योप विद्युत्प्रों की जिन सब्जभक्ति का वर्णन है, वह भी रसखान को प्रिय है।^४ किन्तु रसखान को प्रियतर है गोपियों की माधुर्यभक्ति। वहीं रसखान अपने सच्चे रूप में दिखाई देने हैं। आइए रसखान के काव्य में कुछ भागवनीय तत्त्वों का अनुसंधान करें—

प्रेमाभक्ति— रसखान ने अपने एक लघुकाव्य ग्रन्थ 'प्रेमवाटिका में प्रेम तत्त्व का जो पारमार्थिक रूप स्पष्ट किया है, वह बहुत कुछ श्रीमद्भागवत की ही प्रेमाभक्ति है—

लोक वेद मरजाद सब, लाज काज सदेह ।
देल बहाए प्रेम करि, बिधि निषेव की नेह ।
भले कृपा करि पचि मरौ, ज्ञान गकर बढ़ाय ।
बिना प्रेम फीकी सबै, कोटिन किए ज्पाय ।
जेहि बिनु जाने कछु नहीं, जान्यो जात वित्तैम ।
सोइ प्रेम जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस ॥

१ अलीखान पञ्चम सृष्टि सब ब्रज रसवारे ।
सेख नदी रसखान नरि अहमद हरि प्यारे ।
जिभल दास कबीर ताजखी बेगम बारी ।
तानसेम कुम्हारदास बिजापुर नृपति दुलारी ।
बिदजादी बीबी रास्ते पदरक नित निर धारिप ।
इन सुतसमाज हरिजनन पै कोटिन हिंदुज वारिप ॥

उद्धृतः भारतेन्दुशत वत्तराधै मक्त-माल से 'रसखान और घनानन्द' पृ० ५ पर ।

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता,
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृ० २६२,
४ दिल्ली जमर निवास कावसा बंस बिभाकर ।
जिन्ह देखि मन हरो मरो वन प्रेम सुधाकर ।
श्री सोवर्षम अथ तबै दरीज नहि पाए ।
देहे मेहे बचन रचन निमर्ये ई पाए ।
तब अथ आथ सुसनाथ करि सुश्रुप महमान की ।
कवि कौन भिताई कहि सकै, ओनाथ साथ रसखान को ॥

उद्धृतः श्री राजेश्वरश गोस्वामी शत नव मक्तमाल से 'रसखान और घनानन्द' पृ० ५ पर.

ज्ञान ध्यान विद्या मती, मल विस्त्रय विवेक ।
 बिना प्रेम सब धर है, भय वन एक अनेक ।
 बेहि पाए बँकुठ धर, हँगुँ को रहि जाहि ।
 सोइ भौतिक सुद सुम, सरल मूषम कहाहि ॥^१

तुलसीधर—

न किंचित्प्राप्तो बीरा बल्लभ ह्येकामित्यग्रे मम ।
 वाञ्छन्त्वपि मया दत्तं क्वचित्प्रपुनर्नैकम् ॥^२ वन्यादि ।

गोपी प्रेम को सर्वश्रेष्ठता—सकलप्रकार रसखान का मूल है कि यद्यपि नन्द यज्ञोदा आदि वात्सल्य भक्ति के पक्षिक और गोप कान्त्यादि मधुरभक्ति के स्वरूप अर्थ है, किन्तु अनन्य प्रेमाभक्ति—(माधुर्य भक्ति) को इतरास पर चलने वाली कौशलानन्द अद्वितीय है। उनकी कृपा से प्रेमाभक्ति को कुछ प्रसाद उद्भव को भी विष्णु कहा जा, पर धन क्या कोई दूसरा उसे या संकषा ?—

जदपि बसोदा नन्द प्रक, न्दान बाल सब अन्य ।
 पैं बा खग मे प्रेम को, मोषी भद्रं अनन्य ।
 वा रस की कछु माधुरी कषो लही बराहि ।
 पार्वे बहुरि मिठास भस, भव दूजो को आहि ॥^३

लीलागान—रसखान ने कृष्णलीला के स्पष्ट प्रसंगों तथा बालन चोरी, गोपानन्द वेणुबादन आदि का वर्णन किया है। बाललीला का यह वर्णन देखिए—

बाललीला—

धुरि भरे भति मोषित स्वाम जू तैनी बनी छिर सुन्दर छोटी ।
 खेत लत फिरें बंगना फल पैकनी बामनि रोरो कछोटी ॥
 वा छवि को रसखानि बिनोकन भारत काम कला द्विज छोटी ।
 काम के भाष बड़े कछनी हरि हास तौ ली लखी माखन रोटी ॥^४

रासलीला—

राधा माधव मखिन संग, बिहरन कुंज कुटीर ।
 रसिक राज रसखानि, जहा कुञ्ज कोइल कोर ॥^५

कुवलयपीड बध—

कंस के क्रोध की फौल गई जवही ब्रह्ममंडल जोच पुकार थी ।
 आइ गए तब ही कछनी कसि के मट नामर नन्द कुमार थी ।
 हँरव को रद ऐंचि लियो रसखानि इहै मन आइ बिचार सी ।
 लागी कुटीर लई लखि तोर कलक तमाल तैं कीरत डार की ॥^६

१ रसखान और घनानन्द (संकलन कर्ता स्व० बाबू जगदीशसिंह) पृ० २२-२४

२ श्रीमद्भागवत ११ २०. ३६.

३ रसखान और घनानन्द, पृ० २४.

४ वही, पृ० २०

५ वही, पृ० २६

६ वही, पृ० ४०

रूपमाधुरी—कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन रसखान का सबसे प्रिय विषय उनकी रचना में इसकी प्रधानता है। केवल एक उदाहरण देखिए—

कानन कुण्डल मोर पखा उर पै वनमाल विराजति है ।
नुरती कर में अक्षय मुन्नकानि, तरंग महाअक्षि छाजनि है ॥
रसखानि लखैं तन पीत पटा, सत दामिनि की दुति लाम्रसि है ।
वह बसिरी की धुनि कान परैं, कुल कानि हियो तजि भाजति है ॥^१

श्री कृष्ण का परब्रह्मत्व—रसखान श्रीमद्भागवत के मतानुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर मानते हैं। निम्नलिखित अति प्रसिद्ध सर्व्यों से वह प्रमाणित है—

सेस गनेन महेस दिनेन सुरेसहृ जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्याम रटैं पचि हारे नऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छाहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥^२
ब्रह्म मैं दूँद्यों पुरानन गानन, वेदरिचा मुनि चौगुने चायन ।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न किनूँ, वह कैसे सरूप श्रीं कैसे सुनायन ।
टेस ह्येस्ट ह्यारि पर्यो रसखानि, बतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो दुद्यों वह कूज कूटीर में बँठ्यो पलोटन राषिका पाँयन ॥^३

गोपीप्रेम—मक्ष प्रवर रसखान गोपी प्रेम के तो मूर्तिमन् स्वरूप ही हैं। उ समस्त रचना में सर्वत्र गोपीप्रेम ही मुखरित और ध्वनित हो रह्य है। गोपिय रूपसक्ति, लम्बयतासक्ति और परम विरहसक्ति के भव्य उन्के काव्य में विशेष शक्ति के साथ प्रकट हुए हैं, कतिपय उदाहरण लीजिए—

रूपसक्ति—

जादिन खैं निरख्यो नैद नन्दन कानि तजी घर बन्धन छूट्यो ।
चाह बिलोकनि की निसिमार सम्हार गई मन मार ने लूट्यो ॥
सानर कों सरिता जिमि वावत रीकि रहे कुल की पुल दूट्यो ।
मत्त भयो मन संग फिर रसखानि सरूप सुधारस घूट्यो ॥^४
लोक की लाज तजी तबहीं जब देख्यो सली ब्रज चंद सलीनो ।
खंजन मोन सरोजन की छवि मंजन तैन लला दिन हीनो ।
रसखानि निहारि सकैं बु सम्हारि कै को तिय है वह रूप सुठीनो ।
मौह कमान सों जौहन कों सब बेधत प्रावनि नंद को छौनो ॥^५

१ वही, पृ० २२

२ वही, पृ० २३

३ वही, पृ० २२

४ वही, पृ० २१

५ वही, पृ० १६

तन्मयतासक्ति —

उन्हीं के सनेहन सानी रहें, उन्हीं के नु नेह विकारी रहें ।
 उन्हीं की सुनै न भौं बिन शयै सैत सौं वैक अनेकन सखी रहै ॥
 उन्हीं संग खोलन में रसखानि सबै सूत्र विगु क्यारी रहै ।
 उन्हीं बिन ज्यों अकहीन हूँ बीन की कौलि मयै प्रसुखनी रहै ॥^१

परम विरहासक्ति—एक सुन्दर एक शक्तिर भावकीय अमरयोग में एक गोपियों की विरह भावना को कवि इस प्रकार प्रकट करता है—

साज के कर चढ़ाई की अंग बर्षी सब सीन को जह सुमहरी ।
 पावह हूँ ब्रजयोग धरकी कनि शौपद वैसक मौड़ विराहकी ।
 उषी सौं को रसखानि कहै जिन चित्त जगै तुम एसे उगाड़की ।
 काने जिनारे की थाहै उताड़की अने बिन बाबरे साज सखीबर्षी ॥^२

वेसुमाधुरी—श्रीकृष्ण के वंशीवादन का कौपियो पर जो मोहक प्रभाव पड़ा है, उनकी उद्भावना में रसखान को असाधारण सफलता मिली है, किन्तु उनका शब्दों से जो व्यस्य और वक्रिया है, उसका मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत है । शब्दों के जाले गोपियों का जो साफल्य भाव नहीं व्यक्त हुआ है,^३ उसीका विषयीकरण हम यहाँसे भी देखा जा सकता है—

कान्ह भाए बस शंभूरी के बस कौन सखी हवकी बहि है ।
 निम शौम रहै भोग साध लगी, यहै लौलिक साधन बरौं सहि है ।
 त्रिन माहि लिपी मनमोहन की रसखानि सदा सूकरी रहि है ।
 मिलि छात्री नबै सखि भाजि बलै बदनो ब्रज मे बँसुगी रहि है ॥^४

रहीम - (अब्दुर्रहीम खानखाना—सं० १२१०—१२२३ वि०) काश्मीर-तुलसीदास के परम मित्र और अकबर के एक प्रमुख सेनानी अब्दुर्रहीम खानखाना हिन्दी जगत में अपनी भक्ति, नीति शृङ्गारमयी दोहावली एवं अरबी कादिया भेदों काटि अरब रचनाओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि के रूप में समाहित है । अपनी बहुधुतता एवं संस्कृत, फारसी और हिन्दी ज्ञान से इन्होंने न केवल संस्कृत-फारसी, संस्कृत-हिन्दी में निश्चिन रचना की, अपितु कुछ संस्कृत में भी लोक-रचना की है । संस्कृत-मार्शिय से इनको उत्कट प्रेम था । अतः यह सहज अनुभव है कि श्रीमद्भागवत जैसे लोक-विकृत भक्ति ज्ञान वैराग्य के विपुल भण्डार का अवलोकन या अदग इन्होंने किया था । इनका ज्ञान 'रास पचाध्यायी' श्रीमद्भागवत को आचार मानकर रचा गया है । इसके अभिरिक्त इनकी कृष्ण-भक्ति-पूर्ण कविताओं में भागवतीय गोपियों की परल विरहभक्ति एवं कपामक्ति की स्पष्ट झलक है । इनका यह सुन्दर पद देखिए—

- १ वही, पृ० २३
- २ वही, पृ० ३६
- ३ श्रीमद्भागवत, १०. २२. ६.
- ४ रसखान और घनान्द, पृ० १८.

कमलदल नैननि की उनयानि ।
 बिसरति नाहि सखी मो मन तें, मन्द-मन्द मुसकानि ।
 बसुवा को वम करी मधुरता, सुधा पगी बतरानि ॥
 मर्दा रहै चित उर बिसाल की, मुकतमाल थहरानि ।
 वृत्प हृमय पीताम्बर हू की, फहर-फहर फहरानि ॥
 अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रजतें, आवन आवन-जानि ।
 अब रहीम चित तें न टरति है, सकल स्याम की वानि ॥^१

उपयुक्तपद में रहीम की 'अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज तें आवन आवन-जानि' श्रीमद्भागवत की 'वत्सलो ब्रजगवां, दिनान्ते चित्सर्यति' आदि पंक्तियो श्रीमद्भागवत १०. ३५. २२-२४) की आवरानि का संकेत मिलता है ।

श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए रहीम गोपी-भाव से भावित हैं और उनके अघोलिखित पद में कृष्ण के वर्ण, अंगविन्यास, वेप-भूषा आदि का श्रीमद्भागवत में बहुधा वर्णित स्वरूप के अनुसार है

छवि आवन मोहनलाल की ।

काखे काछनि कलित मुगलि कर, पीत पिछौरी साल की ॥
 बंक तिलक केसर को कीने दुति मानी बिधु बाल की ।
 बिसरत नाहि सखी मो मन तें चितवनि नयन विशाल की ॥
 नीकी हंसनि अघर सुषरनि की छवि छौनी सुमन गुलाल की ।
 जल सों डारि दियो पुरइन पर डालनि मुकुतामाल की ॥
 आप मोल बिन मोलनि डोलनि दोलनि मदन-गोपाल की ।
 यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की ॥^२

रहीम की संस्कृत-हिन्दी-मिश्रित रचनाओं में एक छोटी सी रचना मदन उत्तम शृङ्गार का जो वर्णन है, वह सोपियों के साथ उनके शरद-रास की प्रस्तुत करता है—

शरद-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई ।
 सघन-वन-निकुजे कान्ह वंशी बजाई ॥
 रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं ।
 मदन शिरसि भूमः क्या बला आन लागीं ॥^३

१ रहीम रत्नावली (नम्यादक श्री मायाशंकर यादविक) वृ० संस्करण, पृ० ६६

२ वही, पृ० ६६

३ वही, पृ० ६४

एव प्रतिनिधि कवियों के काव्य पर ही श्रीमद्भागवत के प्रभाव का मूल्यांकन किया है। इसके आधार पर सुधीजन अन्य सहस्राब्दि हिन्दी कवियों के काव्य के भागवतीय तत्त्वों का अनुसन्धान कर सकेंगे : अन्वयित्तित्तरेण ।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव पूर्वोक्त सम्प्रदायवादी कवियों पर अधिक होने का प्रभाव से कहीं अधिक सूक्ष्म और व्यापक है। यहाँ पूर्वोक्त कवियों में हनुमन्त जी लीला को ही (चाहे वह बाललीला ही या मधुर किशोर लीला) अर्थात् साध्य बनाया था। यहाँ सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने अधिकतर उससे ही सुझमकर अनुभव कर 'हनुमन्त जी' को अन्वयित्तित्तरेण बनाया। इसके प्रतिरिक्त श्रीमद्भागवत की विचारधारा को इन सम्प्रदाय कवियों ने कहीं अधिक, श्रद्धापूर्वक और समझता के साथ ग्रहणसाध किया है।

उपसंहार

श्रीमद्भागवत एवं परवर्ती हिन्दी-भक्ति-साहित्य

श्रीमद्भागवत के तत्त्वज्ञान के आशोक में मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य को देखने के उपरान्त अन्त में परवर्ती काव्य पर भी इस ग्रन्थ के प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करना अमंजस न होगा।

जैसाकि पहले संकेत किया जा चुका है, श्रीमद्भागवत का प्रभाव केवल मध्य-कालीन भक्त कवियों तक ही सीमित नहीं है। रीतिकाल में भी निरन्तर एक भक्ति-धारा प्रवाहित रही जिसका उद्गमस्थल श्रीमद्भागवत था। सच तो यह है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय से आज तक उसका प्रभाव असुण्ण है और जब तक भगवद्भक्ति को एक श्रेष्ठ अध्यात्म-साधना-पद्धति माना जाता रहेगा, तब तक श्रीमद्भागवत का महत्त्व भी असुण्ण रहेगा। सूरदास से लेकर आधुनिक युग के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नकर, हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न और मैथिलीशरण गुप्त तक श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम-वर्णन की परम्परा अखण्ड रही है। रीतिकाल में श्रीमद्भागवत की प्रेम-भावना दो रूपों में व्यक्त हुई। प्रथम रूप में तो वह भागवतीय भावना से अविकृत, शुद्ध ईश्वर-भक्ति के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है, किन्तु दूसरे रूप में उसने लौकिक प्रेम-भावना के मिश्रित रूप में विकसित होकर अभिव्यक्ति प्राप्त की। भागवतीय कृष्ण-लीला के अनेक विकसित रूप 'दानलीला', आदि के नाम से सामने आये। १७ वीं शताब्दी के उपरान्त भी श्रीमद्भागवत पर आधारित विपुल भक्ति-साहित्य की रचना होती रही। विभिन्न नामों से अनेकशः श्रीमद्भागवत को ही हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया। उदाहरणार्थ "आनन्दाम्बुलिङ्ग" नाम से समस्त श्रीमद्भागवत की कथा को ही हर्षिदश, महाभारत आदि के आख्यानों से उपवृंहित करके सं० १६११ वि० में रीवा नरेश महाराज रघुगजसिंह ने लिखा था।^१ खोज में प्राप्त अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ^२ श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। नीचे, कुछ अप्रसिद्ध कवियों की ऐसी रचनाओं की सूची दी जा रही है। जिन ग्रंथों का रचना काल अथवा लिपि काल ज्ञात हो सका है उनका समय भी दे दिया गया है—

अ — भागवतोक्त उपाख्यानों द्वारा भक्ति के ख्यापक-ग्रन्थ

प्रह्लाद चरित—(रचयिता लोकोदास)

प्रह्लाद चरित्र - (रचयिता लच्छिपन) रचनाकाल, स० १६००

१ हस्तलिखित ग्रंथों का त्रयोदश वार्षिक विवरण (१९२६-२८) सं० डॉ० हीरालाल (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ५३६.

२ त्रैलोक्य, नगरी प्रकाशिका सभा की खोज रिपोर्टें, सन् १९१२-१३, सन् १९२३-२५ तथा सन् १९२६-२८.

- ध्रुवलीला — (रचयिता सुन्दर कवि) लिपिकाल, सं० १६३६
 ध्रुवलीला — (रचयिता महादेव) लिपिकाल सं० १६३६
 प्रेम-बोध (श्रुव की मन्त्रार्थ-भक्ति) (रचयिता—अज्ञात) लिपिकाल सं० १७००
 दश अवतार (रचयिता—अज्ञात)
 भगवान दसो अवतार (रचयिता—अज्ञात)
 विष्णुपद (रचयिता—देवादास)

आ—भागवतोक्त भक्ति एवं ज्ञान के अष्टादश ग्रन्थ

- भक्ति-प्रदार्थ (रचयिता—चरनदास)
 भक्ति-सागर (रचयिता—चरनदास)
 ब्रह्मज्ञान-सागर (रचयिता—चरनदास)
 प्रेम-बोध (भक्ति वर्णन) (रचयिता अज्ञात)
 'हृदय-अंशुस' (कर्मविद्या-तथा मुक्ति) (रचयिता अज्ञात)
 'प्रेम-दीपिका' (रचयिता—अनन्य रसिक)
 'ज्ञान-सागर' (रचयिता—अनन्य रसिक)
 नाम-महात्म्य (रचयिता—अनन्य रसिक)
 ब्रह्म निरूपण (रचयिता—अनन्य रसिक)
 प्रेम पञ्चीसी (रचयिता—जीवराजसिंह विनोद)
 भक्ति प्रकाश (रचयिता—लोकीदास)
 भागवत गीतावली (रचयिता—लोकीदास)
 गुरुमहिमा (रचयिता—मुरली)

इ—भागवतोक्त कृष्णलीलादि विशिष्ट तन्त्रों के लयापक ग्रन्थ

- कृष्णलीला (रचयिता—बलदेव) रचनाकाल सं० १६०१,
 कृष्णक्रीड़ा (रच०—कालिका चरन)
 नन्दोत्सव लीला (रच० ख्यालीदास, मथुरा) रचनाकाल सं० १६२३
 संपीत गोवर्धनलीला (रच० कुंवरसेन काकरव, दिल्ली) रचनाकाल सं० १६३४
 नागलीला (रच० चन्द कवि; रचनाकाल सं० १७७१
 कृष्ण जू को नक्षत्रसिख (रच०—स्वाल कवि)
 जमुना लहरी (रच०—स्वाल कवि)
 वृन्दावन साहस (कृष्ण प्रेमलीला) रच० अज्ञात
 कालीदमन (रच० पं० रमानाथ)
 गिरधरजी की मुरली (रच० हरदास) रचनाकाल सं० १६००
 सरस-रास (रच० सूरति मिश्र)
 रास-पंचाध्यायी (रच० नाथरीदास) लिपिकाल सं० १६००
 रासमालिका (रच० रामचरनदास)

गोपी वल्लीमी (रच० ग्वाल कवि)

ह्रस्वरीन (रच० सेवादास)

गोपी विरह छन्दावली (रच० बैजनाथ) रचनाकाल सं० १६०

गोपी विरह महात्म (रच० दानाराम) लिपिकाल सं० १६४८

कुवरी संग विहार वाराणसी (रच० प्रेम सगर)

ज्ञानगीता (कृष्ण उद्धृत सवाद, गोपी प्रेम) रच० जयमुख

रुकमणी विवाह (रच० सेवादास)

रुकमिणी मंगल (रच० विष्णुदास) लिपिकाल सं० १६१६

सुदामा चरित्र (रच० हलधर) रचनाकाल सं० १८००

सुदामा चरित्र (रच० महाराजदास) रचनाकाल सं० १६१६

उषा चरित्र (रच० नरशुराम) लिपिकाल, सं० १८७२

उपर्युक्त ग्रन्थों का नामोश्लेष केवल दिङ्मात्र दर्शन के उद्देश्य इनके अतिरिक्त सहस्रावधि ग्रन्थ अन्वेषण में प्राप्त हुए हैं जिनका है। ऊपर की सूची को देखने से विदित होगा कि प्रबन्ध में सामान्यभक्ति तत्त्वों एवं विशिष्ट कृष्ण-भक्ति तत्त्वों को लेकर कितने विपुल-साहित्य की सर्जना हुई है।

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत-ग्रंथ

श्रीमद्भागवतम् (श्री वेदव्यास, संस्कृत की साठ विभिन्न टीकाओं में संश्लिष्ट, महाभारत
श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी) पुस्तकालय, नं० १२६० वि०

श्रीमद्भागवत महापुराण (श्री वेदव्यास, अनुवादक श्री मुनिराय) श्रीरामेश्वर गोरखपुर, प्रथम
संस्करण—सं० १२६३ वि० (इस शोध प्रबंध में मूल-उद्धारण कर्मी संस्करण में
दिये गये हैं)

बृहद्भागवतामृत (श्री मनातन गोस्वामी)

लघुभागवतामृत (श्री रूप गोस्वामी)

सर्वमूलसंग्रह (श्री मध्वाचार्य के सम्पूर्ण ग्रंथों का संग्रह निर्णयनागर प्रेस, बनारस—१९१० ई०)

महाभारत (श्री वेदव्यास—गीता प्रेम, गोरखपुर—१९४५ ई०)

हरिवंश पुराण (श्री वेदव्यास—मैलकुमार चूकड़िया, लखनऊ)

स्कन्दपुराण (श्री वेदव्यास—श्री वैकुण्ठेश्वर प्रेम, बनारस, १९१९)

बृहन्नारदीयपुराण (श्री वेदव्यास, एथिहाटिक सोसाइटी, बंगाल)

गीतगोविन्द (श्री जयदेव कवि)

मेघदूतम् (महाकवि कालिदास)

नारद भक्ति सूत्र (गीता प्रेम गोरखपुर १९ वी संस्करण, नं० २००२ वि०)

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र (गीता प्रेम गोरखपुर प्रथम संस्करण, सं० २००२ वि०)

पातञ्जल योग दर्शन (मूल—गीता प्रेम गोरखपुर, १५ वी संस्करण, नं० २००२ वि०)

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु (श्री रूप गोस्वामी, प्रिन्सिपल प्रेम केशी, प्रथम संस्करण,
१९८८ ई०)

उज्ज्वलनीलमणि, (श्री रूप गोस्वामी निर्णयनागर प्रेम बनारस, वि० संस्करण १९३९ ई०)

भक्तिरत्नावली (स्वामी विष्णुपुरी—विष्णु रूप माला, वृन्दावन, सं० १९२४ वि०)

नाट्यशास्त्र (भरत मुनि—निर्णयनागर प्रेम, बनारस द्वितीय संस्करण)

रस गंगासागर (पंडितराज जयन्ताथ, हिन्दी अनुवाद, काशी नगरी प्रकाशितरी लया द्वारा
प्रकाशित, मुद्रक—दण्डियन प्रेम प्रयाग, नं० १९८६ वि०)

अमरकोषः (अमरसिंह, व्याख्या सुधा नसेन, निर्णयनागर प्रेम बनारस, तृतीय संस्करण
सं० १९४४ वि०)

अग्निपुराण (श्री वेदव्यास, अंग्रेजी अनुवाद श्री एम० एन० दत्त)

अष्टादशपुराणदर्पण (श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र)

विष्णुपुराण (श्रीवेदव्यास, सक्षिप्त सम्स्करण, श्री० प्रे० गोरखपुर १८५४ ई०)

निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९०३ ई०)

पञ्चतन्त्र कोष (श्रीगणेशदास शारदा) १८२५ ई०

शब्दकोश (श्री बलभद्राचार्य, —मदनमोहन पुस्तकालय, काशी, द्वि० संस्करण २०१२ वि०)

शब्दकोश (श्री भद्रोजि दीक्षित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८८७ ई०)

पदसूचि (श्रीमनु,)

प्रबन्धसूचि स्मृति (आचार्यभाष्य, संपादक श्री श्रीमसेन शर्मा, ब्रह्मप्रेस, इटावा, उत्तर प्रदेश १९१० ई०)

निर्णय,

शब्दकोश उपनिषद् (ईशास्यष्टोत्तरशतोपनिषदः—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९१७ ई०)

शब्दकोश (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १९०३ ई०)

शब्दकोश (श्रीमनु, संपादक टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् १९२१ ई०)

शब्दकोश

शब्दकोश (ईशास्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९१७ ई०)

शब्दकोश (श्री वेदव्यास)

शब्दकोश (श्री वेदव्यास, संपादक श्री नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता १८९० ई०)

शब्दकोश (प्रकाशित—श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १९५३ वि०)

शब्दकोश (प्रकाशक, श्री० प्रेस, गोरखपुर प्र० संस्करण २००९ वि०)

शब्दकोश (प्रकाशित—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वि० संस्करण १९२७ ई०)

शब्दकोश (श्री बलभद्राचार्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९६२ वि०)

शब्दकोश (संपादक—श्री महादेव शर्मा, बम्बई १९१० ई०)

शब्दकोश (श्री रामानुजाचार्य, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १८८८ ई०)

शब्दकोश (श्री निम्बार्काचार्य, संपादक श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, वन्दावन, १९६९ वि०)

शब्दकोश

शब्दकोश

शब्दकोश

हिन्दी-ग्रन्थ

- सूरसामर (सूरदास, २ खण्ड, वा० प्र० सभा काशी,) वृ० संस्करण, सं० २०१५ वि०
- नन्ददास ग्रन्थावली (नन्ददास, संपा० श्री बजरत्नदास, वा० प्र० सभा काशी) वृ० संस्करण
सं० २००६ वि०
- रासपंचाशवाही भ्रमरगीत (नन्ददास, संपा० डॉ० रामदास शुकल रत्नान भ्रमरगीत
निकेतन, इलाहाबाद)
- भोविन्दस्वामी (सम्पा०, गो० ब्रजभूषण शर्मा, विद्याविभाग काँकरोली) प्र० संस्करण
सं० २००८ वि०
- छीतस्वामी (सम्पा० गो० ब्रजभूषण शर्मा, विद्याविभाग काँकरोली) प्र० संस्करण
सं० २०१२ वि०
- अष्टछाप पत्रिका (श्री प्रभुदयाल मीतल, अमरावत प्रेस, मथुरा) द्वि० संस्करण
सं० २००६ वि०
- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयाल शुभ) प्र० संस्करण सं० २००४ वि०
- अष्टछाप (सं० १६६७ की वार्ता और भावप्रकाश सम्पा० श्री कण्ठमणि शर्मा काँकरोली) द्वि० संस्करण सं० ००६ वि०
- अष्टमहात की वार्ता (सम्पा० श्री द्वारकादास परोक्ष, अमरावत प्रेस, मथुरा) प्र० संस्करण सं० २००७ वि०
- मक्तमाल (नामादास श्री, भक्तिमुखास्वाद तिलक व्याख्या समेत, लेखकमाल सुकविनी,
लखनऊ, वृ० संस्करण १९५१ ई०)
- विद्यापति की पदावली (सम्पा० श्री रामबृक्ष बेनीपुरी, मुक्तक सञ्चार पटना) द्वि० संस्करण
मीराबाई की पदावली (सम्पा० श्री परशुराम चतुर्वेदी, द्वि० सा० सम्मेलन श्रावण) सप्तम संस्करण, सं० २०१४ वि०
- रसखान और वनानन्द (सम्पा० स्व० बाबू अमीरसिंह, इ० प्रेम प्रदान) प्र० संस्करण,
१९२६ ई०
- रामचरितमानस, (गो० तुलसीदास मूल गुटका, गो० प्रेम शोरसपुर) वृ० संस्करण
सं० १९६८ वि०
- सुदामा चरित (श्री नरोत्तमदास, सम्पा० श्री प्रेमनारायण टण्डन) विद्याभन्डार टभी कटरा
लखनऊ, १९४२ ई०
- वेलि क्रिसन रुकमणी री (राठीड प्रिथीराज, सम्पा० डा० नन्दसिंह गुन व० मूर्धनिकान्त
पारीक) हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, १९३१ ई०
- वेलि क्रिसन रुकमणी री (राठीड प्रिथीराज, केवल मूल हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग) १९५० ई०

- विद्यापीठ (पहला भाग, सम्पा० पं० रामनरेश त्रिपाठी) नार्दन इण्डिया, पब्लिशिंग
 (सं० १९४६ ई०)
- नर्मदा नृत्यसंगीत (प्रकाशक स्वामी श्री नारायणदास, अलीगढ़) प्रथम संस्करण
 १९४६ वि०
- नर्मदा नृत्यसंगीत (संकलित एवं जीवनी लेखक, चौबे नवनीत कवि, मथुरा, ब्रह्म प्रेस
 सं० १९६७ वि०)
- नर्मदा नृत्यसंगीत (श्री सहचरीनगरदेव, नाल्लुकेदार प्रेस लखनऊ) सं० १९७७ वि०
- नर्मदा नृत्यसंगीत (सम्पा० श्री विद्येशीहरि हि० सा० सं० प्रयाग) चतुर्थ संस्करण
 १९७८ वि०
- नर्मदा नृत्यसंगीत (श्री प्रभुदत्त, ब्रह्मचारी, भी० प्रेम गोरखपुर) तृतीय संस्करण
 १९७८ वि०
- नर्मदा नृत्यसंगीत सम्प्रदायः सिद्धान्त और माहित्य (डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग
 (सं० १९७८ वि०) प्र० संस्करण सं० २०१४ वि०
- नर्मदा नृत्यसंगीत विकास (डॉ० लक्ष्मीपरादास गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
 नर्मदा नृत्यसंगीत) प्र० संस्करण १९५६ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत और साहित्य (डॉ० मुंशीराम शर्मा सोम आचार्य शुक्ल साधना
 नर्मदा नृत्यसंगीत) १९५२ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत साहित्य (डॉ० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़)
 प्रथम संस्करण
- नर्मदा नृत्यसंगीत (सम्पादक, डॉ० मोक्षचंद्रनाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़)
 प्रथम संस्करण,
- नर्मदा नृत्यसंगीत (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अतरचन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली) १९५२ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत भवन (डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद)
 प्रथम संस्करण १९५२ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत (श्री बलदेव उपाध्याय, ना० प्र० सभाकाशी, प्र० संस्करण
 सं० २०१० वि०)
- नर्मदा नृत्यसंगीत श्री पुरानी सम्यता (डॉ० बेनीप्रसाद, द्वि० संस्करण १९५० ई०
- श्री भागवत उत्कृष्ट विषय (श्री भवीरथ भा, बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा सूरत,)
 १९५१ ई०
- श्रीदीर ना नृत्यसंगीत डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य भवन प्रयाग, पष्ठ संस्करण
 १९५२ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत प्रेम साधना (श्री परशुरामचतुर्वेदी, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद, प्रथम
 संस्करण, १९५२ ई०
- श्रीदीर नृत्यसंगीत (लोकमान्य बालकृष्णर तिलक हिन्दी अनुवाद, पून) प्रथम संस्करण १९२६ ई०
- नर्मदा नृत्यसंगीत सांस्कृतिक इतिहास (हरिदत्त वेदालकार, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली,)
 द्वि० संस्करण १९५२ ई०

१९२३ ई०

हिन्दी भक्ति-काव्य डॉ० रामरत्न बटनगर किराव मन्थन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
१९४८ ई०

हिन्दी के पौराणिक नाटकों का अध्ययन (डॉ० देवशि सहाय) विद्याभित्ति-ग्रन्थ प्रकाशन,
बोरखपुर

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भा० प्र० सभा काशी) द्वितीय
संस्करण, स० २००८ वि०

हिन्दी पुस्तक साहित्य (सम्पा० डॉ० नानाप्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद,
१९४९ ई०

राजस्थान का विगत साहित्य (श्री मोनोपान नेनारिया, हिन्दी पुस्तक सभारत, बरकपुर,
१९४२ ई०

संस्कृत वाङ्मय का श्रोटक इतिहास (संग्रह, विन्तामनिक विभाषक डॉ०) प्र० जसकरल
कल्याण, माणवता (श्री० प्रेम मोरखपुर) वर्ष १९

हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण (भा० प्र० सभा काशी) १९१६-१९२५ ई०

अंग्रेजी-ग्रन्थ

- A descriptive catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the library of the University of Bombay, 1944.
- Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the library of the India Office London.
- Encyclopaedia Britannica, Fourth Edition
- A History of Sanskrit Literature. (A.B. Keith) 1920, Oxford University Press, London. 1st Edition.
- Contribution to the Science of Mythology. (Max Muller) 1897,
- Custom and Myth (Andrew Lang,) London, 1884.
- Sacred Books of the East, Series (Buhler) Vol. XIV.
- Mythology of Aryan Nations (A. Cocks)
- Oxford Dictionary (Fowler)
- The Religions of India (Hopkins) Boston Guin Co., 1902.
- Arberuni's India (Sachau)
- Chambers's Twentieth Century Dictionary (Thomas Davidson)
- New Popular Encyclopaedia. (Charles Annadale)
- Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society, 1925.
- Vaishnavism, Shaivism, and minor religious systems (R.G. Bhandarkar)
- Ancient Indian Historical Tradition (Pargiter)
- Outlines of the Religious Literature of India (Farquhar)
- Indian Literature (Winternitz)
- New Indian Antiquary. 1838-39.
- Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, 1932-33.
- A Classical Dictionary of Hindu Mythology (John Dowson) London 1950.
- Puranic Chronology (D.R. Mankad) Anand, Gujrat 1st Edition 1951
- Life and Teachings of Madhva (Shri Padmanabhacharya) Nateson, Madras.
- Ramkrishna Commemoration Volume.